रामचन्द्र के राम

संत थानेदार ठाकुर रामसिंहजी

1

प्रारम्भिक जीवन

जयपुर भारत के एक प्रदेश राजस्थान की राजधानी है, जो विश्व में गुलाबी नगरी के नाम से प्रसिद्ध है और सदियों से मीराबाई, दादूदयाल, रज्जब. सुन्दरदास, पीपा, नाभादास और कर्माबाई जैसे महान संत-महात्माओं की उपस्थिति से पावन होती रही है। ऐसे ही एक महान सूफ़ी संत ठाकुर रामसिंहजी[1] की यह जीवनगाथा है जिन्होंने उन्नीसवीं सदी के अंत में जन्म लेकर बीसवीं सदी के सत्तर वर्षों तक जयपुर और राजस्थान के अनेक इलाकों को अपनी उपस्थिति से धन्य किया। हालाँकि ठाकुर रामसिंहजी ने अपने जीवन-निर्वाह के लिए पुलिस की वर्दी को तो धारण किया लेकिन मन से वे एक कर्त्तव्यनिष्ठ लेकिन कोमल और परमार्थ-पथगामी, अमानी (अहंकार रहित) मनुष्य बने रहे। वे नक्शबंदी सूफ़ी-संतों की परम्परा, जो भारत में प्रचलित चार प्रमुख सूफ़ी सम्प्रदायों यथा-नाक्श्बंदिया, चिश्तिया, कादरिया और सुहुरावर्दिया में से एक है, के एक प्रमुख हस्ताक्षर हैं।

ठाकुर रामसिंहजी का जन्म जयपुर के सांगानेर हवाईअड्डे के निकट मनोहरपुरा गाँव में एक राजपूत परिवार में हुआ। 'राजपूत' शब्द संस्कृत के शब्द राज-पुत्र का अपभ्रंश है जिसका शाब्दिक अर्थ है 'राजा का पुत्र'

---

[1] ठाकुर रामसिंहजी-परमसंत ठाकुर रामसिंहजी, लेकिन पठन की सहजता के लिए उन्हें सम्बोधित करने के लिए ठाकुर रामसिंहजी ही प्रयोग किय गया है; पाठक इस सम्बोधन को 'परमसंत ठाकुर रामसिंहजी' के रूप में स्वीकार करने की और इसी तरह अन्य महानुभवों के नाम के साथ भी यथायोग्य आदर सूचक सम्बोधन को पढ़ने की कृपा करें।

जो वीर-योद्धाओं के ऐसे विशाल समूह को सम्बोधित करता है जो वंश-परम्परा से शाषक वर्ग से सम्बन्धित रहा और शनैः-शनैः विभिन्न संजातीय और भौगोलिक पृष्ठभूमि वाले सामाजिक वर्ग के लिए प्रयुक्त होने लगा। राजपूतों द्वारा शाषित बहुत सी रियासतों ने बीसवीं सदी में मध्य एवम् उत्तरी भारत के कई भागों में प्रमुख भूमिका निभाई। राजस्थान राजपूतों का प्रमुख कर्मभूमि रहा है, जिसे उन्होंने सदियों से आबाद किया और यहाँ अलग-अलग रियासतों पर राज्य भी किया।

स्वतंत्रता से पूर्व जयपुर भारत की एक मुख्य रियासत थी जो इतिहास में अपने राजपूत रण-बांकुरों के शौर्य के लिए विख्यात है। ठाकुर रामसिंहजी के एक पूर्वज ठाकुर जोरावरसिंह जयपुर के तत्कालीन महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय (1686-1743) के निमंत्रण पर जयपुर आकर यहाँ बस गए थे। जयपुर शहर का नाम इन्हीं महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय के नाम पर रखा गया। महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय जयपुर के निकट आमेर के मुगलों के सामंती राजा थे और वे एक विलक्षण गणितज्ञ, खगोल-शास्त्री और नगर-योजनाकार थे। सन 1728 में उन्होंने इस नए आलिशान शहर को, जिसे पौराणिक वास्तु-शास्त्र (शिल्प-शास्त्र) और उस समय के बहुत से यूरोपीय शहरों की उत्कृष्ट वास्तुकला और स्वयं उनकी अवधारणा के आधार पर निर्मित किया गया था, अपनी राजधानी के रूप में अपनाया। इस शहर को ब्रह्माण्ड के नौ विभाजनों के प्रतीक रूप नौ चतुर्भुजाकार खण्डों में बसाकर इसमें समानान्तर और लम्बाकार सडकों का जाल बिछाया गया और चौराहों को चौपड़ यथा छोटी- चौपड़, बड़ी-चौपड़ और चौक आदि नाम दिया गया। इसके साथ ही उन्होंने विश्व-प्रसिद्द वेधशाला-जंतर-मंतर का भी निर्माण करवाया।

महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय एक सच्चे और धार्मिक राजा थे जिन्हें 'सवाई' की उपाधि बादशाह औरंगजेब द्वारा दी गई थी। यह उपाधि इस बात को इंगित करती थी कि वे अपने पूर्वज स्वनाम धन्य

राजा जयसिंह प्रथम (1611-1667) से सवाया अर्थात एक-चौथाई अधिक बढ़कर थे । यह उपाधि उन्हें सन 1701 में मराठाओं से विशालगढ़ किले को जीतने के उपलक्ष्य में मिली थी जिसकी आधिकारिक पुष्टि सन 1712 में जारी एक शाही आदेश से होती है। इस उपलब्धि का उत्सव मनाने और उपाधि को चरितार्थ करने हेतु जयपुर के शाषकों ने तब से दो झण्डे-एक सामान्य पूरे आकार का और दूसरा छोटा चौथाई आकार का फहराना शुरू कर दिया। इसके कुछ ही वर्षों उपरांत महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय ने स्वयं को मुगलों के आधिपत्य से स्वतंत्र घोषित कर दिया और अपनी संप्रभुता की धाक जमाने के लिए उन्होंने दो अश्वमेघ यज्ञों का आयोजन किया। पिछले करीब पाँच सौ वर्षों में अश्वमेघ यज्ञ करने वाले वे ही एकमात्र राजा थे। अश्वमेघ यज्ञ एक पौराणिक परम्परा थी जिसमें एक शाही अश्व को सैनिकों के संरक्षण में स्वतंत्र विचरण के लिए छोड़ दिया जाता था और उसके अविजीत लौटने पर, जिन राज्यों से वह गुजरा, उनके द्वारा यज्ञ करने वाले राजा का आधिपत्य स्वीकार कर लिया जाना माना जाता था। इस यज्ञ द्वारा महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय ने आस-पास के राजाओं पर अपना वर्चस्व स्थापित किया।

ठाकुर जोरावरसिंह जैसलमेर के रावलोत भाटी परिवार से थे जो रावल अमरसिंह की सुपुत्री राजकुमारी लाल कँवर का जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह के साथ विवाह के अवसर पर जैसलमेर से जोधपुर की सरहद पर लेकिन जैसलमेर की सीमा में ही आकर बस गया था। बाद में यह भूभाग 'जाखण' नाम से पुकारा जाने लगा। इन राजकुमारी लाल कँवर की छोटी बहन राजकुमारी सूरज कँवर एक बार इस रावलोत भाटी परिवार में आई हुई थीं और जब वे जाखण में ही थीं महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय का जोधपुर आगमन हुआ और इस यात्रा के दौरान जब उनका पड़ाव जाखण के निकट ही हुआ, वे पानी पीने के लिए अकेले ही रावलोत भाटी परिवार के रावले में पहुँच गए जहाँ उनकी मुलाक़ात

राजकुमारी सूरज कँवर से हो गयी और उनसे आकृष्ट हो, उनसे विवाह कर, वे उन्हें अपने साथ जयपुर ले आए। राजकुमारी सूरज कँवर के साथ ही महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय, ठाकुर जोरावरसिंह जो रावलोत भाटी राजपूतों के सरदार थे, उन्हें भी उनके परिवार सहित जयपुर ले आए और उन्हें गुजारे के लिए जयपुर के निकट (करीब 50 किलोमीटर दूर) जोबनेर को जागीर के रूप में दे दिया। बाद में ठाकुर जोरावरसिंह के एक वंशज ठाकुर उम्मेदसिंह जोबनेर से प्रस्थान कर गए और उनके एक वंशज ठाकुर पेमसिंह को बोकड़ावास जागीर के रूप में मिला। ठाकुर पेमसिंह को चार पुत्र और एक पुत्री हुए और इन चार भाइयों ने बोकड़ावास की भूमि बंजर होने के कारण सन 1876 में उसके बदले जयपुर के निकट मनोहरपुरा को लेना स्वीकार किया और अपने परिवार सहित वहाँ रहने लगे। ठाकुर रामसिंहजी के पिता ठाकुर मंगलसिंहजी (1871-1939) ठाकुर पेमसिंह के सबसे छोटे पुत्र थे।

महान आत्माएँ प्राय: महान माता-पिता के यहाँ ही जन्म लेती हैं और यह बात ठाकुर रामसिंहजी के संदर्भ में भी एकदम सटीक थी। उनके पिता ठाकुर मंगलसिंहजी एक अन्तर्मुखी, धार्मिक और ईश्वर भक्त पुरुष थे। जयपुर रियासत की सेवा में रहते और गृहस्थ धर्म निभाते, ठाकुर मंगलसिंहजी ने अपने जीवन का लक्ष्य श्रीराम भगवान का भजन-स्मरण निर्धारित किया था। पूजा के दौरान अक्सर उन्हें भगवान श्रीराम और सीता के युगल दर्शन हुआ करते और उस भावावेश की अवस्था में वे प्राय: पुकार उठते-'रामसिंह! आजा भगवान के दर्शन कर ले', और इसी तरह परिवार के अन्य सदस्यों को भी आवाज लगाते लेकिन वे भगवान के दर्शन करने में असमर्थ रहते।

ठाकुर मंगलसिंहजी को होने वाली घटनाओं का आभास भी हो जाता था। एक बार वे अचानक ही आग-आग कहते एक तरफ पानी फेंककर आग बुझाने का प्रयास करने लगे। आस-पास खड़े लोग अचम्भित थे क्योंकि उन्हें कहीं आग लगी नहीं दिख रही थी। पूछने पर ठाकुर

मंगलसिंहजी ने कहा कि उनकी भतीजी जिनका विवाह राजा श्री दुर्जनसिंह के साथ हुआ था की ससुराल जावली में आग लग गई है। बाद में मालूम चला कि उस दिन उस वक्त वास्तव में ही वहाँ आग लगी थी।

ठाकुर मंगलसिंहजी जयपुर रियासत की सेवा में थे और तत्कालीन महाराजा सवाई माधोसिंह (1880-1922) ने उन्हें अपनी निजी सुरक्षा सेवा में नियुक्त किया हुआ था। महाराजा सवाई माधोसिंह भगवान श्रीकृष्ण के भक्त थे और नित्य प्रात: उठते ही सबसे पहले वे श्री गोपालजी के विग्रह के सम्मुख दण्डवत प्रणाम और वंदन किया करते थे। उनका प्रयास रहता कि वे सुबह-सुबह ईश्वर-भक्तों का दर्शन ही करें अत: उन्होंने अपनी निजी सुरक्षा में ईश्वर-भक्त लोगों को ही नियुक्त किया हुआ था। मानपुर के ठाकुर अरिशालसिंहजी भी ठाकुर मंगलसिंहजी के साथ महाराजा की निजी सुरक्षा में नियुक्त थे, अत: दोनों में घनिष्ठ मित्रता हो गयी जो कालान्तर में ठाकुर रामसिंहजी की ठाकुर अरिशालसिंहजी की पुत्री के साथ विवाह के परिणाम स्वरूप रिश्तेदारी में फलीभूत हुई।

9 मई 1902 को एडवर्ड VII के राज्याभिषेक के अवसर पर महाराज माधोसिंह ठाकुर मंगलसिंहजी को अपने साथ इंग्लैंड ले गए थे और उनकी कर्त्तव्यनिष्ठा से प्रभावित होकर उन्हें अपनी हुक्का-सेवा में रख लिया अर्थात अपने लिए हुक्का तैयार करने का कार्य उन्हें सौंप दिया। सन 1920-1921 में एक बार हुक्के के लिए आग के रूप में प्रयोग की जाने वाली ऊँट की मींग का जलता हुआ एक टुकड़ा कालीन पर गिर गया, जिसे ठाकुर मंगलसिंहजी ने तुरंत अपने पाँव के नीचे दबाकर बुझा दिया। महाराज माधोसिंह यह सब देख रहे थे। उन्होंने अपने निजी डॉक्टर दलजंगसिंह को बुलवाकर उनकी मरहम-पट्टी करवायी और उन्हें (ठाकुर मंगलसिंहजी को) हुक्के की करीब 30 फुट लम्बी नली, जो सोने-चाँदी के तारों से मढ़ी थी, उपहार में दी। उन दिनों महाराजा द्वारा अपनी कोई व्यक्तिगत वस्तु दिया जाना बहुत सम्मान की बात समझा जाता

था और इस दुर्लभ और सुअर्जित धरोहर को ठाकुर मंगलसिंहजी के परिवार ने भलीभांति सहेजकर रखा।

ठाकुर मंगलसिंहजी की पत्नी अर्थात ठाकुर रामसिंहजी की माता भी धार्मिक प्रवृति की और कुलीन स्त्री थीं। सन्तान के रूप में उन्हें ठाकुर रामसिंहजी के अतिरिक्त एक कन्या रत्न की भी प्राप्ति हुई लेकिन वह विवाह के कुछ वर्ष बाद ही गुजर गयी और पुत्री की मृत्यु के कुछ माह उपरान्त पुत्री के पतिदेव की भी मृत्यु हो गयी। उन दोनों की असामयिक मृत्यु के कारण ठाकुर रामसिंहजी की माता अत्यन्त उदास रहने लगीं और घर-गृहस्थी से विरक्त हो अपना अधिकतर समय एकान्त और पूजा-पाठ में ही बिताने लगीं।

ठाकुर रामसिंहजी का जन्म 3 सितम्बर 1898[2] को मनोहरपुरा गाँव में हुआ। माता-पिता के संस्कारों ने बाल्य अवस्था से ही ठाकुर रामसिंहजी को ईमानदारी और धार्मिक प्रवृति की ओर उन्मुख कर दिया। वे अपने पिता का अत्यन्त सम्मान करते थे और उनकी सेवा में तत्परता से जुटे रहते। जब उनके पिता भोजन के लिए बैठते तो ठाकुर रामसिंहजी उन्हें खड़े रहकर पंखा झलते, खड़े इसलिए रहते कि यदि पिता को कुछ चाहिए तो उठने में विलम्ब ना हो।

ठाकुर रामसिंहजी की शिक्षा जयपुर के नोबल्स स्कूल में हुई, जिसे अब माणकचौक स्कूल कहा जाता है और बड़ी चौपड़ पर स्थित है। उस उम्र के बच्चे प्राय: चंचल और नटखट होते हैं लेकिन इसके विपरीत बालक रामसिंहजी स्वभाव से ही अपने व्यवहार में बहुत अनुशाषित और विनम्र थे। अपनी मातृभाषा ढूंढारी (जयपुर और उसके आसपास के क्षेत्र में बोले जाने वाली स्थानीय भाषा) के अतिरिक्त उन्होंने हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू और फारसी भी सीखी और शैक्षणिक ज्ञान के अलावा धार्मिक ग्रन्थों का भी अध्ययन किया, जिसे उन्होंने काफी बाद तक भी जारी रखा।

[2] ठाकुर रामसिंहजी की पेंशन बुक में लिखे अनुसार उनकी जन्मतिथि।

कुँवर रामसिंह

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, ठाकुर मंगलसिंहजी को पूजा के वक्त श्री सीताराम के युगल दर्शन हुआ करते थे और वे बालक रामसिंह को आवाज देकर उनके दर्शन के लिए बुलाया करते थे। हालाँकि बालक रामसिंह को कभी श्रीसीताराम के दर्शन तो नही हुए लेकिन उनके हृदय में इसके लिए तीव्र उत्कंठा अवश्य जाग्रत हो गयी और इस इच्छा ने

उनका रुख साधु-संतों के दर्शन के लिए जाने के लिए अवश्य मोड़ दिया। 15 वर्ष की अवस्था से वे संत-महात्माओं के दर्शन के लिए जाने लगे और उनके दर्शन हेतु खाली हाथ ना जाकर अपने साथ घर से कुछ-ना-कुछ मिठाई आदि बनवाकर ले जाते। इसी समय के आसपास वे रायबहादुर सर गोपीनाथ और पीर साहब हकीम हिदायत अली साहब, जो नक्शबंदी सूफ़ी परम्परा के एक महान संत हुए हैं, के सम्पर्क में आए।

16 वर्ष की आयु में ठाकुर रामसिंहजी ने फ़ौज में भर्ती होने की इच्छा प्रकट की तो उनके पिता ने कहा कि अब तक हम जयपुर महाराज का ही अन्न खाते आ रहे हैं अत: उचित है कि तुम भी उन्हीं की सेवा में रहो। अपने पिता की बात मान ठाकुर रामसिंहजी ने अपना विचार बदल जयपुर महाराज की सेवा में रहना स्वीकार कर लिया। उनके पिता पहले से ही महाराजा की निजी हुक्का सेवा में थे और रायबहादुर सर गोपीनाथ पुलिस विभाग की गवर्निंग कौंसिल के सदस्य थे। इसी दौरान सर गोपीनाथ के एक रिश्तेदार भैरूबख्श पुरोहित की जो पुलिस विभाग में कार्यरत थे अचानक मृत्यु हो गयी। रायबहादुर सर गोपीनाथ ने ठाकुर मंगलसिंहजी से विचार-विमर्श कर ठाकुर रामसिंहजी को भैरूबख्श पुरोहित की जगह 'ऐवजी' कर्मचारी के रूप में पुलिस विभाग में पतरोल (कांस्टेबल) पद पर नियुक्त करवा दिया। ठाकुर रामसिंहजी की पहली नियुक्ति सांगानेर जंक्शन पर हुई जो अब जगतपुरा रेल्वे स्टेशन के नाम से जाना जाता है। बतौर ऐवजी नियुक्त होने के कारण, ठाकुर रामसिंहजी अपनी मासिक आय की आधी राशि भैरूबख्श पुरोहित के घर भिजवा दिया करते थे जैसा कि उन दिनों जयपुर रियासत में नियम था कि यदि किसी कर्मचारी की सेवाकाल के दौरान मृत्यु हो जाती है तो उसके परिवार से किसी अन्य योग्य व्यक्ति की उसकी जगह नियुक्ति की जा सकती है और यदि परिवार में कोई ऐसा व्यक्ति ना हो तो किसी अन्य की उसकी जगह बतौर ऐवजी नियुक्ति की जा सकती है और उसकी आधी तनख्वाह मृतक की विधवा को दे दी जाती थी।

विवाह उन दिनों कम आयु में ही कर दिया जाता था। ठाकुर रामसिंहजी की नौकरी लग गयी थी, वे कमाने लगे थे अत: उनके पिता ने उनके विवाह के बारे में सोचना शुरू कर दिया। ठाकुर अरिशालसिंहजी उनके सहकर्मी और मित्र थे। वे (ठाकुर अरिशालसिंहजी) ईश्वर भक्त और खेतड़ी के महाराजा अजितसिंह जो स्वामी विवेकानंद के निकट सम्पर्क में थे, के शिष्य थे। अपने निकट के संगी-साथियों में ठाकुर अरिशालसिंहजी एक पहुँचे हुए महात्मा के रूप में जाने जाते थे जो रात-रात भर जागकर अपना समय तपस्या करने में गुजारा करते थे। सन 1915 में सत्रह वर्ष की आयु में ठाकुर रामसिंहजी का विवाह ठाकुर अरिशालसिंहजी की सुपुत्री गोपाल कँवर से हो गया जो तब 13 वर्ष की थीं। दोनों परिवारों के लिए यह एक आनंदोत्सव का अवसर था।

ठाकुर रामसिंहजी भैरूबख्श पुरोहित के 'ऐवजी' के रूप में तब तक कार्य करते रहे जब तक भैरूबख्श पुरोहित के बड़े सुपुत्र रामनारायण पुरोहित की आयु पुलिस सेवा में भर्ती होने योग्य हो गयी और तब तक (सन 1920) ठाकुर रामसिंहजी की भी स्वयं की धाणक्या नामक जगह पर स्थायी पद पर नियुक्ति हो गयी थी। अभी तक तो नियुक्ति घर के पास होने के कारण ठाकुर रामसिंहजी अपने पिता के साथ उनकी छत्र-छाया में रह रहे थे लेकिन अब पहली बार उन्हें घर से दूर धाणक्या के लिए जाना था। इस अवसर पर पिता ठाकुर मंगलसिंहजी ने उन्हें चेताया, बोले-"रामसिंह! मैंने लोगों को रिश्वत लेते देखा है लेकिन अंत में उनका बुरा हाल होता है। अगर तनख्वाह में काम ना चले तो बेटा घर से आटा-दाल ले जाना लेकिन कभी रिश्वत न लेना।" पिता का आदेश ठाकुर रामसिंहजी के लिए ब्रह्म-वाक्य था जिसका पालन उन्होंने जिन्दगी भर किया। रिश्वत की तो बात ही क्या उन्होंने बिना मोल चुकाए किसी का पानी भी नहीं पिया।

धाणक्या में नियुक्ति के कुछ दिन पश्चात ठाकुर रामसिंहजी का मनोहरपुरा घर पर आना हुआ। उसी दिन एक पारिवारिक मित्र पुलिस-

अधिकारी का भी ठाकुर मंगलसिंहजी से मिलने उनके घर आना हुआ। बातों-बातों में पता चला कि ठाकुर रामसिंहजी कोई ऊपर की कमाई नहीं करते तो वे बोले कि किसी का काम हो जाए और वो ख़ुशी से कुछ दे तो लेने में क्या हर्ज है ? ठाकुर रामसिंहजी ने पूछा-"अगर बहादुरसिंहजी को पता चल जाए तो क्या हो ?" बहादुरसिंहजी एक वरिष्ठ पुलिस ऑफिसर थे जिनके अधीन वह क्षेत्र था। उन साहब ने कहा-"लेकिन बहादुरसिंहजी को इसका पता ही क्यों होने दो, आँख बचाकर लेने में क्या हर्ज है ? ठाकुर रामसिंहजी एक क्षण रुके फिर बोले-"दो आँखों वाले से तो डरूँ, हजार आँखों वाले से ना डरूँ ? कोई देखे ना देखे, राम तो सब देखता ही है। उससे क्या छिपा है ?" वे साहब तो कुछ ना कह सके लेकिन ठाकुर मंगलसिंहजी अपने पुत्र के उत्तर से बहुत खुश हुए। बाद में जब इस वार्तालाप का पता बहादुरसिंहजी को लगा तो वे भी ठाकुर रामसिंहजी से बहुत प्रभावित हुए।

सन 1920 में धाणक्या में नियुक्ति के दौरान ठाकुर रामसिंहजी गंभीर रूप से बीमार पड़ गए थे। तब रामनारायण पुरोहित अपने साथ अपने फूफाजी सर गोपीनाथ पुरोहित और हकीम हिदायत अली साहब को लेकर उन्हें देखने पहुँचे। सन 1970 में जब ठकुर रामसिंहजी टी.बी. सेनेटोरियम में भर्ती थे और रामनारायण पुरोहित के छोटे भाई हरीनारायण पुरोहित जब उनसे मिलने वहाँ गए तो ठाकुर रामसिंहजी ने वर्षों पुरानी उस घटना को याद कर कहा-"मैं बहुत संकोच में पड़ गया था कि उन दोनों महानुभावों का स्वागत-सत्कार कैसे करूँ ? वे मेरे लिए फल आदि लाए थे। हकीम हिदायत अली साहब ने मुझे जाँच-परखकर इलाज शुरू कर दिया।"

इस समय तक ठाकुर मंगलसिंहजी की आयु का विचार कर महाराजा माधोसिंह ने उन्हें खातीपुरा किले का और ठाकुर अरिशालसिंहजी को एक अन्य किले का किलेदार नियुक्त कर दिया था। ठाकुर मंगलसिंहजी वहीं खातीपुरा किले में रहने लगे लेकिन बीच-बीच में मनोहरपुरा आते रहते थे

। यह वह समय था जब जयपुर शहर परकोटे के भीतर तक ही सीमित था और इसके सात दरवाजे थे जो रात 11 बजे बंद कर दिए जाते थे और फिर सुबह ही खोले जाते थे। रात में ना कोई शहर से बाहर जा सकता था ना ही भीतर आ सकता था।

ठाकुर रामसिंहजी का विवाह सन 1915 में हुआ था और प्रथम संतान के रूप में उन्हें एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति सन 1924 में हुई जिसका नाम जगतसिंह रखा गया जिसे बाद में बदलकर हरीसिंह नाम रख दिया गया। जगतसिंह के बाद उन्हें तीन और सुपुत्र और दो सुपुत्रियाँ जन्मीं-दयाल कँवर (1929), नारायणसिंह (1932), लक्ष्मण कँवर (1935), किशनसिंह (1939) और विष्णुसिंह (1942)।

ठाकुर रामसिंहजी का स्थानान्तर नवलगढ़ हो गया था, जहाँ से उनका तबादला सन 1926 में झुंझुनू हो गया और उसी वर्ष वे हैड कांस्टेबल पद पर भी पदोन्नत किए गए। ठाकुर मंगलसिंहजी ने जो अब खातीपुरा किले के किलेदार थे एक पत्र में अपने पुत्र ठाकुर रामसिंहजी को लिखा कि उन्होंने सर गोपीनाथ पुरोहित से जो अब कई मंत्री पदों पर आसीन थे और नाबालिगी राज[3] के प्रधानमंत्री की हैसियत से कार्य कर रहे थे, थानेदार पद की जगह रिक्त होने पर ठाकुर रामसिंहजी की पदोन्नति की सिफारिश कर दी है। यह मालूम चलने पर ठाकुर रामसिंहजी ने अपने पिता से कहा कि सिफारिश के आधार पर उन्हें तरक्की नहीं चाहिए क्योंकि इससे दूसरों का हक मारा जाता है और निवेदन किया कि वे उनकी तरक्की के लिए किसी को ना कहें।

ठाकुर रामसिंहजी के धार्मिक रुझान का पता एक और घटना से भी लगता है। गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित 'कल्याण' एक प्रतिष्ठित धार्मिक पत्रिका है। सन 1926 के लगभग इस पत्रिका में सर गोपीनाथ पुरोहित ने

[3] महाराज माधोसिंह के 1922 में स्वर्गवास के समय उनके पुत्र और उत्तराधिकारी महाराज मानसिंह द्वितीय नाबालिग थे।

लोगों को इस पत्रिका का सदस्य बनने का आव्हान किया था। ठाकुर रामसिंहजी ने तुरंत इस पत्रिका की आजीवन सदस्यता ले ली और अपने स्वभावानुसार इसकी प्रतियों को बड़े सहेजकर और क्रमबद्ध तरीके से रखने लगे।

सन 1926 में सेवानिवृति के बाद ठाकुर मंगलसिंहजी मनोहरपुरा में रह अपना समय भजन-पूजन में बिताने लगे। अगले वर्ष जब ठाकुर रामसिंहजी मनोहरपुरा आए तो पिता ने यह सोच कि पुत्र की भविष्य में और पदोन्नति होती रहेगी, मनोहरपुरा के कच्चे मकान को पक्का बनवाने का प्रस्ताव रखा लेकिन ठाकुर रामसिंहजी ने यह कहकर मना कर दिया कि-'अगर आप मकान को पक्का करने में पैसा खर्च करते हैं तो मैं इस में आकर नही रहूँगा।' उनके लिए धन का प्रयोग औरों की सेवा में लगाने के लिए होना चाहिए ना कि स्वयं के ऐशो-आराम के लिए। ठाकुर मंगलसिंहजी को अपने पुत्र के विचार जानकर प्रसन्नता हुई और शेष मकान को पक्का बनवाने का इरादा त्याग केवल महिलाओं और पुरुषों के शौचालयों को ही पक्का बनवाया। यह मकान ठाकुर रामसिंहजी के जीवन काल में ऐसे ही कच्चा ही बना रहा और बाद में उनके बड़े सुपुत्र हरीसिंह ने आगे के हिस्से को पक्का करवा कर सीमेंट-प्लास्तर वैगरह करवाया।

ठाकुर रामसिंहजी को शुरू से ही साधु-संतों के प्रति अगाध श्रद्धा थी और उनके दर्शन की उत्कंठा रहती थी। हजरत हिदायत अली साहब और रायबहादुर सर गोपीनाथ का उनके चरित्र और व्यक्तित्व को प्रभावित करने में बड़ा योगदान रहा। उनके सांसारिक जीवन में ही नहीं अपितु उनके अध्यात्मिक जीवन में भी इन दोनों महानुभावों का बड़ा सहयोग रहा। पीर साहब हकीम हजरत हिदायत अली से ठाकुर रामसिंहजी की प्रथम भेंट सन 1913 में 15 वर्ष की आयु में हुई। हजरत हिदायत अली साहब (1859-1951) नक्शबंदी सूफ़ी परम्परा से थे। वे जयपुर में 'खेजडों के रास्ते' में रहते थे और घर से ही लोगों को दवा देते और

अध्यात्मिक रुझान वाले लोगों का मार्गदर्शन भी करते थे। रायबहादुर सर गोपीनाथ भी वहीं नजदीक ही रहते थे और इस कारण जब भी ठाकुर रामसिंहजी रायबहादुर सर गोपीनाथ से मिलने आते तो हजरत हिदायत अली साहब के दर्शन भी करते। इसी सिलसिले में उनकी हजरत हिदायत अली साहब के सुपुत्र शौकत अली खान से मित्रता हो गयी। शौकत अली खान मेस्मेरिज्म (सम्मोहन विद्या) में सिद्धहस्त थे।

हजरत हिदायत अली साहब ने अपने जीवन काल में ही अपने पौत्र हजरत अब्दुल रहीम साहब (1921-1993) को नक्शबंदी सूफ़ी सिलसिले में अपना खलीफा (रूहानी उत्तराधिकारी) घोषित कर दिया था। हजरत अब्दुल रहीम साहब अपने जानकारों में श्रद्धा और आदर के साथ 'पीर साहब' और 'मौलवी साहब' नाम से जाने जाते थे। हजरत हिदायत अली साहब के शरीर त्यागने के बाद एक बार ठाकुर रामसिंहजी हजरत अब्दुल रहीम साहब से मिलने उनके घर गए थे। उन्होंने अपने जूते मुख्य दरवाजे के पास ही सीढियों के नीचे उतारकर रख दिए और नंगे पाँव ऊपर दूसरी मंजिल पर मौलवी साहब से मिलने चले गए। उनके लौटने से पहले मौलवी साहब ने उनके जूते ऊपर लाकर रख दिए, ताकि उन्हें नंगे पाँव सीढियाँ ना उतरनी पड़ें। ठाकुर रामसिंहजी समझ गए कि यह मौलवी साहब ने किया है। वे तेजी से मौलवी साहब के आगे-आगे सीढियों से उतरे और वहाँ रखे मौलवी साहब के जूते उठाकर लाकर उनके सामने लाकर रख दिए। मौलवी साहब उनकी विनम्रता देखकर दंग थे, बोले-'यह आपने क्या कर दिया। आप मुझसे बड़े हैं।' ठाकुर रामसिंहजी ने हाथ जोड़कर कहा-'यह सब मैंने इसी घर से सीखा है। मैंने वही किया, जो आपने किया।'

रायबहादुर सर गोपीनाथ अपने वक्त की एक बड़ी शख्सियत थे जिन्होंने जयपुर रियासत के प्रबंध में और महाराजा मानसिंह के नाबालिग रहते इसकी बागडोर संभालने में मुख्य भूमिका निभाई। उनके एक पूर्वज, श्री हरभगत जयपुर में आकर बस गए थे। कालान्तर में उनके

एक वंशज श्री वृद्धिचंद ने खेजडों के रास्ते में एक छोटा सा मकान खरीद लिया और वहीं रहने लगे । उनके छोटे सुपुत्र श्री रामधन रायबहादुर सर गोपीनाथ के पिता थे। वे सिक्कों के बदले कौड़ियाँ बेचा करते थे। रायबहादुर सर गोपीनाथ का जन्म 1862 में हुआ था। प्राइमरी शिक्षा के बाद परिवार की आर्थिक तंगी के चलते मैट्रिकुलेशन (दसवीं कक्षा) की पढाई वे गली में लैंप-पोस्ट के नीचे बैठकर किया करते थे। पिता की मृत्यु के बाद भी उन्होंने पढ़ाई जारी रखी और इंग्लिश विषय में आगरा विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर की डिग्री हासिल की। पढ़ाई और घर चलाने के लिए उनकी माँ, चाची ओर विधवा बहन हाथ से बना छोटा-मोटा सामान बेच पैसे जमा करती थीं।

रायबहादुर सर गोपीनाथ जयपुर से स्नातकोत्तर की डिग्री हासिल करने वाले पहले व्यक्ति थे । वे शिक्षा विभाग में अध्यापक हो गए लेकिन कुछ ही समय बाद प्रशासन के क्षेत्र में आ गए और वहाँ से जयपुर के महाराजा माधोसिंह के वकील बन आबू चले गए। आबू में वे सत्रह वर्ष रहे और इस दौरान उन्होंने उर्दू और फारसी भाषाएँ सीखी और अपना समय हिंदी साहित्य की सेवा में भी लगाया । इसकी शुरुआत उन्होंने शेक्सपियर के नाटकों का हिंदी में अनुवाद करने से की जिसने उन्हें हिंदी साहित्यकारों के मध्य एक विशिष्ठ स्थान दिलवाया। इसके बाद उन्होंने 'थॉमस ग्रे' और 'सिसरो' के ग्रन्थों का शोधपूर्ण अनुवाद भी किया । तत्पश्चात् उन्होंने संस्कृत के 'भृतहरिशतकत्रयम्' का टीका सहित हिंदी और अंग्रेजी में अनुवाद किया जिससे उनकी ख्याति एक लब्धप्रतिष्ठित साहित्यकार और शोधकर्ता के रूप में फ़ैल गयी । इसी काल में उन्होंने 'खेजड़ों के रास्ते' में ही एक आलीशान भवन का निर्माण करा उसमें एक भव्य पुस्तकालय भी स्थापित कर हिंदी, संस्कृत और अंग्रेजी भाषाओं के दुर्लभ ग्रन्थों को संग्रहित किया । उनकी मृत्यु के पश्चात् यह समस्त संग्रह वनस्थली विद्यापीठ (राजस्थान का लडकियों का सुप्रसिद्ध विद्यालय) को भेंट कर दिया गया।

सन 1905 में रायबहादुर सर गोपीनाथ वापस लौटकर जयपुर आ गए। उनके विद्वतापूर्ण व्यक्तित्त्व से प्रभावित होकर लोगों ने उन्हें 'पण्डित गोपीनाथ' नाम से सम्बोधित करना शुरू कर दिया था। जयपुर रियासत और राजपरिवार के प्रति उनके समर्पण और आस्था को देखकर महाराजा माधोसिंह ने उन्हें सन 1906 में 'ज्युडिशियल कौंसिल' (फौजदारी) का सदस्य नियुक्त कर दिया और इसके साथ वे 'मिनिस्ट्री' में आ गए। आबू में उनके स्थान पर उनके सुपुत्र गंगासहाय पुरोहित को महाराजा का वकील नियुक्त किया गया लेकिन कुछ ही वर्षों बाद सन 1912 में लंबी बिमारी के बाद युवा अवस्था में ही गंगासहाय का देहांत हो गया।

सन 1914 में प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ने पर अंग्रेज देसी रियासतों में किसी भी प्रकार के सम्भावित विद्रोह के दमन हेतु सक्रिय हो गए थे और चाहते थे कि जयपुर में पुलिस विभाग का मुखिया किसी अनुभवी अंग्रेज पुलिस अधिकारी को बनाया जाए। लेकिन महाराजा की ओर से यह विभाग सर गोपीनाथ को दे दिया गया और सन 1916 के आते-आते वे रियासत के प्रशासन के एक महत्त्वपूर्ण अधिकारी बन गए थे।

सन 1917 में जयपुर में प्लेग फ़ैल गया था। महाराजा माधोसिंह ने सर गोपीनाथ को शहर के परकोटे से बाहर एक भूखण्ड उपहार स्वरूप देना चाहा लेकिन उन्होंने उस भूखण्ड को राजकोष में उसका मूल्य चुकाने के बाद ही लेना स्वीकार किया। इस बात ने प्रजा और महाराजा सबकी आँखों में उनकी एक ईमानदार व्यक्ति की छवि को और भी उज्ज्वल कर दिया। इस भूखण्ड पर बनी ईमारत आज भी वहाँ पाँच-बत्ती, मिर्ज़ा-ईस्माइल रोड पर गोपीनाथ मार्ग पर स्थित है। बाद में वे जयपुर रियासत के 'नायब प्राइम मिनिस्टर' बने और इस दौरान उनकी रूचि हिप्नोटिज्म, मेस्मेरिज्म और प्लैन्चिट आदि विधाओ में जाग्रत हो गयी और वे अपनी इन शक्तियों का प्रयोग कर चमत्कार भी दिखाने लगे थे।

वे साधु-संतों और योगियों के साथ समय बिताने में आनन्दित होते और अपना काफी समय साधना करने में व्यतीत करते।

एक तरफ तो हजरत हिदायत अली खान साहब के सुपुत्र शौकत अली खान जो मेस्मेरिज्म कला में सिद्धहस्त थे उनसे ठाकुर रामसिंहजी की मित्रता, दूसरी तरफ सर गोपीनाथ जिनके पास पुलिस विभाग के सर्वेसर्वा होने और उनके पिता के मित्र होने के कारण ठाकुर रामसिंहजी का आना-जाना लगा रहता था, उनकी हिप्नोटिज्म, मेस्मेरिज्म और प्लैन्चिट आदि विद्याओं में गहरी पैठ, इस संयोग ने ठाकुर रामसिंहजी में भी मेस्मेरिज्म और अन्य गुह्य विद्याओं में रूचि जाग्रत कर दी।

2
गुरु-भगवान की शरण में

सन 1929 में ठाकुर रामसिंहजी की नियुक्ति निवाई में रेलवे स्टेशन पुलिस थाने में हैड कांस्टेबल पद पर थी। इसी समय के लगभग निवाई में बॉम्बे-बड़ोदा सेंट्रल इंडिया रेलवे में श्री कृष्ण चन्द्र भार्गव टाइम-कीपर के पद पर कार्यरत थे। नए हैड कांस्टेबल ठाकुर रामसिंहजी की ईमानदारी की चर्चा कि रिश्वत तो दूर वो किसी का पानी भी नही पीता उन तक भी पहुँची जिसे सुनकर वे अपनी उत्कंठा को रोक नहीं सके और एक दिन उनसे मिलने जा पहुँचे। ठाकुर रामसिंहजी के व्यक्तित्त्व से प्रभावित हो उन्होंने पूछ लिया कि-'आपके गुरु कौन हैं ?' ठाकुर रामसिंहजी ने उत्तर दिया-'जहाँ से कुछ सीखने को मिल जाए, उसे ही गुरु मान लेता हूँ।' श्री कृष्ण चन्द्र भार्गव ने कहा यह तो ठीक है लेकिन गुरु और 'सतगुरु' में बड़ा अन्तर होता है। दुनियावी ज्ञान देने वाले गुरु होते हैं लेकिन आत्मज्ञान केवल सतगुरु की कृपा से ही प्राप्त हो सकता है। ठाकुर रामसिंहजी ने गीता का हवाला देते हुए कहा कि समय आने पर सतगुरु बिना प्रयास के स्वयं ही मिल जाते हैं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि मुझे भी समय आने पर सतगुरु की शरण मिल जाएगी।

उन दिनों ठाकुर रामसिंहजी गीता, रामायण और भक्तिसागर जैसे धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन कर रहे थे और सन 1926 से अर्थात पिछले तीन वर्षों से कल्याण पत्रिका से भी लाभान्वित हो रहे थे। अवसर मिलने पर वे साधु-संतों का सत्संग लाभ भी उठा रहे थे लेकिन अभी अपनी अध्यात्मिक उन्नति से संतुष्ट नही थे। अब वे श्री कृष्ण चन्द्र भार्गव के सम्पर्क में भी आ गए थे और उनसे मुलाक़ात करते रहते थे। कुछ दिनों बाद श्री कृष्ण चन्द्र भार्गव ने उन्हें अपने सतगुरु महात्मा श्री रामचन्द्रजी महाराज (फतेहगढ़) की तस्वीर दिखाई। तस्वीर के दर्शन मात्र से ठाकुर रामसिंहजी ने उनकी ओर आकर्षण महसूस किया अत: वे श्री कृष्ण चन्द्र

भार्गव से तस्वीर को माँगकर अपने साथ ले गए। दो-तीन दिन में ही महात्मा श्री रामचन्द्रजी महाराज की उस फोटो की ओर देखने पर उन्हें समाधि जैसी स्थिति की अनुभूति होने लगी।

यहाँ महात्मा श्री रामचन्द्रजी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय देना प्रासंगिक होगा। महात्मा श्री रामचन्द्रजी महाराज उर्फ़ जनाब लालाजी महाराज प्रथम पूर्ण अधिकार प्राप्त हिन्दू सूफ़ी संत थे, जिन्हें हजरत मौलाना फ़ज्ल अहमद खान साहब (जनाब हुज़ूर महाराज) ने बाकायदा सभी संत-महपुरुषों की सहमती और इज़ाज़त के साथ अपना उत्तराधिकारी घोषित किया और इसके साथ अपने गुरुदेव मौलवी अहमद अली खान साहब (जनाब खलीफ़ा साहब) का यह इर्शाद कि 'तुमसे एक आलम (संसार) मुनव्वर (प्रकाशित) होगा' सच कर दिखाया। महात्मा श्री रामचन्द्रजी महाराज और उनके छोटे भाई महात्मा श्री रघुवर दयालजी महाराज उर्फ़ जनाब चच्चाजी साहब और उनकी शिष्य परम्परा से आज यह नक्शबंदी मुजद्दिदी मजहरिया रामचन्द्रिया सिलसिला अनेक हिन्दुओं सहित पूरे देश और विश्व के कोने-कोने में प्रचारित-प्रसारित हो रहा है।

जनाब लालाजी महाराज के पूज्य पिताजी चौधरी हरबख्शराय चूंगी विभाग में अधीक्षक पद पर कार्यरत थे। वे शुरु में भोगांव में रहते थे लेकिन 1857 की गदर की घटनाओं के बाद वे फर्रुखाबाद में निवास करने लगे। चौधरी हरबख्शराय साहब के घर में यूँ तो सब कुछ था लेकिन आपको कोई संतान ना थी। आपकी धर्मपत्नी बहुत ही नेक धर्मपरायण और ईश्वर भक्त थीं। वे अक्सर फ़क़ीरों और संतों के सत्संग में जाया करतीं और कभी-कभी कोई संत आकर उनके यहाँ भी ठहरते।

एक बार एक मजजूब (अवधूत) मुसलमान फ़क़ीर का फर्रुखाबाद में आना हुआ। वे चौधरी हरबख्शराय के दरवाजे पर भी आये और भोजन में मछली खाने की इच्छा प्रकट की। चौधरी हरबख्शराय की धर्मपत्नी

शाकाहारी थीं लेकिन चौधरी हरबख्शराय मांस का सेवन करते थे। संयोग की बात थी कि उस दिन उनके लिये शमसाबाद के नवाब साहब के यहाँ से दो मछली भेजी गयी थीं। वे मछली उन अवधूत साहब को परोस दी गयीं। एक पुरानी और इस परिवार की खैरख्वाह नौकरानी जो वहाँ मौजूद थी उसने बड़ी नम्रता से हाथ जोड़कर निवेदन किया कि-'बहूजी के पास सब कुछ मौजूद है, सिर्फ औलाद की कमी है। ऐसी दुआ दीजिये कि बहूजी के लड़का हो।' वे अवधूत जोर से ठठाकर हँसे। उन्होंने 'अल्लाहो अकबर' कहकर दुआ के लिये हाथ उठाये और 'एक, दो' कहते हुए एक तरफ़ को चल दिए। परमात्मा की कृपा और फ़क़ीर की दुआ से 3 फरवरी 1873, बसंत पंचमी के दिन महात्मा श्री रामचन्द्रजी महाराज का जन्म हुआ और दो वर्ष बाद 7 अक्टूबर 1875 को उनके छोटे भाई महात्मा श्री रघुवर दयालजी महाराज का जन्म हुआ।

महात्मा श्री रामचन्द्रजी महाराज का लालन-पालन बड़े लाड़-चाव से हुआ। आपकी माताजी रामायण का पाठ करती और आप बैठकर सुनते, जिसका नतीजा यह हुआ कि आपको गाने का शौक बचपन से ही हो गया। आवाज में इतना सुरीलापन और मिठास थी कि जिसने एक बार सुन लिया वह उम्र भर नहीं भूल सका। एक बार आपने फ़रमाया था कि हमारा गाना रूहानी है और हमें यह अभ्यास है कि दूसरे का गाना एक दफ़ा सुनकर हम हू-ब-हू वैसा ही गा सकते हैं। कभी-कभी ध्यान कराते वक्त आप ईश्वर प्रेम में मस्त होकर गाने लगते थे तो एक अजीब कैफियत पैदा हो जाती थी। जहाँ-जहाँ आवाज जाती परमात्मा के प्रेम का स्रोत उमड़ पड़ता था और सब उसमे डुबकियाँ लगाने लगते और मदहोष हो जाते। आत्मा अपने प्रियतम के चरणों में जा पहुँचती और तमाम रूहानी चक्र जागृत हो जाते।

जब वे सात वर्ष के ही थे कि आपकी माताजी चल बसीं। बाद में उनका लालन-पोषण एक मुसलमान खातून ने किया जो बहुत होशियार थी और उनसे बहुत प्रेम करती थी। इन खातून की वे अंत समय तक बड़ी

खातिर और इज्ज़त करते रहे। जब कभी वे उनको देखने आतीं उनकी बड़ी खातिर करते और चलते समय भेंट देते।

छोटी उम्र में आपने उर्दू फारसी घर पर ही एक मौलवी साहब से पढ़ी। विद्यार्थी जीवन में जिस मकान में आप रहते थे वह छोटा था, इसलिए आपने मुफ़्ती साहब के मदरसे में एक कोठरी किराये पर ले ली थी। उस कोठरी के बगल में दूसरी कोठरी में हुजूर महाराज रहते थे। आप उस वक्त आठवी कक्षा में पढ़ते थे और कभी-कभी पढ़ाई की मुश्किलें हल करने के लिये हुजूर महाराज के पास चले जाया करते थे। हुजूर महाराज उनके साथ बड़े प्रेम से पेश आते क्योंकि आप उनकी रहनी-सहनी और ईश्वर प्रेम से वाकिफ थे। जनाब लालाजी महाराज को भी हुजूर महाराज की सोहबत में एक खास आनंद मिलता था लेकिन वे नहीं जानते थे कि हुजूर महाराज एक परम संत हैं।

कुछ समय बाद जनाब लालाजी महाराज का विवाह हो गया और थोड़े दिनों बाद उनके पिताजी का स्वर्गवास हो गया। यद्दपि काफ़ी जायदाद उनके पिताजी ने बेच दी थी फिर भी बहुत कुछ बचा था जिसे वे दुर्भाग्यवश राजा मैनपुरी से एक मुकदमे में हार गये। जनाब लालाजी महाराज जो हमेशा घोड़ा गाड़ियों और पालकियों में चलते थे, अब नंगे पाँव या लकड़ी की चट्टी पहनकर चलते और घर का गुजारा बड़ी मुश्किल से ज्यूँ-त्यूँ करके होता। फतेहगढ़ के कलेक्टर आपके पिताजी के वाकिफ थे, उन्होंने दस रूपये महीने पर आपको कचहरी में पेड-अपरेंटिस लगवा दिया। घर का खर्चा इसी मामूली सी कमाई से चलता। फतेहगढ़ और फर्रुख्बाद में चार मील की दूरी है, इस तरह आपको रोज 8-10 मील पैदल चलना पड़ता था।

जनाब लालाजी महाराज के अध्यात्मिक जीवन की शुरुआत तो उनकी पूज्य माताजी की गोद में ही हो गयी थी। बाद में वे अपने साथियों के साथ अक्सर स्वामी ब्रह्मानन्दजी के पास जाया करते थे, जो उस समय 150 वर्ष के हो चले थे। वे अक्सर अपनी बातचीत में हुजूर

महाराज का जिक्र करते थे और कहा करते थे कि वे फर्रुखाबाद के संत-शिरोमणि हैं लेकिन जनाब लालाजी महाराज को यह नहीं मालूम था कि जिन सूफ़ी संत का वे जिक्र करते हैं वे उनकी कोठरी की बगल वाली कोठरी में रहने वाले हुजूर महाराज ही हैं।

नौकरी मिलने के कुछ महीने बाद एक दिन महात्मा श्री रामचन्द्रजी को फतेहगढ़ कचहरी से लौटने में देर हो गयी। अँधेरी रात थी, बादल गरज रहे थे, बिजली चमक रही थी और मूसलाधार बारिश हो रही थी। जाड़े के दिन थे, आप बारिश में बुरी तरह भीग गये थे और बहुत दयनीय स्थिति में थे। जब आप बड़े दरवाजे से होकर अपनी कोठरी की तरफ़ जा रहे थे, हुजूर महाराज की प्रेम भरी दृष्टी आप पर पड़ी। उनको बड़ी दया आई और बोले-"इस तूफ़ान में इस वक्त आना।" महात्मा श्री रामचन्द्रजी कहा करते थे कि इन शब्दों में बड़ा प्रेम भरा हुआ था। आपने बड़ी विनम्रता से आदाब पेश किया। हुजूर महाराज ने दुआ दी-अल्लाह अपना रहम करे और बोले-"बेटे ! जाओ भीगे कपड़े बदल डालो, फिर हमारे पास आना और थोड़ी देर आग से हाथ-पैर सेंक कर फिर घर जाना।" महात्मा श्री रामचन्द्रजी ने ऐसा ही किया और आपके पास हाजिर हुए। हुजूर महाराज ने तब तक मिट्टी की अंगीठी में आग सुलगा रखी थी। महात्मा श्री रामचन्द्रजी ने सलाम अर्ज किया। हुजूर महाराज ने आँख उठाकर देखा। आँख से आँख का मिलना था कि महात्मा श्री रामचन्द्रजी के शरीर में सर की चोटी से लेकर पाँव की उँगलियों तक एक बिजली सी दौड़ गयी। तन-बदन का होश जाता रहा। ऐसा मालूम होता था कि दोनों आत्माएँ मिलकर एक हो गयी हैं। हुजूर महाराज ने बड़ी कृपा करके उन्हें अपने बिस्तर पर बैठा लिया और अपनी रजाई ओढा दी। महात्मा श्री रामचन्द्रजी कहा करते थे कि "उस वक्त एक अजीब आनंद का अनुभव हो रहा था और एक कैफियत मस्ती की थी। शरीर बहुत हल्का मालूम होता था और ऐसा लगता था कि मैं आसमान में उड़ रहा हूँ और सारा शरीर प्रकाश से दैदीप्यमान है।" आप लगभग दो घंटे इसी हालत में बैठे

रहे। इतने में बारिश बंद हो गयी और आप आज्ञा लेकर घर चले आये। कोठरी के बाहर यह मालूम होता था कि प्रकाश फैला हुआ है, जिसमें दरख्त, दरो-दीवार, जानवर और सभी वस्तुएं नाच रहीं हैं। उनके पिण्डी और ब्रह्माण्डी तमाम चक्रों से अनाहत नाद[4] (ॐ शब्द) जारी था और ऐसा मालूम होता था कि उनकी जगह हुजूर महाराज ने ले ली है।

घर आने पर खाना खाने को तबियत नहीं चाहती थी। बैगर खाए ही सो रहे। रात को स्वप्न में आपने फ़क़ीरों का एक बड़ा समूह देखा और समूह में हुजूर महाराज और स्वयं को भी देखा। एक सिंहासन आसमान से उतरा, जिस पर एक तेजस्वी महापुरुष विराजमान थे। सब लोग उन्हें देखकर खड़े हो गये। हुजूर महाराज ने आपको उनकी सेवा में पेश किया। उन महापुरुष ने बड़ी मुहब्बत से आपकी ओर देखा और फ़रमाया कि इनका रुझान शुरु से ही परमात्मा की तरफ़ है।

दूसरे दिन आपने यह सब हुजूर महाराज को सुनाया। वे बहुत प्रसन्न हुए और थोड़ी देर ध्यान-मग्न हो गये और फिर फ़रमाया-"यह स्वप्न नहीं है। तुम्हारी हस्ती जन्म से ही परमात्मा की ओर मायल (झुकी हुयी) है। तुमको इस वंश के पूर्ववर्ती महापुरुषों ने अपनाया है। तुम्हारा जन्म भूले-भटके हुए जीवों को सच्चे रास्ते पर लाने के लिये हुआ है। ऐसी आत्माएँ मुद्दतों बाद आती हैं। तुम्हारी जो हालत पहली ही बैठक में हुयी, वह मुद्दत की तपस्या के बाद किसी-किसी की होती है। जब कभी तुम मेरे सामने से निकलते थे और आदाब पेश करते थे, मेरी तबियत तुम्हारी तरफ़ खिंचती थी। प्रेम का एक सैलाब सा उमड़ता था और इस

[4] अनाहत नाद-वह नाद जो सभी प्राणियों, समस्त चराचर में, बिना उनकी इच्छा के, जीवित होने के प्रमाण स्वरूप अनवरत रूप से सृष्टिकर्ता की उपस्थिति का अहसास कराता गूँज रहा है।

तरह तुम बराबर मुझसे फैजयाब[5] होते रहे। अल्लाह ने चाहा तो बहुत जल्दी फ़नाफिलशैख़[6] ही नहीं, फ़नाफिलमुरीद[7] का दर्जा हासिल करोगे। अगर नागवार खातिर (आपत्ति) ना हो और फुर्सत हो और तबियत चाहे तो इस फ़क़ीर के पास आते रहो।" उनके ये शब्द खरे उतरे और महात्मा श्री रामचन्द्रजी को सन 1986 में हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, कबीरपंथी, जैन और बोध आदि सम्प्रदायों के सिद्ध संत-महात्माओं, मठाधीशों और विद्वानों की सहमति से पूर्ण आचार्य और सतगुरु की पदवी देकर हुजुर महाराज का अध्यात्मिक उत्तराधिकारी घोषित किया गया।

महात्मा श्री रामचन्द्रजी को हजरत मौलाना फ़ज्ल अहमद खान साहब ने किस प्रकार सभी संत-महपुरुषों की सहमती और इज़ाज़त के साथ अपना उत्तराधिकारी घोषित किया इसके बारे में उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि "हुजूर महाराज ने 9, 10 व 11 अक्टूबर 1896 को एक उर्स का आयोजन किया जिसमें सभी धर्म व सम्प्रदायों के संत व महात्माओं को बुलाया गया। उर्स के अंतिम दिन 11 अक्टूबर 1896 को एक अति विशिष्ट व्यक्तियों की सभा हुयी जिसमें दूर-दूर से आये हुए सभी धर्म व सम्प्रदायों-हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, कबीर-पंथी, जैन, बोद्ध इत्यादि के तत्कालीन पीर-मुर्शदना, प्रमुख संत-सतगुरु, मठाधीश इत्यादि की पदवियों से विभूषित व पदासीन महानुभाव सम्मिलित थे। सबके सामने मुझ अकिंचन को प्रस्तुत करते हुए हुजूर महाराज ने घोषणा की-'इस फ़क़ीर को बुजुर्गाने सिलसिला आलिया नक्शबंदिया-

---

[5] फैज-आत्मिक कृपा-धार; शक्तिपात। हालाँकि यह केवल सूफ़ी-संतों तक ही सीमित हो, ऐसा नहीं है, लेकिन यह सूफ़ी-संतों की एक विशेषता है जिसके द्वारा वे अपनी अध्यात्मिक उर्जा का सम्प्रेषण साधकों में करते हैं।

[6] फ़नाफिलशैख़-शिष्य का गुरु में लय अवस्था प्राप्त करना (अर्थात तदरूप होना)।

[7] फ़नाफिलमुरीद-गुरु का शिष्य में लय होना।

मुजद्दिदिया-मजहरिया की तरफ़ से यह हुक्म हुआ है कि अजीज रामचन्द्र को इज़ाज़त ताम्मा दे दी जाये । लिहाजा बुज़ुर्गान ! ब-राहे मेहरबानी, बाद इम्तहान इसकी तस्दीक या तर्दीद (रद्द करना) फ़रमा देवें।

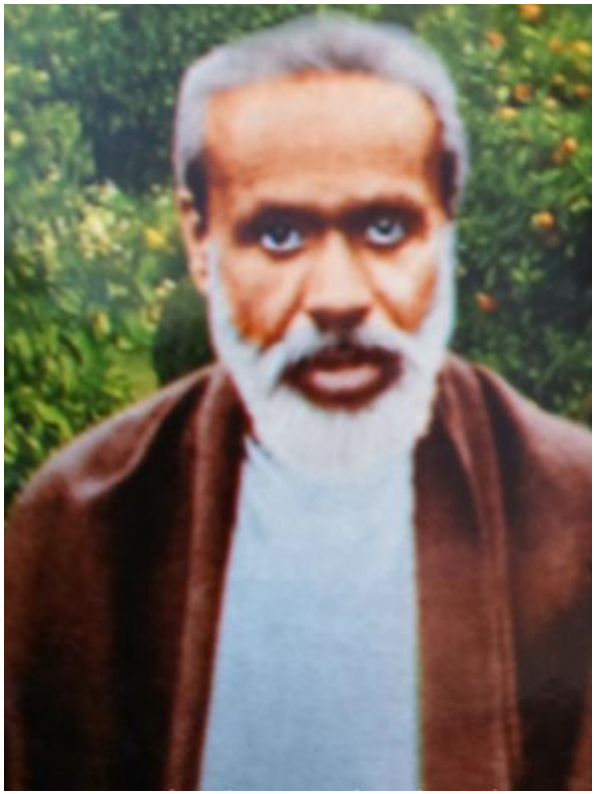

महात्मा श्री रामचन्द्रजी (फतेहगढ़)

इसके बाद मेरे सरकार ने मेरा घरेलू नाम लेकर अत्यन्त ही स्नेहमयी भाव के साथ संबोधन किया-बेटे पुत्तू लाल ! इन्हें तवज्जोह दो और जो भी सवाल ये तुमसे पूछें उनका ठीक-ठाक उत्तर देना । मालिक तुम्हें

कामयाबी दे।' अपने हजरत क़िब्ला की आज्ञापालन में मैंने तनिक भी देर ना की। मेरी आखें मानो स्वत: ही मुंद गयीं। तदन्तर धुएँ कि मानिंद विचारों की श्रृंखला का एक सोता मेरे अंतर से फूट निकला। सम्भवत: गुरुदेव के प्रति आभार प्रदर्शन का यह स्थूल रूप था। 'इतना ही बहुत था, तुमने मुझे अपने चरणों में आश्रय दिया, मुझ अधम को अपनाया। मुझ अपात्र पर तुम्हारी प्रीती की बारिश, जो प्रतिक्षण मुझे शीतलता देती है। तुम्हारे अपार वात्सल्य और प्यार में मैं डुबकियाँ लगा रहा हूँ-कहीं कुछ ओर-छोर नहीं मिलता। आज तक जो भी मुझसे हुआ है अथवा जब से तुम मेरी बात-बात पर अपार अहेतुकी कृपा की वृष्टि सी करने लगते हो, इसमें मेरा कुछ भी तो नहीं, नहीं प्रयास भी मेरा नहीं। जो कुछ भी है, तुम्हारी ही प्रेरणा की अमर-बेलि के पत्र पुष्प हैं-शायद तुमने पहचाना नहीं होगा। तुम्हारे प्यार ने जैसा चाहा, वैसा ही मुझसे हुआ। मेरे सर्वस्व के मालिक ! मेरी दृष्टी तो एकमात्र तुम्हारी ही ओर है। तुम्हारी ही इच्छा पूर्ण हो।'

इसके बाद स्थूलता के बादल खुद ही छटने लगे और कुछ क्षणोंपरांत मानों पौ सी फटी। गुनगुना प्रकाश दृष्टिगत हुआ और उसी के पार, मैंने पहचान भी लिया, कि यह मेरे सतगुरु कृपा का सूक्ष्म रूप था जो भावों की स्थूलता से वापस आकर अब इस पार झांक रहा था। गुरु-कृपा के ऐसे मनोहारी और तांडव नृत्य से यह मेरी पहली पहचान थी। मुझे क्या पता था कि ये ही प्रलय से साक्षात्कार के क्षण थे; गजब हो गया। विचार-शून्यता अब बढ़ते-बढ़ते, तम के स्तर पर पहुँच रही थी। मुझे अपने स्वयं का स्वरूप और शनै:-शनै: उसका अहसास भी समाप्त प्राय: सा होता प्रतीत होने लगा व बीच-बीच में जब ध्यान सुधि के स्तर पर वापस आता तो वहाँ भी अपने प्रियतम गुरुदेव के अतिरिक्त कुछ ना पाता था। धीरे-धीरे इसी (उन्हीं का अस्तित्व) का विस्तार होता प्रतीत हुआ, और इस सीमा तक कि मानों सारी सृष्टि ही उसमें समाहित हो जाएगी। एक अपूर्व आलौकिक आनंद की स्थिति थी। अपनी वंश परंपरा के सभी गुरुजन,

एक प्रकाशपुंज के उस पार, गुपचुप, लुकाछिपी के मध्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होते रहे। ऐसा लगता था मानों प्रकृति स्वयं अपनी पूर्ण गरिमामयी नृत्य अवस्था में हो और आनंद ही आनंद छितरा हुआ था। कुछ समय तक सतनाम की गूँज उसी दृश्य में अवस्थित रह कर बड़ी ही मनोहारी-संगीतमयी आभा के मध्य अपना विश्राम देती रही। बाद में यह भी ना रही। जो भी था, ना वहाँ प्रकाश था, ना अन्धकार। कोई रंग ना था, कोई ध्वनी ना थी। रंगहीन प्रकाश पिंघल-पिंघल कर समस्त सृष्टि को अपने अस्तित्व में समेट लेना चाहता था। ऐसा जगमग वातावरण जिसमें असंख्य सूर्यों का प्रकाश व कांति कम पड़ रही हो। प्रेम व आनंद से सरोबार इसी सोते में वे सभी भीगते रहे, उतरते रहे। लगभग एक घण्टे के बाद ऐसा लगा कि हम पुन: अपनी सामान्य चेतना में वापस लौट रहे थे। इसी बीच मैंने अनुभव किया कि हुजूर महाराज भी वहाँ लीलारत थे व उनके आदेश ने मेरी चेतना को छुआ-'अब बस करो।'

धीरे-धीरे सभी ने आँखें खोल दी। सभी के चेहरों पर एक अभूतपूर्व प्रसन्नता और तुष्टिभाव की स्वीकारोक्ति की झलक थी। अब बधाईयों की बौछार हो रही थी, मेरे हजरत क़िब्ला पर। शब्द कम पड़ रहे थे जिनकी पूर्ती नम आखें करती-कभी उनकी तो कभी किसी तीसरे या चौथे या किसी अन्य की। पूरे वातावरण में एक 'होली' जैसा माहौल था। सभी का मिला-जुला निर्णय था-'इन्होने (इस अकिंचन दास ने) कमाल हासिल किया है। सतपद तक रसाई ही नहीं, उसमें लय अव्स्था प्राप्त की, स्थिरता और वहाँ का अधिकार प्राप्त किया है।"

इसके बाद महात्मा श्री रामचन्द्रजी से कुछ सवाल पूछे गये, जिनके उन्होंने विस्तार से संतुष्टिजनक उत्तर दिए। छोटे-छोटे प्रश्नों से अब बारी जा पहुँची बड़े-बड़े और कठिन प्रश्नों की। महात्मा श्री रामचन्द्रजी के शब्दों में:

"प्रश्न जो मेरे सामने रखा गया था वह यह था कि-मृत्यु क्या है ? उसके बाद की स्थिति क्या है ? मेरे हजरत क़िब्ला ने मेरी पीठ

थपथपायी और वहीं पीछे एक ओर बैठ गये। आँखों ही आँखों में इशारा हुआ और मैं यंत्रवत शुरु हो गया। ये मेरे जीवन के सबसे कीमती क्षण थे और मैं महसूस कर रहा था कि मेरी वाणी के परोक्ष में वह चमत्कार हुजूर महाराज के अतिरिक्त अन्य किसी का नहीं हो सकता। सभी मंत्र-मुग्ध होकर सुन रहे थे और बोलते-बोलते लगभग एक घण्टे बाद जब मेरे पास शब्दों की कमी पड़ने लगी तो उनका स्थान भावावेश ने ले लिया और उसी के मध्य ना जाने कैसे और किस के बलबूते पर मैंने घोषणा कर डाली-'ऐ मेरे सम्मानीय विद्वानों और संतों ! मौत के बारे में शब्दों के माध्यम से जितनी भी जानकारी संभव थी, मैंने आपके सामने प्रस्तुत की। अब यह अकिंचन दास, मौत की वास्तविकता का आभास आप सब के अनुभव में उतारने की कोशिश करता है।' और इसी बीच यंत्रवत ही सभी कि आँखे धीरे-धीरे स्वत: ही मुंदती गयीं और गहरे सन्नाटे के मध्य उन सब को मृत्यु की वास्तविकता के दर्शन हुए। आँखें खुली मेरे हुजूर के चमत्कारिक आदेश के अनुरूप। अभी भी वहाँ पर एक अनुपम दृश्य था। सभी की आँखों से प्रेमाश्रु झर रहे थे। यह कैसा पागलपन था, यह कौन सा जुनून था। इस अन्नमय भौतिक शरीर में जीवात्मा के 'कारण शरीर' का आभास और उससे साक्षात्कार इसी जीवन में मृत्यु के दर्शन और उससे पार के दृश्यों का अवलोकन। सभी कुछ एक महान आश्चर्य ही नहीं, विश्व की आध्यात्मिकता के इतिहास में एक ऐसा अध्याय था जो नवीन तो था ही, विलक्षण और अविश्वसनीय भी। महफिल एक बार फिर गरम हो चुकी थी। गहमागहमी और कसरत बधाईयों की थी। जी, हाँ, बधाईयाँ इस बार भी मेरे सरताज, मेरे गुरुदेव को ही दी जा रहीं थी। मैं आवाक और किंकर्तव्यविमूढ़, उनके एक ओर बैठा इस प्रतीक्षा में था कि कुछ भी ऐसा हो और मैं सशरीर उनके अस्तित्व में विलीन हो जाऊं। मैं नहीं जानता कितनी देर तक यह सब चलता रहा।

कुछ क्षणोंपरान्त रंग फिर बदला और एक सामूहिक प्रश्न उभरकर आया जो अब मेरे लिये ना होकर मेरे सरकार के लिये था। पूछा जा रहा

था, कैसा अनुराग है, यह कहाँ का दीवानापन है, उर्जा का यह कौन सा संवेग है कि एक नक्शबंदी सूफ़ी जिसे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर रहा है वह वेदांती हो ? यह कैसे हो सकता है ? वेदांती भी वहाँ उपस्थित थे। उनकी जिज्ञासा थी वेद और उपनिषदों का ऐसा व्यवहारिक ज्ञान अभी तक सूफियों के यहाँ क़ैद कैसे रह पाया और वह भी इतना शांत और गुपचुप कि किसी को भनक भी नहीं लग पाई कि इतनी बड़ी आवश्यकता अभी तक क्रान्ति क्यों नहीं बन पायी ?

पूरे तीन दिन के इस अविस्मर्णीय अधिवेशन की यह अंतिम सभा थी और उसका उपसंहार भी। इसी बीच जिस उमंग व प्रसन्नता के वे (हुज़ूर महाराज) पर्याय बने हुए थे, सब कुछ अब भावशुष्कता में बदल चुकी थी और उसी के मध्य वे अति सहज भाव से रू-ब-रू हुए-"दुनियाँ के सभी इंसानों में तर्जे रूहानियत (आध्यात्मिकता की धार) एक है लेकिन तर्जे माशरत (सामजिक रहन-सहन) अलग-अलग है।" आपने अपने संक्षिप्त से सम्भाष्ण में एक रहस्य उद्घाटन भी वहीं पर, उन सभी के सामने किया कि बात पुरानी है। एक बार जब स्वामी दयानन्दजी महाराज कायमगंज पधारे थे उस समय एक अति विशाल जलसा हुआ था। उसमें आर्यसमाजियों के अतिरिक्त अन्य धर्मों के संत व विद्वान भी सम्मिलित हुए थे और उसी क्रम में वे स्वयं भी अपने पीरो-मुर्शदना हजरत मौलवी अहमद अली खान साहब (रहम.) के साथ उनके भाषणों को सुनने गये थे। उस आर्य-सम्मलेन के बाद जब वे वापस हो रहे थे, तब रास्ते में जनाब खलीफाजी साहब (मेरे दादा गुरुदेव) ने पूज्य गुरुदेव को आदेश दिया था-'तुम भी इस सिलसिले आलिया के मिशन की तरक्की के वास्ते ऐसा ही कोई जवाँ मर्द तैयार करना। दादागुरु का निर्देश था-'ठीक स्वामी दयानन्दजी के जैसा।' प्रत्युत्तर में गुरुदेव ने सर झुकाकर इतना ही कहा था-'खादिम ने तो एक बबूल का पेड़ लगाया है।' पूज्य दादा गुरुदेव ने आसमान की तरफ़ हाथ उठाकर दुआ पढ़ी थी और इसके बाद भविष्यवाणी की थी-'इंशा अल्लाह वही इतना फले फूलेगा कि दुनियाभर

की तंगियों, दुखों और तक्लीफ़ो को अपनी रूहे-क़ल्ब में उतारकर जमीन पर हरियाली और सुकून बरपा कर देगा।'

इस घटना के वर्णन के बाद हुजूर महाराज ने एक बार फिर 'आमीन' पढ़ा और लगभग दो मिनट तक मौन हो अतीत में खोये रहे। पूज्य गुरुदेव ने अपने दोनों हाथों को उलट-पुलट कर देखा और अपने चेहरे पर खूब अच्छी तरह फिराया और फिर मुझे निहारकर फ़रमाया कि उस दिन के बाद, अजीज रामचन्द्र का रोज बिला नागा इन्तजार ही मेरी अपनी इबादत बन गया। वह मेरे लिये निहायत ही तसल्ली बख्श था जिस दिन शाम आँधी-पानी ने घमासान अँधेरा कर रखा था और अजीज रामचन्द्र मेरे कहने पर मेरी कोठरी में आये और फिर उन्होंने वह सारा किस्सा दोहराया।

मैं समझ सकता हूँ कि हुजूर महाराज के सम्मुख उस सभा की सामूहिक जिज्ञासा के प्रत्युत्तर में उनके बयान से वातावरण इतना संवेदनशील हो जायेगा। किसी को भी ऐसी आशा ना थी। मैं स्पष्ट अनुभव कर रहा था कि गुरुजनों की सम्पूर्ण श्रृंखला द्वारा आहूत आशीर्वाद ओस के मोतियों के भांति झर रहे थे जिनसे एक ओर सम्पूर्ण वातावरण को एक स्वर्गीय चाँदनी ने ढक लिया था वहीं दूसरी ओर सभी के अंतर में एक अद्भुत प्रेम का ज्वार अपनी हिलोरे ले रहा था। सभी उसमें कूक रहे थे, थकते ना थे।

कुछ देर के बाद सभा का समां और मौसम धीरे-धीरे बदलने लगा और सभी शांत और चुपचाप बैठे थे। पूज्य गुरुदेव ने मुझे अपने और अधिक निकट बुलाकर बैठा लिया। उनके एक ओर एक फाइल रक्खी हुयी थी जिसमें कुछ अत्यन्त अच्छी व आकर्षक लिखावट में पहले से लिखे हुए पत्र व दस्तावेज सुरक्षित रखे थे। उन पत्र-प्रपत्रों में से उन्होंने दो को, जिनको उन्होंने अति महत्वपूर्ण समझा वे बाहर निकाले और उसमे से एक उन्हीं के द्वारा पढ़ा गया। उसमे जो भी अंतर्वस्तु थी वह इस अकिंचन दास के बारे में ही थी। उसमें यह स्पष्ट किया गया था कि

पूज्य गुरुदेव के द्वारा मुझे ब्रह्मविद्या के किन-किन विषयों की जानकारी व किन-किन अध्यात्मिक केन्द्रों तक पहुँच व स्थायित्व प्राप्त कराया गया है। उसमें यह भी अंकित किया गया था कि उनके इस मुरीद ने दूसरे जिज्ञासु स्त्री-पुरुषों को किस-किस केंद्र (चक्र या लातायफ़) तक की यात्रा व पहुँच करा देने की योग्यता व क्षमता प्राप्त कर ली है। दूसरा पत्र सेवक के पक्ष में लिखा हुआ इजाज़तनामा था जो कि पहले सुनाये गये 'योग्यता प्रमाण-पत्र' के आधार पर था। दोनों ही प्रमाणपत्रों पर वहाँ उपस्थित संत-महानुभावों द्वारा, आम राय से सहमती प्रदान की गयी और सेवक को अनेकानेक आशीर्वाद प्रदान किये गये। क्योंकि वहाँ पर उपस्थित संत व गुरुजन अनेक धर्म-सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे अत: इस अकिंचन दास की पूरी-पूरी जांच व परीक्षा के बाद सभी ने अपनी-अपनी ओर से भी 'इजाज़तनामे' लिख-लिखकर हुजूर महाराज के हाथों से दिलवाए।

सभी में प्रमाणित किया गया था कि 'रामचन्द्र' नाम के इस सेवक को 'हिरण्यगर्भ' की स्थिति सुलभ व प्राप्त हुयी है। उन सभी प्रमाणपत्रों को मेरे पूज्य गुरुदेव ने, एक-एक शब्द पर अंगुली रख-रखकर पढ़ा। उसके बाद उन्होंने वहाँ पर उपस्थित एक वेदान्ती संत से 'हिरण्यगर्भ' की स्थिति संक्षिप्त में बताने के लिये कहा। उन संत ने बताया, 'हिरण्यगर्भे एस्टी यस्य स: हिरण्यगर्भ':। हिरण्य जिसके गर्भ से है वह हिरण्यगर्भ है। हिरण्य एक तेज, वर्चस्व, प्रभुत्व की शक्ति है, जिसे परमात्मा कहें, परमसत्ता कहें। यह शक्ति ही सूर्य में समाहित है, इस कारण यह हिरण्यगर्भ है। इसे सुनकर पूज्य गुरुदेव की मुखाकृति व उनकी आभा, उसकी कांति अब देखने लायक थी। फरमाने लगे 'रामचन्द्र ! आज तुम्हारी जात से तुम्हारे वालदैन और तमाम बुज़ुर्गाने सिलसिला-ऐ-नक्श्बंदिया-मुजद्दिदिया-मजहरिया का रुतबा बढ़ा है। गर मैं तुम्हें इस्लाम कुबूल करवाता तो तुम महज एक आम मुसलमान बन कर रह जाते। लेकिन तुम्हारी निस्बत से आज जो बातें आसमान, आफताब,

और जमीन की की जा रही हैं, ख़ुशी से मेरा सीना फटा जाता है। 'बेटे ! वक्त आएगा। जरूर आएगा। तुम आफताब की तरह चमकोगे। तुम्हारी जात से, इंशा अल्लाह आलम मुनव्वर होगा। तुम्हारी पीढ़ी-दर-पीढ़ी, तुम्हारे पोते-दर-पोते वली और पीर व महात्मा होते रहेंगे। बेटे ! यह बहुत बड़ी बात है।' सभी उपस्थित जनों ने 'आमीन' पढ़ा।"

हजरत मौलाना फ़ज्ल अहमद खान साहब नक्शबंदी सिलसिले के एक महान क्रांतिकारी सूफ़ी संत थे, जिन्होंने बिना किसी धार्मिक भेदभाव के महात्मा रामचन्द्रजी को जो एक हिन्दू थे अपना अध्यात्मिक उत्तराधिकारी बनाया और उनके माध्यम से इस आत्मिक मार्ग को हिन्दुओं में पहुँचाया। सूफ़ियों का रास्ता प्रेम का रास्ता है जिसकी नीवँ है गुरु-शिष्य के बीच प्रेम का मजबूत सम्बन्ध, जिसे सूफ़ी भाषा में 'निस्बत' कहा जाता है। इसी प्रेम की धार द्वारा गुरु अपनी आत्मिक उर्जा का सम्प्रेषण शिष्य के ह्रदय में करता है। अलग-अलग सूफ़ी सम्प्रदाय अपने-अपने तरीके से साधना करते हैं। नक्शबंदी सूफ़ी सम्प्रदाय, हजरत मौलाना फ़ज्ल अहमद खान, महात्मा रामचन्द्रजी और ठाकुर रामसिंहजी जिस सम्प्रदाय से सम्बन्धित रहे, एक प्रमुख सूफ़ी सम्प्रदाय है जिसमें मौन-साधना का अत्यधिक महत्त्व है। इसकी आधारशिला पैगम्बर मुहम्मद साहब ने हजरत अबु-बक्र सिद्दीक के माध्यम से रखी। वे पैगम्बर मुहम्मद के समकालीन, उनके स्वसुर और इस्लाम स्वीकार करने वाले उनके प्रथम साहिबा थे।

जब पैगम्बर मुहम्मद साहब को अल्लाह की ओर से यह हुक्म मिला कि वे भी मक्का छोड़कर मदीना चले जायें वे पैदल ही हजरत अबू बक्र सिद्दीक को उनके घर से लेकर मक्का से निकल गये। हजरत मुहम्मद बिना जूतों के अंगुलियों के बल चल रहे थे ताकि निशान मालूम ना हों। आपके पाँव जख्मी हो गये तब हजरत अबू बक्र सिद्दीक ने आपको कंधे पर सवार कर गारे सौर (सौर नामक गुफा) तक पहुँचाया।

इस ख्याल से कि गुफा में कोई खतरा हो सकता है, हजरत अबू बक्र सिद्दीक (रजि.) ने पहले स्वयं प्रवेश करने का निश्चय किया। गुफा में उन्हें साँप का एक बिल दिखलाई पड़ा जिसे उन्होंने अपने पाँव से ढक दिया। हजरत मुहम्मद (सल्ल.) भी गुफा में आकर हजरत अबू बक्र सिद्दीक की जाँघ पर सिर रखकर लेट गये। तभी एक साँप ने हजरत अबू बक्र सिद्दीक के पाँव में काटना शुरु कर दिया। हालाँकि साँप के काटने से उन्हें बहुत दर्द हो रहा था लेकिन उन्होंने अपना पाँव नहीं हिलाया, फिर भी उनकी आँख से एक आंसू हजरत मुहम्मद की गाल पर टपक पड़ा। जैसा कि क़ुरआन में लिखा है, "उन्होंने (हजरत मुहम्मद ने) अपने दोस्त [हजरत अबू बक्र सिद्दीक] से कहा-'उदास मत हो, अल्लाह हमारे साथ है।'" (8:40) पूछने पर हजरत अबू बक्र सिद्दीक ने कहा कि मैं उदास नहीं हूँ, लेकिन मुझे साँप के काटने से दर्द हो रहा है। मुझे डर है कहीं वो आपको नुक्सान ना पहुँचाए। मैं रो रहा हूँ क्योंकि मेरा हृदय आपके और आपकी सुरक्षा के लिये दग्ध हो रहा है। हजरत मुहम्मद इस उत्तर से बहुत प्रसन्न हुए और अपना हाथ उनके हृदय पर रखकर उसी क्षण उनके हृदय में अल्लाह का दिया सम्पूर्ण गुह्य ज्ञान उंडेल दिया, जैसा कि उन्होंने अपनी एक हदीस में फ़रमाया है-'जो भी अल्लाह ने मेरे हृदय में उंडेला, वह सब मैंने अबू बक्र के हृदय में उंडेल दिया।' इसके बाद आपने अपना हाथ हजरत अबू बक्र सिद्दीक के पाँव पर रखकर फ़रमाया-'अल्लाह के नाम पर जो रहमवाला और कृपालु है' और तुरंत उनका पाँव ठीक हो गया। इस तरह से नक्शबंदी सूफ़ी परम्परा की नीव हजरत अबू बक्र सिद्दीक के आश्रय में रखी गयी और उन्हें यह ज्ञान सीना-ब-सीना बख्शा गया। यह दिव्य गुह्य ज्ञान नक्शबंदी सूफ़ी परम्परा में सीना-ब-सीना उतरता चला आ रहा है। हजरत पैगम्बर ने अल्लाह के आदेश पर हजरत अबू बक्र सिद्दीक को (भविष्य में) इस सिलसिले में दाखिल होने वाले सभी सूफ़ी-संतों की रूहों का आह्वान करने को कहा और उन्हें अपने अनुयायियों का हाथ अपने हाथ में लेकर

दीक्षा प्राप्त करने के लिये कहा। हजरत अबू बक्र सिद्दीक ने अपना हाथ उनके ऊपर रखा, उनके ऊपर हजरत पैगम्बर ने और सबसे ऊपर अल्लाह ने और उन सबको सर्वशक्तिमान अल्लाह का यह नाद जो वहाँ सुनाई दे रहा था, दोहराने के लिये कहा:

अल्लाहू, अल्लाहू ,अल्लाहू हक़ !

अल्लाहू, अल्लाहू, अल्लाहू हक़ !

अल्लाहू, अल्लाहू, अल्लाहू हक़ !

सभी नक्शबंदी साधकों की रूहें (भविष्य में होने वाले साधक क्योंकि यह सिलसिला शुरू ही हजरत मुहम्मद एवम् हजरत अबू बक्र सिद्दीक से हुआ) उस समय वहाँ उपस्थित थीं, उन्होंने अपने शैखों को और उन शैखों ने जो हजरत मुहम्मद से सुना उसे दोहराया। सर्वशक्तिमान और सर्वोपरि परमात्मा ने खुत्बः-ऐ-ख्वाजगान (आचार्यों का जप) का रहस्य हजरत अब्दुल खालिक गजदेवानी को बतलाया जो इस सिलसिले में इस जिक्र के अग्रणी माने जाते हैं। हजरत अबू बक्र सिद्दीक इस घटना से अत्यन्त प्रसन्न एवम् चकित थे। इस घटना से उन्हें यह मालूम चला कि हजरत पैगम्बर ने इस यात्रा में क्यों उन्हें ही अपने साथ ले चलने के लिये चुना था। नक्शबंदी शैख़ गारे सौर में घटी घटनाओं को इस सिलसिले की आधारशिला समझते हैं। यह उनकी नित्य साधना का स्रोत ही नहीं बल्कि इस विश्वास का भी प्रणेता है कि सभी नक्शबंदी साधकों की रूहें उस समय एक साथ वहाँ उपस्थित थीं।

उस समय इस सूफ़ी सम्प्रदाय का नाम 'नक्शबंदी' नहीं था बल्कि बाद में यह नाम हजरत 'शाह बहाउद्दीन नक्शबंद' (1317-1389). के नाम पर यह नाम पड़ा। कहा जाता है कि शाह बहाउद्दीन नक्शबंद की तीव्र उत्कंठा थी कि उन्हें ऐसा मार्ग मिले कि जिसका अनुसरण करने से साधक को परमात्मा का साक्षात्कार हो जाये। दैवीय प्रेरणा के रूप में ईश्वर की ओर से यह प्रश्न हुआ कि तूने जो इस रास्ते में कदम रखा है, किस लिये ? शाह बहाउद्दीन नक्शबंद ने कहा 'कि जो कुछ मैं कहूँ या

चाहूँ वह हो ।' उत्तर मिला नहीं, जो कुछ हम कहते हैं या चाहते हैं वही होगा । शाह बहाउद्दीन नक्शबंद ने कहा "मैं ऐसा नहीं कर सकता । मुझे जो मैं कहूँ या चाहूँ, करने की इज़ाज़त होनी चाहिये वर्ना मुझे यह तरीकत (राह या सिलसिला) स्वीकार नहीं । मुझे फिर उत्तर मिला कि नहीं जो कुछ हम कहते हैं या चाहते हैं, वही होगा । मैंने पुन: कहा जो मैं कहूँ या चाहूँ, वह हो । तब मुझे पंद्रह दिन अकेला छोड़ दिया गया और मैं गहरे अवसाद से घिर गया । अंत में मुझे सुनाई दिया-'ओ बहाउद्दीन ! जो तुम चाहते हो, तुम्हें दिया जायेगा ।' मैं बहुत प्रसन्न था, मैंने कहा, मुझे ऐसा रास्ता चाहिये जिस पर चलने वाला सीधा परमात्मा के हुजूर में हाजिर हो जाये । मुझे मुशाहद: (दिव्य दर्शन) हुआ और आवाज सुनाई दी कि जो तुम्हे चाहिये वो दिया गया ।"

और यह तरीका है क़ल्ब (हृदय चक्र) का जाकिर होकर अनाहत नाद द्वारा निरंतर परमात्मा का जिक्र; नीचे के रूहानी चक्र छोड़कर हृदय चक्र (अनाहत चक्र) से शुरुआत कर इस एक चक्र को स्फुरित और जागृत कर बाकी के सभी चक्रों का भी स्वत: उर्जावान हो स्फुरित और जागृत होने से साधक का तीव्रता से अपने लक्ष्य की तरफ़ बढना । हजरत मुजद्दिद अल्फ़सानी (हजरत शैख़ फारुकी, सरहिंदी) ने हृदय चक्र से सीधे आज्ञा चक्र को स्फुरित और जागृत करने का मार्ग अपनाया और हजरत मिर्जा जानजाना (हजरत शैख़ हबीबुल्ला मिर्ज़ा जानजाना) ने इस प्रक्रिया में सतगुरु की दया और कृपा को प्रमुखता देने का कार्य किया और धीरे-धीरे इस सिलसिले में शिष्य की प्रगति में गुरु की सहायता और जिम्मेदारी का स्थान प्रमुखता पाता गया । महात्मा रामचन्द्रजी ने आज के युग की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए इस साधना पद्धति को मात्र गुरु के प्रति पूर्ण प्रेम व समर्पण पर आधारित कर इसे और भी सहज और सरल बना दिया । महात्मा डॉ. चन्द्र गुप्ता (ठाकुर रामसिंहजी के शिष्य) ने एक और कदम आगे बढ़कर गुरु और परमात्मा में कोई भेद ना माना । आपका फ़रमाना है कि "मेरे लिये मेरे गुरु के आलावा कोई और

भगवान नहीं है।" यह बात स्थूलता के स्तर पर नहीं कही गयी है बल्कि आपका तात्पर्य है कि सतगुरु का सारभूत ही ईश्वर का सारभूत है, तत्वत: गुरु और भगवान एक ही हैं। परमात्मा ही गुरु के हक़ीकी रूप में स्वयं अवतरित होता है । इस तरह यह सिलसिला आज वेदांत के अद्वैततावादी सिद्धांत को समाहित कर एक सरल और अत्यन्त प्रभावशाली साधना पद्धति में ढल गया है और विश्व के कोने-कोने में फ़ैल रहा है । इसीलिए वर्तमान में इस सिलसिले को नक्शबंदिया मुजद्दिदिया मजहरिया रामचन्द्रिया कहा जाने लगा है।

नक्शबंदी सूफ़ी सिलसिला अन्यों से थोड़ा इसलिए भिन्न है कि इसमें मौन साधना पर अधिक बल दिया जाता है। प्रेम का प्रवाह जाग्रत करना नक्शबंदी सिलसिले की विशेषता है । इस परम्परा में सतगुरु द्वारा शिष्य के हृदय में प्रेम जाग्रत किया जाता है। इसमें आत्मा आत्मा को आकर्षित करती है । इस परम्परा में साधना का सार अपने आप को पूर्णतया रिक्त कर सतगुरु के माध्यम से परम सत्य को हृदयंगम करना है । इस सिलसिले में अध्यात्मिक प्रगति का आधार रूहानी चक्रों को स्फुरित कर उन्हें पूर्ण उर्जावान बनाना है जो तवज्जोह द्वारा किया जाता है। परमात्मा की अद्वैतता को हृदयंगम करना इस सिलसिले के सूफ़ी संतों की साधना का सार है।

ठाकुर रामसिंहजी का इस सूफ़ी परम्परा से परिचय महात्मा रामचन्द्रजी द्वारा हुआ जिन्हें उन्होंने अपना प्रथम पत्र मार्च या अप्रैल 1929 के शुरू में लिखा। इस पत्र में उन्होंने मेस्मेरिज्म सीखने की इच्छा जाहिर की । 19.04.1929 को इसके उत्तर में लिखे पत्र में महात्मा रामचन्द्रजी ने लिखा: "जनाबेमन ! आपका खत मिला , परमात्मा आपको सत्य की ओर जाने की प्रेरणा करें। आपसे मिलने में मुझे ख़ुशी होगी। मेस्मेरिज्म मैं बिलकुल नहीं जानता और यह रास्ता अन्धकार की तरफ ले जाने वाला है। अगर आपकी इच्छा केवल मेस्मेरिज्म सीखने की है तो आपको कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। मैं तो केवल नाम आधार

हूँ और ईश्वर की ओर निगाह किए हुए हूँ, इसके सिवाय कुछ नहीं जानता । अगर आत्मज्ञान प्राप्त करने की इच्छा है तो यह फ़कीर हर वक्त मुन्तजिर (प्रतीक्षारत) है ।"

ठाकुर रामसिंहजी को यह पत्र निवाई में मिला और इस पत्र ने उन्हें सोचने पर बाध्य कर दिया । कुछ वक्त वे विचार करते रहे और इसी दौरान उनका तबादला सवाईमाधोपुर हो गया । सोच-विचार के बाद अपने लक्ष्य को निर्धारित कर ठाकुर रामसिंहजी ने महात्मा रामचन्द्रजी को दूसरा पत्र लिखा और उसके उत्तर में विलम्ब देख उन्होंने एक तीसरा पत्र लिखा । महात्मा रामचन्द्रजी ने 21.6.1929 को पत्र लिखा जो ठाकुर रामसिंहजी को सवाईमाधोपुर में 23.6.1929 को मिला । इस पत्र में उन्होंने लिखा: "अजीजेमन ! दुआ । आप लिखते हैं कि जवाब ना मिलने से दिल को तफ्क्कुर (अंदेशा) हुआ । जवाब हरफों और लफ्जों (अक्षरों और शब्दों) की शक्ल में कागज पर लिखा हुआ मिलता, उससे एक किस्म की तसल्ली हो जाती । इससे यह साबित होता है कि प्रकृति और दुनियावी पदार्थों से भी शांति और सुख मिला करता है, चाहे वह आरजी (अल्पकालीन) ही क्यों ना हो । असल बात यह है कि जो आपको और हर शख्श को दरकार है, वो सबके भीतर मौजूद है, सिर्फ ख्याल की हरकत मिलने की जरूरत होती है और यह ख्याल की हरकत मिलने का गुर सत्संग में है । सत्संग हमजिन्स का होना चाहिए । 'हमजिन्स' इन्सानों को कहते हैं । इन्सान को 'इन्साने-कामिल' (पूर्ण-पुरुष या सतपुरुष, महात्मा) का सत्संग जब मिलता है, तब ख्याल को हरकत तक्वियत (शक्ति, सहारा) प्राप्त होती है और इस कदर जिज्ञासु की जरूरत पूरा करने को काफी है । 'इन्सान-कामिल' शरीर और आत्मा दोनों की मिलावट का पुतला है । इसी तरह इन्सान और नाकिस इन्सान (अपूर्ण इन्सान) शरीर और आत्मा दोनों से मिलकर बना है । आत्मा सब ओर फैली हुई है और गैर-महदूद (असीमित, निर्बाध) है । इस आत्मा को फायदा और नुक्सान दूर और नजदीक से भी पहुँचता है । लेकिन शरीर

महदूद (स्थूल, सीमित) और इस्तिहाल (परिवर्तनशील) है, इसको हर फायदा और नुक्सान नजदीक से पहुँचता है, दूर से ऐसा अच्छा नहीं पहुँचता, जैसा नजदीक से। मतलब यह है कि शरीर और आत्मा का बड़ा घना सम्बन्ध है, इसलिए दोनों के लिए पहले-पहले नजदीक, आमने-सामने सत्संग की जरूरत पड़ती है। बिना इसके शुरू में जैसा फायदा होना चाहिए, नहीं पहुँच पाता है।

अगर किसी व्यक्ति में ऐसी काबिलियत मौजूद है कि वो दूर से ख्याल के जरिये फायदा और हिदायत हासिल कर सकता है तो फिर उसको हिदायत हासिल करने और फिर किसी खास शख्श से हिदायत की ज्यादा जरूरत भी नहीं है, वो खुद काबिल है। काबिल को क्यों तलाश होनी चाहिए ? लेकिन ऐसी काबिलियत मौजूद नहीं है तो नजदीक आने की जरूरत है, इसके बिना काम नहीं चल सकता। आप खतों के जरिए से जबानी और तहरीरी (लिखित) हिदायत चाहते हैं, यह हो सकती है और होती है, लेकिन वो उसी दर्जे की है, जो उसकी हैसियत है, जो बात होनी चाहिए वो नहीं हो सकती। इसलिए कोशिश करके एक दफा मिल जाइए या मुझको जब मौका होगा मिलूँगा। मेरे यहाँ आजकल लड़की की शादी 30 जून की है, उसमें मशगूल हूँ। उसके बाद सेहत और मौसम ने इजाज़त दी तो बाहर जाऊँगा। कुँवर रामसिंहजी साहब ! रईस महला इलाका जी के ख़त आ रहे हैं, चूरू स्टेशन से होकर जाऊँगा। उस वक्त अगर वो जगह रास्ते में मिल गई तो आपसे मिलूँगा।"

समय बीतता गया। जुलाई 1929 में जब ठाकुर रामसिंहजी सवाईमाधोपुर पुलिस स्टेशन में कार्यरत थे उनकी ड्यूटी अन्य पुलिस कर्मियों के साथ रेलवे प्लेटफार्म पर लगाई गई। महाराजा जयपुर सवाई मानसिंह II, जो उस समय मात्र 18 वर्ष के थे, सवाईमाधोपुर से ट्रेन पकड़ने वाले थे। मेयो कॉलेज, अजमेर से डिप्लोमा हासिल कर वे कनौता ठाकुर कर्नल केसरीसिंह और अपने अभिभावक लै. कर्नल सी. सी. एच्. टिव्स, जो उनकी शिक्षा, घुड़सवारी, खेल-कूद और शिकार आदि में

प्रशिक्षण का कार्य देख रहे थे, के साथ शिकार के लिए सवाईमाधोपुर आए थे और वे ट्रेन से लौट रहे थे। महाराजा मानसिंह कर्नल केसरीसिंह के साथ ट्रेन के एक स्पेशल कोच में बैठे थे। वर्षा ऋतु होने के कारण कुछ ही देर में भारी बारिश होने लगी। जैसे ही ट्रेन चलने लगी, सभी पुलिस वाले, अधिकारियों सहित, प्लेटफार्म से हट गए। तभी महाराजा मानसिंह ने खिड़की से झाँककर प्लेटफार्म के दूसरे सिरे पर देखा जहाँ 30-32 वर्ष का एक जवान पुलिसकर्मी उस वर्षा में 'सावधान' मुद्रा में खड़ा था। महाराजा मानसिंह उसकी कर्तव्यनिष्ठा से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने कर्नल केसरीसिंह से पूछा कि वह कौन है ? कर्नल केसरीसिंह ने बताया कि वह हैड कांस्टेबल रामसिंह भाटी है।

ठाकुर रामसिंहजी की नियुक्ति सवाईमाधोपुर में अक्टूबर 1929 तक रही। इस दौरान वे महात्मा रामचन्द्रजी महाराज से पत्रों के माध्यम से निरंतर सम्पर्क में रहे और उनसे उन्हें दर्शन देने की विनती करते रहे, लेकिन किसी ना किसी कारण से जिसमें महात्मा रामचन्द्रजी की रुग्णता और उनकी पुत्रवधु की आकस्मिक मृत्यु भी शामिल थे, यह मुलाक़ात टलती रही।

दिसम्बर 1929 में ठाकुर रामसिंहजी पलसाना पुलिस स्टेशन चले गए। उनके पलसाना नियुक्ति के दौरान महकमा राहदारी (कस्टम विभाग) के अधिकारियों में और रानोली गाँव के निवासियों के बीच एक झगड़ा हो गया। लोग रानोली गाँव से चोरी-छिपे मारवाड़ में अनाज ले जाने का प्रयास कर रहे थे। तभी ड्यूटी पर तैनात कस्टम वाले गाँव में पहुँच गए। गाँव की एक महिला जिसका नाम 'चेतो' (चेतो-अर्थात सावधान हो जाओ) था इन अधिकारियों की निगरानी की कार्यवाही को देख रही थी। संयोगवश तभी एक व्यक्ति ने उसका नाम 'चेतो' जोर से चिल्लाकर उसे पुकारा। 'चेतो' पुकार सुनकर गाँव वाले हाथों में लाठियाँ और डंडे लेकर अपने-अपने घरों से बाहर निकल आए और देखते-देखते कस्टम और गाँववालों में भीषण मार-पीट शुरू हो गयी। ठाकुर

रामसिंहजी जो थानाध्यक्ष थे और मामले की जाँच कर रहे थे उन्हें पुलिस उपायुक्त (डिप्टी कमिश्नर) चिमनसिंह ने निर्देश दिया कि कस्टम अधिकारियों को न्याय मिलना चाहिए । कस्टम अधिकारियों की अगुआई श्री किशन स्वरूप पारीक कर रहे थे जो विभाग में अभी नए-नए ही आए थे। उनके बयान को कलमबन्द करते वक्त ठाकुर रामसिंहजी ने उन्हें समझाया-"नेक नियति से अच्छे कर्म करो। चेतो पुकार सुनकर चोर सावधान हो गए। पारीकजी आप भी सावधान हो जाओ, अभी समय है। आप ब्राह्मण हैं, ब्राह्मणों जैसा आचरण अपनाओ। अगर आप सही-सही बात बताएँगे तो परमात्मा भी आपकी सहायता करेगा।" हालाँकि श्री पारीक विभाग में नए थे और ऐसी परिस्थिति से निपटने का उन्हें अनुभव नहीं था लेकिन ठाकुर रामसिंहजी के शब्दों से उन्हें सत्य बात कहने की हिम्मत मिली और मामला शांति से निपट गया।

पलसाना में ठाकुर रामसिंहजी की नियुक्ति फरवरी 1930 तक रही और तब तक श्री कृष्ण चन्द्र भार्गव का तबादला भी बांदीकुई रेलवे स्टेशन पर हो गया था । ठाकुर रामसिंहजी का महात्मा रामचन्द्रजी महाराज से पत्र-व्यवहार बना हुआ था । उनके एक पत्र के उत्तर में महात्मा रामचन्द्रजी महाराज ने 9 दिसम्बर 1929 को लिखा-"जब आपका पत्र मेरे पास पहुँचा, मैं आपको ही याद कर रहा था और मन में सोच रहा था कि ऐसा क्यों हो रहा था कि जब भी मैंने मन बनाया कोई ना कोई अड़चन सामने आ गयी । मेरी पुत्री जिसका अभी हाल ही में विवाह हुआ था और 12 दिसम्बर को ससुराल जाने वाली थी, उसे पहले मियादी बुखार (टायफायड) हो गया और फिर चेचक निकल आई। इसके बाद मेरी पुत्रवधु का देहान्त हो गया और मकान की मरम्मत की जरूरत आ पड़ी। किसी ना किसी कारण मुझे अपना इरादा टालना पड़ा। अब मैं बगैर इरादा (बिना योजना बनाए) बस किसी दिन ट्रेन में बैठ जाऊँगा और रास्ते से आपको सूचना दे दूँगा।" एक और पत्र में उन्होंने लिखा कि वे (ठाकुर रामसिंह) श्री कृष्ण चन्द्र भार्गव के सम्पर्क में रहें और उनके

पास अपने पते-ठिकाने की जानकारी रख छोड़े क्योंकि वे (महात्मा रामचन्द्रजी महाराज) उन्हें बांदीकुई में मिलेंगे।

ठाकुर रामसिंहजी श्री कृष्ण चन्द्र भार्गव के सम्पर्क में निरंतर बने रहे। कुछ समय बाद फरवरी 1930 में महात्मा रामचन्द्रजी महाराज का बांदीकुई आगमन हुआ और ठाकुर रामसिंहजी को इसकी सूचना दे दी गई। ठाकुर रामसिंहजी की महात्मा रामचन्द्रजी महाराज से पहली मुलाकात श्री कृष्ण चन्द्र भार्गव के घर पर फरवरी 1930 में बांदीकुई में हुई। इस पहली मुलाक़ात में ही महात्मा रामचन्द्रजी ने उनकी ओर देखकर कहा-"रामसिंहजी ! मैंने आपको बहुत पहले ही देख लिया था; आप हूबहू वैसे ही हैं जैसा मैंने आपको देखा था। यह आपका प्रेम ही है जो मुझे यहाँ खीच लाया है।"

इस पहली मुलाक़ात में ही ठाकुर रामसिंहजी अपना सर्वस्व महात्मा रामचन्द्रजी महाराज के चरणों में समर्पित कर हमेशा के लिए उन्हीं के हो गए। संयोगवश तभी ठाकुर रामसिंहजी को क़ानून सम्बन्धी एक ट्रेनिंग के लिए दो महीनों के लिए पलसाना से जयपुर भेजा गया था। आग्रह कर वे महात्मा रामचन्द्रजी महाराज को अपने साथ जयपुर ले आए। जयपुर में महात्मा रामचन्द्रजी महाराज के ठहरने का प्रबन्ध उन्होंने सांथा ठाकुर कल्याणसिंह की हवेली में किया और अपने बहुत से साथियों को उनके दर्शन और सानिद्ध्य प्राप्त करने के इस सुअवसर का लाभ उठाने का निमन्त्रण दिया। महात्मा रामचन्द्रजी महाराज को सांथा ठाकुर कल्याणसिंह की हवेली में 2-3 दिन से अधिक रुकना पसन्द नहीं आया और वे वहाँ से मनोहरपुरा ठाकुर मंगलसिंहजी के घर आकर ठहरे। उन्होंने ठाकुर रामसिंहजी से कहा-"यह आपने मेरे ठहरने का इन्तजाम कहाँ कर दिया ? यदि साधक गुरु के दर्शाए मार्ग पर ना चले लेकिन गुरु फिर भी उसे ज्ञान देने पर उतारू हो तो ऐसे गुरु को विष्ठा से भरे मार्ग से गुजरने जैसा कष्ट सहन करना पड़ता है।"

सांथा ठाकुर कल्याणसिंह की हवेली छोड़ जयपुर रेलवे स्टेशन से ठाकुर रामसिंहजी महात्मा रामचन्द्रजी महाराज को ट्रेन द्वारा सांगानेर स्टेशन लेकर आए, जहाँ से वे दोनों मनोहरपुरा गाँव तक करीब दो मील पैदल चलकर गए। ठाकुर रामसिंहजी के सुपुत्र हरीसिंह जो लगभग 6 वर्ष के थे और उनकी सुपुत्री दयाल कँवर, एक वर्ष से कुछ बड़ी, दोनों ने महात्मा रामचन्द्रजी महाराज के चरणों में दण्डवत प्रणाम किया और उनसे आशीर्वाद पाया। वे दोनों महात्मा रामचन्द्रजी महाराज के दर्शन कर बहुत खुश होते और उन्हें देखकर दिल खोलकर हँसा करते थे।

मनोहरपुरा में ठाकुर रामसिंहजी ने महात्मा रामचन्द्रजी महाराज के ठहरने के लिए अपने घर में पहली मंजिल पर स्थित कमरे में इंतजाम किया। इस कमरे में रंगीन काँच जड़े हुए थे। घर के मुख्य दरवाज़े के दोनों ओर चबूतरे बने हुए थे जहाँ दिन में आने वाले सत्संगी बन्धु बैठ जाते थे। महात्मा रामचन्द्रजी महाराज के सम्मान में श्रीमती गोपाल कँवर (ठाकुर रामसिंहजी की पत्नी) ने स्थानीय भाषा में एक गीत भी रचा था जो वे अन्य महिलाओं के साथ गाती थीं। उस गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार थीं:

"रामजी-प्रभुजी, भला ही सूरज उगियो,
सतगुरु आया पावना-महात्मा आया पावना,
धनघड़ी-धनभाग, सतगुरुजी आया पावना,
हो रामजी, मखमल आसन ढालियो,
प्रभुजी दूध से धोऊँ गुरूजी का चरण-कमल,
चरणामृत लेऊँजी-रामचन्द्र आया पावना"

(हे परमात्मा ! हमारे जीवन में प्रकाशमान सूर्य उदित हुआ है; महात्मा हमारे यहाँ अतिथि बनकर पधारे हैं। यह कितना मंगलकारी और शुभ है कि महात्मा अतिथि के रूप में आए हैं। हे रामजी ! मैं उनके बैठने के लिए मखमल का बना कालीन बिछाती हूँ और उनके चरण-कमल दूध से धोकर उस चरणामृत को ग्रहण करती हूँ; महात्मा

श्रीरामचन्द्रजी महाराज की अतिथि रूप में सेवा का यह सौभाग्य हमें मिला है।)

मनोहरपुरा में महात्मा रामचन्द्रजी महाराज को घर जैसा ही सुकून मिला। ठाकुर मंगलसिंहजी, उनकी पत्नी (ठाकुर रामसिंहजी के माता-पिता) और अन्य रिश्तेदारों के आदर और स्नेहपूर्ण व्यवहार से प्रसन्न हो अजमेर जाने तक वहाँ कुछ दिन रुके।

मई 1970 में ठाकुर रामसिंहजी टी.बी. सेनेटोरियम में तपेदिक के इलाज के लिए भर्ती हुए थे जहाँ उन्होंने एक दिन महात्मा रामचन्द्रजी महाराज से इस मुलाक़ात के बाद अपनी हालत का बयान इस प्रकार किया-"दूसरे दिन जब मैं चांदी की टकसाल से इक्के में बैठा आ रहा था तो तांगे वाले ने एक शेर पढ़ा:

'अजब तेरे इश्क का यह असर देखता हूँ,
कि तरक्की पे दर्दे-जिगर देखता हूँ,
समाया है जबसे तू मेरी नज़र में,
जिधर देखता हूँ, तुझे देखता हूँ।'

यह शेर बिल्कुल मेरी हालत बयान कर रहा था। अगले दिन जब मैं बड़ी चौपड़ से छोटी चौपड़ की ओर आ रहा था तो ऐसा लगा कि मैं उनकी (महात्मा रामचन्द्रजी महाराज की) तरह चल रहा हूँ, उन्हीं की तरह देखने लगा हूँ। जब महात्मा रामचन्द्रजी महाराज जयपुर से अजमेर पधारने लगे तो मैंने रेलगाड़ी में एक गुलाब का गुलदस्ता भेंट किया। इस पर महात्मा रामचन्द्रजी महाराज ने फ़रमाया, 'तुम्हारा यश गुलाब के फूल की तरह फ़ैले' और आशीर्वाद दिया कि 'फनाफिलमुरीद' हो।"

पहली ही मुलाक़ात में ठाकुर रामसिंहजी तदरूप अर्थात अपने गुरु महाराज जैसे हो गए थे। महात्मा रामचन्द्रजी महाराज 3 मार्च तक मनोहरपुरा रहे और ठाकुर रामसिंहजी सांगानेर जंक्शन से जयपुर रेलवे स्टेशन तक ट्रेन में उनके साथ आए थे। उनकी बात करते ठाकुर रामसिंहजी बोले-"मेरी नालायकी की कोई सीमा नहीं थी, खुद तो उनके

दर्शन करने गया नहीं, उलटे उनसे ही दर्शन देने का कष्ट करने का अनुरोध करता रहा। गुरु-भगवान के चरण-कमलों के लिए अपनी चमड़ी के जूते बनाकर भी मैं इस कृपा का मोल नहीं चुका सकता।"

शुरू में महात्मा रामचन्द्रजी महाराज को ठाकुर रामसिंहजी 'गुरु महाराज' कहकर सम्बोधित किया करते थे लेकिन 1933 (महात्मा रामचन्द्रजी महाराज के पर्दा कर जाने के बाद) उन्होंने उन्हें 'गुरु-भगवान' सम्बोधित करना शुरू कर दिया था और शेष जीवन उन्हें गुरु-भगवान ही कहते रहे।

अपनी यात्रा समाप्त कर महात्मा रामचन्द्रजी 1 अप्रैल 1930 को फतेहगढ़ पहुँचे और वहाँ से उन्होंने ठाकुर रामसिंहजी को पत्र लिखा कि उन्हें यह जानकर (ठाकुर रामसिंहजी के पत्रों द्वारा) ख़ुशी है कि सभी लोग उनसे प्रेम करते हैं और उन्हें याद करते हैं और अपनी रूहानी तरक्की के लिए कुछ-ना-कुछ कर रहे हैं। ठाकुर कल्याणसिंह के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा कि उनको पहले से ही लगता था कि वे स्वयं अपनेआप से बिना किसी और की सोहबत के अपनी आत्मिक तरक्की के लिए कुछ नहीं कर पाएँगे। इस वक्त उनके वास्ते यही काफी है जान-पहचान हो गयी और रास्ता खुल गया और आईंदा अगर कभी मौका हुआ तो, ईश्वर से उम्मीद है कि उनकी तरक्की होगी। इन लोगों की गैर-जरूरी बातों में प्रवृति होने से इस तरफ झुकाव होने नहीं देती। परमात्मा का धन्यवाद है कि उनकी तरफ से और उनकी कुदरत से, ऐसे मामले प्रकाश में आए कि पिछले मामलात में खुद-ब-खुद कमी आ गई।

उन्होंने आगे लिखा-"आपकी वालिदा साहिबा (माताजी) का साया आप पर अभी और बना रहे, यही प्रार्थना है। क्या सीधे-सादे लोग हैं, अभी अक्सर याद आती है, और बच्चों की भी याद आती है जो मुझे देखकर बहुत खुश होते थे। आपकी वालिदा साहिबा और बाईजी (सम्भवत: श्रीमती गोपाल कँवर) की निस्बत मुझको खूब उम्मीद थी कि उनके दिलों में याद ज्यादा अर्से तक रहेगी। यह जानकार ख़ुशी हुई कि

उनका दिल इस वक्त ताजा है और वे भूल नहीं गए। मैं सब साहबान की तरफ से खुश हूँ कि सबके दिल में मेरे लिए मुहब्बत है।"

ठाकुर रामसिंहजी की माताजी इसके बाद करीब एक वर्ष और आठ महीने जीवित रहीं और महात्मा रामचन्द्रजी के 14 अगस्त 1931 को महासमाधि लेने के पश्चात उसी वर्ष के अन्त में उन्होंने परलोकगमन किया।

अपने एक पत्र में महात्मा रामचन्द्रजी महाराज ने लिखा-"दो तरह के लोग परमार्थ की राह में कदम बढाते हैं। एक वो जो सच्चे जिज्ञासु होते हैं और ईश्वर को पाना जिनका वास्तविक उद्देश्य होता है। इसी उद्देश्य के साथ वे संत-महात्माओं के पास हाजिर होते हैं और इसके तुफैल में (इस अनुग्रह के कारण से) उनकी दुनियावीं ख्वाहिशें भी मौके-मौके से भगवान पूरी करते जाते हैं। लेकिन ईश्वर-भक्ति और तलाश की राह में यदि उनकी दुनियावीं ख्वाहिशें पूरी नहीं होती या उनकी इच्छानुसार नहीं होती तो वे इसकी परवाह नहीं करते ना ही इस कारण दुखी होते क्योंकि उनका असल मकसद तो परमार्थ ही था ना कि दुनियावीं लज्ज्तें। ऐसे व्यक्ति हजारों में से एक-दो होते हैं।

इसके पलट दूसरी तरह के लोग बहुत तादाद में मिलते हैं। ये ईश्वर भक्ति दुनिया को पाने के वास्ते करते हैं। उनका वास्तविक उद्देश्य अपनी ख्वाहिशें पूरी करना होता है। साधु-महात्माओं के सत्संग और उपदेश से अगर उनका संस्कार जाग जाए तो ईश्वर प्राप्ति हो जाती है और दुनिया के मतलब कभी तो इच्छानुसार पूरे हो जाते हैं और कभी नहीं। यदि उनकी इच्छाएँ पूरी नहीं होती तो वे अपना रास्ता बदल लेते हैं, साधु-महात्माओं में उनकी श्रद्धा नहीं रहती। ऐसे लोगों को ना दुनिया मिलती है ना परमार्थ सिद्ध होता है।

अपने 28 अप्रैल 1930 के पत्र में महात्मा रामचन्द्रजी महाराज ने ठाकुर रामसिंहजी को सूचित किया कि उस वर्ष सालाना भण्डारा ईस्टर की छुट्टियों में ना मनाकर 7 से 9 जून को मनाया जाएगा क्योंकि उस

दौरान स्कूल और कॉलेज की परीक्षाओं के कारण शिक्षकों, प्रोफेसरों और विद्यार्थियों सहित बहुत से लोग उसमें व्यस्त होंगे।

टी.बी. सेनेटोरियम में भर्ती के दौरान एक दिन ठाकुर रामसिंहजी ने बताया-"इस पत्र के प्राप्त होने पर मैं भण्डारे में शामिल होने के लिए फतेहगढ़ गया। उन दिनों मैं छिपकर सिगरेट पिया करता था और सिगरेट पीने से मुझे जोर से खाँसी आया करती थी। मैं घबरा जाता था लेकिन मैंने सिगरेट पीना नहीं छोड़ा। फतेहगढ़ में भण्डारे में सत्संग के समय किसी ने गुरु-भगवान के चरणों में अपना सिर रख दिया। गुरु-भगवान को उनका ऐसा करना पसन्द नहीं आया और उन्होंने उन्हें आगे से ऐसा करने से मना किया। उन सत्संगी भाई ने तब एक भजन सुनाया-'भज मन सतगुरु, सतगुरु, गुरु भज मन गुरु दाता रे....' महात्मा रामचन्द्रजी महाराज ने कहा यदि किसी के मन में ऐसा दृढ़ विश्वास हो तो ऐसा करना ठीक है लेकिन जो छिप-छिपकर ऐब करें उनके लिए यह ठीक नहीं है। उन्होंने जो कहा वो मेरे दिल में तीर सा लगा। मैं तुरंत उठकर बाहर गया और जेब में जितनी सिगरेट थी सब औरों को बाँट दी और उसके बाद कभी सिगरेट पीने का नाम नहीं लिया।"

बहुत वर्षों बाद महात्मा रामचन्द्रजी महाराज के सुपौत्र श्री दिनेश कुमार सक्सेना, जब वे छोटे ही थे, ठाकुर रामसिंहजी के घर मनोहरपुरा गए। उन्हें उसी कमरे में ठहराय गया जहाँ महात्मा रामचन्द्रजी महाराज ठहरे थे। कमरे में जाने पर उन्हें वह कमरा कुछ हिलता हुआ सा लगा। आपने ठाकुर रामसिंहजी के सामने आशंका प्रकट की कि कहीं यह कमरा गिर ना जाये ? ठाकुर रामसिंहजी ने उत्तर में फ़रमाया-'इस कमरे में हुज़ुरेवालाशाह (उनके गुरु भगवान) के कदम पड़े हैं, यह कमरा कभी नही गिर सकता।' यह ठाकुर रामसिंहजी की अपने गुरु भगवान के चरणों में दृढ़ विशवास की एक मिसाल थी। ठाकुर रामसिंहजी गुरु-परिवार के सदस्यों का भी वैसा ही आदर-सम्मान करते थे जैसा कि अपने गुरु-भगवान का। अपने गुरु-भगवान के सुपौत्र के लिए वे स्वयं मनोहरपुरा से

चलकर सांगानेर स्टेशन जाकर अंग्रेजी का अखबार लाए और बड़े आदर से वह अख़बार उन्हें पेश किया।

नवम्बर 1932 में डॉ. हरनारायण सक्सेना (महात्मा रामचन्द्रजी महाराज की बहन के दामाद और महात्मा रामचन्द्रजी महाराज के शिष्य) ने उन्हें सूचना दी कि हजरत मौलवी अब्दुल गनी खान साहब (जनाब हुजुर महाराज के गुरुभाई) और श्री जगमोहन नारायण (महात्मा रामचन्द्रजी महाराज के सुपुत्र) जयपुर आ रहे हैं और उन्हें सूचित करने के लिए कहा गया है कि वे उनके (ठाकुर रामसिंहजी के) यहाँ ही ठहरेंगे। ठाकुर रामसिंहजी छुट्टी लेकर समय पर जयपुर पहुँच गए और उन दोनों महानुभावों और डॉ. हरनारायण सक्सेना को अपने घर ले आकर ठहराया। वे उनके यहाँ एक दिन रुके और उनके सम्मान में ठाकुर रामसिंहजी ने स्वयं अपने हाथों से बहुत से व्यंजन बनाए और उनकी आवभगत और सेवा की जिम्मेदारी स्वयं ने सम्भाली।

3
संत थानेदार

अपने गुरु भगवान महात्मा रामचन्द्रजी महाराज की शरण में आने के बाद भी ठाकुर रामसिंहजी अपनी पुलिस की जिम्मेदारी पूरी निष्ठा से निभाते रहे। जून 1930 में सालाना भण्डारे में शामिल हो वे जयपुर आ गए और उसके कुछ दिनों बाद ही जून महीने के अन्त में उनका तबादला सवाईमाधोपुर हो गया। अपना बिस्तर ओर जरूरी सामान लेकर ठाकुर रामसिंहजी ट्रेन से सवाईमाधोपुर रेलवे स्टेशन पर उतरे। सवाईमाधोपुर पुलिस स्टेशन का एक कांस्टेबल नन्दसिंह रेलवे स्टेशन पर मौजूद था जो उन्हें पहचानता था और यह भी जानता था कि ठाकुर रामसिंहजी किसी की मदद नही लेते। अत: उसने कुली होने के बहाने उनसे सामान उठाने के लिए मोल-भाव भी किया और सामान उठा पुलिस स्टेशन पर ले आया। थाने पहुँचकर ठाकुर रामसिंहजी ने उसे तय भाड़ा दिया लेकिन नन्दसिंह ने लेने से इनकार कर दिया। पूछने पर बोला कि हुजुर ! मैं तो आपका सिपाही हूँ, थाने तक आपका सामान पहुँचाने के मैं पैसे कैसे ले सकता हूँ ? लेकिन ठाकुर रामसिंहजी नहीं माने और आग्रह कर उसे पैसे देने लगे और मना करने पर बोले अगर पैसे नहीं लेते तो फिर सामान वापस रेलवे स्टेशन पर ही छोड़ आओ। मजबूर होकर नन्दसिंह को तय मजदूरी लेनी पड़ी। बाद में नन्दसिंह ने ठाकुर रामसिंहजी को अपने गुरु रूप में स्वीकार लिया।

ठाकुर रामसिंहजी साहब के हृदय में प्राणिमात्र के प्रति करुणा की अजस्त्र धारा प्रवाहित होतो रहती थी। नए पेड़ लगाने और पेड़ों को पानी देने में आपकी बड़ी अभिरुचि थी। कोई अगर हरे भरे पेड़ों को सताता तो आपको बड़ी पीड़ा होती। पुलिस थानों के परिसरों में आपने अनेक पेड़ लगाए और उनकी परवरिश की। पक्षियों को दाना चुगाना तो आपका नित्यकर्म बन गया था। चिड़ी-कमेड़ी, मोर-कबूतर आपसे बहुत हिल-

मिल गये थे। सवाईमाधोपुर उस जमाने में हरा-भरा शहर था और पुलिस थाना रेलवे स्टेशन के बाहर ही प्लेटफार्म से लगा हुआ और निकास द्वार के बायीं ओर स्थित था। थाने के सामने वृक्षों से लदा एक बड़ा सा मैदान था। तरह-तरह के पक्षी पेड़ों के झुरमुट में दिन भर चहचहाते रहते। भोर होते ही वे पक्षियों को दाना चुगाते, अपनी हथेली पर दाख (किशमिश) रख लेते जिसे बुलबुल आकर चुग लेती। अपनी आय का कुछ भाग सदा गरीबों की सेवा में व्यतीत करते और यह इतना गुप्त होता कि किसी को पता ना लगने देते। यहाँ तक कि सेवानिवृति के बाद भी पैंशन का एक भाग आप परमार्थ में लगाते और स्वयं अभाव में भी रह लेते। कभी किसी से कुछ लेना तो आपने सीखा ही नहीं, जहाँ तक बन पड़ा, स्वयं कष्ट उठाकर भी औरों की सेवा करने में आनंद मनाया।

सब-इंस्पेक्टर पद पर तरक्की होकर साँभर पुलिस थाने में नियुक्ति के पूर्व ठाकुर रामसिंहजी आसलपुर-जोबनेर पुलिस पोस्ट के ऑफिसर इन-चार्ज थे जहाँ उनका खाना एक सिपाही बनाया करता था। यह सिपाही पास ही के एक गाँव में रहता था। एक बार उसे ड्यूटी पर आने में देरी हो गयी। एक दूसरे सिपाही ने, जिसे उसकी ड्यूटी देनी पड़ी, इस पर ऐतराज जताया तो उसने कहा-'अगर मैं थोड़ी देर से ड्यूटी पर आया हूँ तो क्या हो गया ? पतरोल साहब का खाना मैं बनाता हूँ, तुम नहीं।' ठाकुर रामसिंहजी ने उन दोनों की यह तकरार सुन ली। अगले दिन से अपना भोजन वे स्वयं बनाने लगे और इस घटना के बाद उन्होंने अपना भोजन किसी और को नहीं बनाने दिया।

ठाकुर रामसिंहजी को यह अहसास होने लगा था कि गुरु-कृपा ने उन्हें पूर्णतया अपनी आगोश में ले लिया है। अपनी किसी भी आवश्यक्ता के लिए वे आग्रह करने पर भी किसी की भी मदद ना लेते। सवाईमाधोपुर थाने में नियुक्ति के दौरान वे अपना खाना थाने की पुरानी दीवार की ओट में ईंटों से चुल्हा बना उस पर पकाते। जब वे खाना बनाना शुरू करते तो पुरानी दीवार से निकलकर उनसे कुछ दूरी पर एक साँप आकर

अपना फण फैला कुंडली मारकर बैठ जाता और साथ ही एक नेवला भी वहाँ आ जाता जिसके सामने ठाकुर रामसिंहजी रोटी के कुछ टुकड़े फेंक देते थे। यह उनके प्रत्येक प्राणी के प्रति निष्काम प्रेम का ही प्रभाव था कि वे दोनों विपरीत स्वभाव वाले और परस्पर शत्रुता रखने वाले प्राणी शांति से बिना एक-दूसरे पर हमला किए टिके रहते। यह क्रम एक लम्बे अर्से तक चलता रहा और ठाकुर रामसिंहजी के आग्रह पर थाने के किसी कर्मचारी ने इसमें कोई विघ्न नहीं डाला। एक दिन उन्हें किसी काम से जयपुर जाना पड़ा और एक सिपाही जो शायद इस बात से अनजान था, उसी चूल्हे को जलाकर अपने लिए खाना पकाने लगा। हमेशा की तह साँप भी अपनी जगह आ बैठा। उसकी फुँफकार से डरकर उस सिपाही ने लाठी से उसे मार डाला। लौटने पर जब ठाकुर रामसिंहजी को यह मालूम चला तो वे बोले-'राम ! राम ! यह आपने क्या कर डाला ? वो साँप तो एक भक्त था जो यहाँ भजन-साधन के लिए आता था।'

यह घटना नन्दसिंह, सिपाही, ने बतायी जिसने एक और घटना के बारे में बताया जो उसकी सवाईमाधोपुर थाने में नियुक्ति के समय की थी। किसी जाँच-पड़ताल के बाद ठाकुर रामसिंहजी अपने ऊँट पर सवार हो वापस सवाईमाधोपुर थाने लौट रहे थे। उनका एक संकड़े मार्ग से गुजरना हुआ जिसके दोनों ओर खेतों में धान की बालियाँ खड़ी थी। उनके ऊँट ने चलते-चलते धान की कुछ बालियाँ तोड़कर मुँह में दबा लीं। ठाकुर रामसिंहजी ने तुरंत नकेल खींचकर ऊँट को रोक, नीचे उतरकर उसके मुँह से धान की बालियाँ खींच ली और खेत के मालिक को बुलाकर उन बालियों की कीमत अदा की। थाने लौटकर उन्होंने अपने हाथों से ऊँट को चारा दिया और उसके पाँव दबाते हुए उससे कहने लगे, मानो ऊँट उनकी बात सुन और समझ रहा था-'मैंने तेरे मुँह से धान की बालियाँ छीन ली, मुझे माफ़ कर दे। आइन्दा से कभी किसी और की चीज नहीं खानी।' पुलिस वाले हैरान थे कि ऊँट जो उससे कहा गया था समझ गया था। उसके बाद उस ऊँट ने कभी किसी और की चीज को मुँह नहीं लगाया और

यही नहीं यदि कोई उसे चारा डालता भी तो भी वो तब तक उसे नहीं खाता जब तक ठाकुर रामसिंहजी उससे यह नहीं कहते कि चारे का दाम चुका दिया है। वर्षों तक लोग इस बात का जिक्र करते रहे और ठाकुर रामसिंहजी के लिए यह प्रसिद्ध हो गया था कि वे तब तक कूए का पानी भी नहीं पीते जब तक उस पानी का मोल ना चुका दें।

जयपुर रियासत में पुलिस उन दिनों सवारी के लिए ऊँटों का प्रयोग करती थी और ऊँट की देखभाल करने वाले सिपाही को 'शुतुर-सवार' कहा जाता था। शुतुर-सवार को ऊँटों के लिए अलग से भत्ता मिलता था। लेकिन ठाकुर रामसिंहजी ना केवल शुतुर-सवार बल्कि ऊँटों को भी अपनी जेब से खिलाते थे। ऐसे ही एक शुतुर-सवार का, जो उनके साथ काम कर चुका था, उनके बारे में कहना था-'रामसिंहजी भाटी के बारे में क्या कहा जाए। वो एक अद्भुत थानेदार ही नहीं बल्कि साक्षात देवता थे। जब कभी बाहर दौरे पर जाते तो खुद खाना सबको खाना खिलाकर खाते, यहाँ तक कि ऊँटों को भी अपने से पहले खिलाते।' जब कभी दौरे पर जयपुर जाना होता और वे अपने घर मनोहरपुरा रुकते तो उस दिन का भत्ता नहीं लेते हालाँकि नियमानुसार वे भत्ता ले सकते थे।

उनकी पुलिस सेवा के दौरान ही लोग उन्हें संत-थानेदार के नाम से जानने लगे थे। ठाकुर रामसिंह जब भी दौरे पर जाते तो किसी के यहाँ का खाना नहीं खाते थे, स्वयं बनाकर खाते। किसी सिपाही से खाना नहीं बनवाते। यदि समय नहीं मिलता तो पानी पीकर ही रह जाते। कभी कोई कहता तो साफ कह देते मैं अपने हाथ का बनाया खाना ही खाऊँगा। ठाकुर रामसिंहजी का कहना था-'डिप्टी एस. पी. कुशलसिंहजी और एस. पी. मूलसिंहजी के सिवाय मैंने किसी और पुलिस वाले के यहाँ भोजन नहीं किया। कुशलसिंहजी एक ईमानदार ऑफिसर थे और. मूलसिंहजी सत्संग में आने के बाद पूर्ण रूप से बदल गऐ थे। मैं ही नहीं पुलिस विभाग में और भी कई ईमानदार लोग थे। कोतवाल अशरफ अली साहब

तो अपने सगे भाई के यहाँ भी खाना नहीं खाते थे क्योंकि वो रिश्वत लेता था।'

सिटी पैलेस में, जहाँ सेवानिवृति के बाद ठाकुर रामसिंहजी अपना अधिकाँश वक्त बिताते थे, जब यह चर्चा चल रही थी, किसी सत्संगी ने उनसे पूछा कि सुना है कि आप किसी की लालटेन की रौशनी में भी काम नहीं करते थे ? ठाकुर रामसिंहजी ने कहा-'नहीं ऐसी बात नहीं है, लेकिन एक बार ऐसा अवसर उपस्थित हो गया था। मैं एक जगह जाँच-पड़ताल करने गया हुआ था। रात होने के कारण मैंने किसी के यहाँ से लालटेन मँगवायी और बयान दर्ज किए। बयान दर्ज करने के बाद लालटेन लाने वाले को केरोसिन के लिए एक आना (सौलह आने का तब एक रुपया हुआ करता था) देकर भेजा।'

ठाकुर रामसिंहजी एक अल्प-भाषी व्यक्ति थे और कभी झूठ नहीं बोलते थे। वे कहते थे कि केवल एक बार उन्होंने एक कांस्टेबल को किसी बड़ी मुसीबत से बचाने के लिए झूठ का सहारा लिया लेकिन जिस बात को उन्होंने झूठ समझा था, उनके गुरु-भगवान की कृपा से वही सत्य निकला।

ठाकुर रामसिंहजी की हैड कांस्टेबल पद से असिस्टेंट सब-इंस्पेक्टर पद पर तरक्की दिसम्बर 1930 में हुई और इसके साथ उनका तबादला सवाईमाधोपुर से जयपुर के निकट (करीब 50 कि. मी.) चन्दवाजी हो गया। इस दौरान महात्मा रामचन्द्रजी के साथ उनका पत्र व्यवहार बराबर जारी था और ठाकुर रामसिंहजी ने उन्हें अपनी पदोन्नति के बारे में भी लिखा। प्रत्युत्तर में उन्होंने लिखा कि उनकी पदोन्नति के बारे में जानकर उन्हें प्रसन्नता हुई और वे चाहते हैं कि भगवद-कृपा से भविष्य में उनकी और तरक्की होती रहे।

ठाकुर रामसिंहजी की चन्दवाजी नियुक्ति के दौरान एक बार जब वे अवकाश पर मनोहरपुरा गए हुए थे, उनकी अनुपस्थिति में जागीरदार राजपूतों और व्यापारियों के बीच बड़ा झगड़ा हो गया। चन्दवाजी

जागीरदार राजपूतों का प्रतिष्ठित ठिकाना था तो दूसरी ओर महाजनों का बड़ा समुदाय अन्य लोगों के साथ अच्छे-खासे व्यापार में लगा हुआ था।। दोनों पक्ष अपनी-अपनी बात पर अड़े रहे, राजपूत अपनी ताकत के बल पर और व्यापारी अपने धन बल पर। एक तरफ जागीरदार होने की ठसक तो दूसरी और धनाढ्य होने का अभिमान। मामला उलझता देख जागीरदार राजपूतों ने व्यापारियों को अपने गढ़ में बात-चीत के लिए बुलवाया। महाजन समुदाय मामला सुलझने की संभावना सोच गढ़ में चले गया लेकिन दोनों समुदायों के अहम आड़े आने के कारण राजपूतों ने गढ़ में आए महाजनों को बुरी तरह पीट दिया। एक-दो महाजनों को बड़ी गम्भीर चोटें आयी, उनकी जान पर बन आयी इसलिए मामला प्राण-घातक हमले का माना गया।

इस घटना ने आस-पास के गाँवों में भी हलचल मचा दी और जयपुर में माहौल गरमा गया। जयपुर से एस. पी. साहब पुलिस बल को लेकर चन्दवाजी पहुँचे लेकिन शांति स्थापित करवाने में सफल ना हो सके। महाजनों को गढ़ में बुलाकर पीटा गया था और उन पर प्राण-घातक हमला हुआ था इसलिए वे इस अन्याय का पुरजोर विरोध कर रहे थे और उधर राजपूत अपनी जागीरदारी के अहम में झुकने को तैयार नहीं थे। समस्या किसी तरह सुलझ नहीं रही थी। जयपुर डी. आई. जी. पुलिस ने तत्काल थानेदार ठाकुर रामसिंहजी को बुलवाया और तुरन्त चन्दवाजी ड्यूटी पर लौट एस. पी. साहब की मदद करने को कहा। उन्हें विश्वास था कि राजपूत समाज से होने के कारण वे किसी ना किसी प्रकार इस मामले को सुलझा लेंगे।

ठाकुर रामसिंहजी अभी हाल ही में पदोन्नति पाकर नए-नए थानेदार बने थे और उनके समक्ष यह चुनौती आ खड़ी हुई थी। सब अपने गुरु-भगवान पर छोड़ वे तुरन्त चन्दवाजी पहुँच गए। जरूरी जानकारी हासिल कर वे पहले राजपूतों के गढ़ गए। राजपूत समुदाय यह सोचकर खुश था कि नया थानेदार उनके समाज से है सो उनका पक्ष लेगा। लेकिन ठाकुर

रामसिंहजी ने उन्हें स्पष्ट शब्दों में समझाया कि मामला कितना संगीन था। उन लोगों ने महाजनों को गढ़ में बुलाकर उन पर प्राण-घातक हमला किया था और एस. पी. साहब ने उनके खिलाफ रिपोर्ट तैयार कर ली है, उनका किसी भी तरह बचना मुश्किल है। राजपूत समुदाय इस दो-टूक बात को सुनकर दबी जबान से समझोते की बात करने लगे। उन्होंने ठाकुर रामसिंहजी से कहा कि वे कुछ ऐसा प्रयास करें कि उनकी जागीरदारी मर्यादा भी बनी रहे और झगड़ा भी सुलझ जाए। अब ठाकुर रामसिंहजी ने गाँव में जाकर महाजनों को बुलवाया और उन्हें समझाया कि झगड़े से कोई फायदा नहीं। अगर वे लोग जीत भी गए तो दोनों समुदायों के बीच सदा के लिए वैमनस्य जड़ पकड़ लेगा। ना ही तो राजपूत समुदाय अपना ठिकाना छोड़कर वहाँ से कहीं और जा सकता है ना ही महाजन समुदाय अपना घर-बार, व्यापार छोड़ कहीं जा सकता है। आने वाली पीढ़ियों के लिए बड़ी विषम स्थिति पैदा हो जाएगी। बेहतर है कि झगड़े को यहीं समाप्त कर दिया जाए। ठाकुर रामसिंहजी की वाणी में सत्य और संत-हृदय का ओज था। उनकी बात महाजन समुदाय के हृदय में उतर गयी। उन्होंने भी ठाकुर रामसिंहजी से कहा कि वे कुछ ऐसा करें कि उनकी इज्जत भी रह जाए और झगड़ा भी निपट जाए।

इसके बाद ठाकुर रामसिंहजी ने दोनों समुदायों के लोगों को बुलाकर समझाया कि जागीर राजपूतों की है लेकिन महाजन वहाँ से चले गए तो गाँव में क्या रह जाएगा ? उनका भी यहाँ बड़ा व्यापार है, घर-परिवार, सम्पत्ति, मवेशी सभी यहाँ है, जिसे छोडकर वे नहीं जा सकते। समझदारी और पूरे गाँव का भला दोनों समुदायों के आपसी टकराव को छोड़ने में और भाईचारे से पहले जैसे रहने में है। ठाकुर रामसिंहजी के इन शब्दों ने जादू का सा काम किया। राजपूतों ने अपनी गलती स्वीकार कर माफ़ी माँग ली और कहा कि भविष्य में ऐसा नहीं होगा। महाजनों ने भी पहले जैसे रहना स्वीकार कर कहा कि उनके कारण सरदारों को कोई असुविधा नहीं होगी।

देखते-देखते मामला सुलट गया और गाँव में शांति कायम हो गयी। उनके गुरु-भगवान ने उच्च अधिकारियों के ठाकुर रामसिंहजी में विश्वास की लाज रख उनकी नजरों में ठाकुर रामसिंहजी का मान बढाया। बाद में आई. जी. पी. एफ. एस. यंग साहब ने उन्हें कहा-"रामसिंह ! तुम कसौटी पर खरे उतरे।"

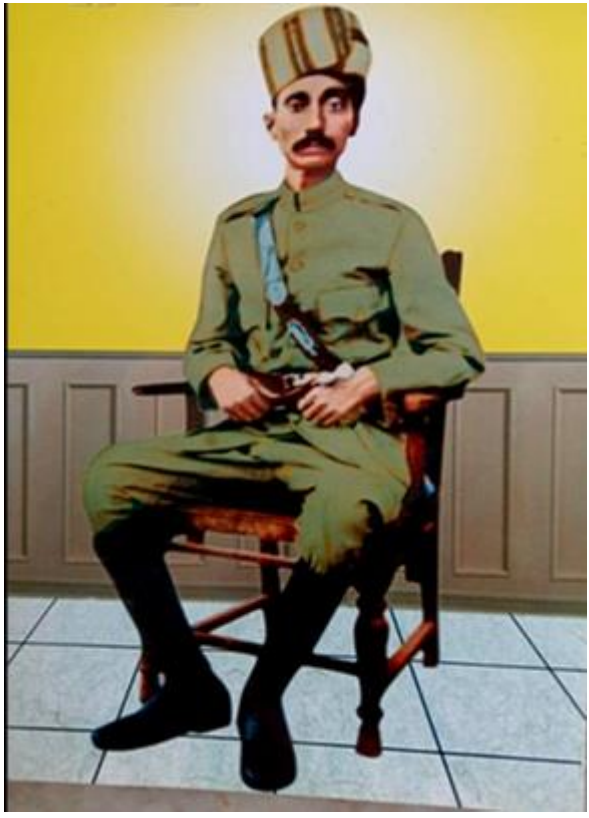

थानेदार ठाकुर रामसिंहजी

लगभग तीन माह बाद भारत के तत्कालीन वायसराय ने मार्च 1931 में जयपुर आने का कार्यक्रम बनाया। जयपुर के महाराजा माधोसिंह के सन 1922 में स्वर्गवास के समय उनके पुत्र सवाई मानसिंह (21 अगस्त 1912-24 जून 1970) जो उनके उत्तराधिकारी थे उस समय नाबालिग थे। इस कारण सर गोपीनाथ को जो जयपुर रियासत के प्राइम मिनिस्टर थे, कार्यवाहक शाषक नियुक्त किया गया। तत्कालीन वायसराय लार्ड इरविन अपनी पत्नी सहित सवाई मानसिंहजी के बालिग़ होने पर उन्हें सर्वाधिकार सौंपे जाने के उत्सव में शामिल होने जयपुर आ रहे थे। वे 13 मार्च को जयपुर आने वाले थे और 14 मार्च को दिल्ली लौटने वाले थे। उनकी सुरक्षा जरूरतों को ध्यान में रख आई. जी. पी. एफ. एस. यंग साहब ने कुछ चुस्त और निपुण पुलिस अधिकारियों की एक टीम को इस कार्य के लिए चुना। ठाकुर रामसिंहजी को भी चन्दवाजी से बुलाकर एक निश्चित इलाके की सुरक्षा की जिम्मेदारी उन्हें सौंपी गयी।

लेडी और लार्ड इरविन को जुलूस के साथ धूम-धाम से जयपुर रेलवे स्टेशन से सिटी-पैलेस लाया गया जहाँ शाही दरबार लगाया गया था। वहाँ का समारोह समाप्त होने के बाद महाराजा सवाई मानसिंह II लेडी और लार्ड इरविन को जुलूस के साथ धूम-धाम से जयपुर रेलवे स्टेशन से सिटी-पैलेस लाया गया जहाँ शाही दरबार लगाया गया था। वहाँ का समारोह समाप्त होने के बाद महाराजा सवाई मानसिंह II की सिरहाद्योढ़ी दरवाजे से शहर के लिए हाथी पर सवारी निकली। वायसराय को अगले दिन दिल्ली के लिए ट्रेन से रवाना होना था। ठाकुर रामसिंहजी अपनी ड्यूटी पर सावधानी और सतर्कता से डटे थे। लेकिन जयपुर आने से पहले ही उनकी जाँघ में एक बालतोड़ फोड़ा निकल आया था जो पकाव पर था। ठाकुर रामसिंहजी ने मालिक की इच्छा समझ किसी को कुछ ना बताया। ड्यूटी पर लगातार गश्त करने से फोड़े में तकलीफ और बढ़ गयी और उन्हें बुखार भी चढ़ आया। जब वायसराय को लेकर स्पेशल ट्रेन जयपुर स्टेशन से निकल गयी तो ठाकुर

रामसिंहजी सदर थाना अपना चार्ज हैंड-ओवर करने (वापस देने) आए। संयोग की बात है कि तभी फोड़ा फटकर उससे पस बुरी तरह बाहर बहने लगी और नीचे तक आगयी जिससे सदर थाना के अधिकारी को उनकी इस विषम परिस्थिति में भी अपने कर्त्तव्य को पूरी निष्ठा से निभाने की प्रतिबद्धता देखकर बहुत हैरानी हुई और बाद में और अधिकारियों को भी जब इस बात का पता चला तो सबने उनकी भूरी-भूरी प्रशंसा की।

इसी माह अर्थात मार्च 1931 में महात्मा रामचन्द्रजी महाराज ने उन्हें पत्र द्वारा सूचित किया कि सलाना भण्डारा 3 से 6 अप्रैल तक मनाया जाएगा। सूचना पाकर ठाकुर रामसिंहजी भण्डारे में शामिल होने फतेहगढ़ पहुँच गए। उन दिनों भण्डारे का आयोजन महात्मा रामचन्द्रजी महाराज के तलैय्या लेन में स्थित निवास पर ही होता था। भण्डारे के दौरान महात्मा रामचन्द्रजी महाराज स्वयं अपने हाथों से घर के पिछवाड़े में स्थित संकड़े मुँह की गहरी कुई से पानी खींच-खींचकर सत्संगी भाइयों के लिए बड़े तड़के ही पानी भरकर रख दिया करते थे, ताकि किसी को मालूम ना चले। ठाकुर रामसिंहजी जब तड़के उठे तो देखा कि नहाने के लिए पहले से ही पानी भरकर रखा हुआ है। दूसरे दिन भी पानी भरा हुआ मिला तो तीसरे दिन वे रात तीन बजे ही उठ बैठे और पानी भरने के लिए गए तो देखा कि स्वयं महात्मा रामचन्द्रजी महाराज सत्संगियों के स्नान के लिए पानी खींच रहे हैं। उन्होंने स्वयं पानी खींचने का आग्रह किया तो महात्मा रामचन्द्रजी महाराज ने उनसे मुखातिब हो फरमाया-'अच्छा ! तो आज आपने मुझे देख ही लिया। रामसिंह ! यह बात याद रखना, तुम्हें कभी कोई सेवा लेते ना देखे, सेवा करते हुए ही देखे।' उनके ये शब्द ठाकुर रामसिंहजी के लिए महामंत्र बन गए। वे वैसे भी किसी से कोई सेवा नहीं लेते थे लेकिन इस आदेश के बाद तो यह उनकी साधना का आधारस्तम्भ बन गया।

महात्मा रामचन्द्रजी महाराज के महासमाधि लेने के बाद ठाकुर रामसिंहजी जब वार्षिक भण्डारे के अवसर पर आपकी समाधि पर हाजिर

होते तो महात्मा जगत नारायणजी साहब के कथनानुसार समस्त सत्संगी भाइयों के नहाने-धोने के लिये कुएँ से स्वयं पानी खींच-खींचकर रखते रहते, किसी और को हाथ भी ना लगाने देते। वे अपने साथ दो तौलिया भी ले जाते, एक बड़ा और एक छोटा। बड़े तौलिया से सुबह-सुबह समाधि को धोते और छोटे तौलिया से उसे पोंछते। फिर सारे साल उन तौलियों का स्वयं इस्तेमाल करते। बड़ा तौलिया जब तक चलता काम लेते उसके बाद उसकी रस्सी बनाकर उस पर कपड़े सुखाते। छोटे तौलिया को तकिये पर रखकर सोते, मानों अपने गुरु-भगवान की गोद में सर रखा हो।

भण्डारे के समापन के पश्चात भी ठाकुर रामसिंहजी कुछ और दिन फतेहगढ़ ही रुके रहे और महात्मा रामचन्द्रजी महाराज के हाथों बैत हुए (दीक्षा ग्रहण की)। इस संदर्भ में महात्मा रामचन्द्रजी महाराज ने अपनी डायरी में लिखा है:

"बृहस्पतिवार, 9 अप्रैल 1931:

मुंशी मनमोहन लाल, शाहजहाँपुर के बाबु करुणा शंकर और सांगानेर, जयपुर के कुँवर रामसिंह ने बैत ली।"

महात्मा रामचन्द्रजी महाराज का स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा था और जैसा कि उनकी डायरी से विदित होता है भण्डारे के वक्त भी उनकी तबियत नासाज थी। ठाकुर रामसिंहजी ने चाहा कि महात्मा रामचन्द्रजी महाराज की बीमारी सल्ब (खींच) कर स्वयं अपने ऊपर ले लें, लेकिन सफल ना हुए। बाद में उन्होंने महात्मा रामचन्द्रजी महाराज को 2 जून 1931 को पत्र लिखा। आपने अपने पत्र में लिखा-"....हे स्वामी ! सब सेवकों की तो आप फ़ौरन सुन लेते हैं और उनका सब दुःख दूर करते हैं, मगर हुजूर की तबियत नासाज है। इसका खाकसार को बहुत दुःख है। इसलिए हे करुणा-सागर कृपा करके इस चरण-सेवक को इतनी शक्ति अता फरमावें कि सिर्फ हुज़ुरेवालाशाह की तकलीफ़ो को अपने शरीर में ले सँकू और बहुत हर्ष के साथ उनको अपने शरीर में जगह दूँ और भोगूँ।"

हे स्वामी ! मुन्दरजा जैल हालत अर्ज करना खाकसार मुनासिब नहीं ख्याल करता था मगर मजबूरन इस वजह से अर्ज की जाती है कि खाकसार उसमे नाकाम रहा, सो क्यों ?

इसकी सेहत फ़रमा दी जावे ताकि आइन्दा कामयाब होकर अपने-आपको खुशनसीब समझूं। ..."

उन्होंने आगे लिखा : "बन्दानवाज़ ! वह अर्ज यह है कि हुज़ुर ने फतेहगढ़ में फरमाया था कि जिस वक्त हमारी (महात्मा रामचन्द्रजी महाराज की) तबियत ठीक ना हो और बिमारी हो तो ध्यान में आकर हमारे सामने नहीं बैठ जाना चाहिए क्योंकि उस वक्त बजाय फायदे के नुक्सान हो जाता है और हमारी बीमारी उसके शरीर में चली जाती है। यह बात सुनकर खाकसार को बहुत खुशी हुई, गोया कंगाल को खजाना मिल गया और उम्मीद कवी हो गई (आशा बलवती हो गयी) कि अब हुजुरेवाला बीमार नहीं रहेंगे और दोनों वक्त तक ध्यान में इन्हीं ख्यालात को लेकर बैठता रहा कि सतगुरु के शरीर की तकलीफें इस शरीर में आ जायें। मगर अफ़सोस कि ऐसा नहीं हुआ। शायद इसी वजह से कि मैं नालायक हूँ। सच्चा प्रेम जैसा होना चाहिए नहीं रखता।

अगर उसकी कमी है, तो हे स्वामी ! उसके देने वाले आप ही हैं। कृपा करके मुन्दर्जा अव्वल शक्ति अता फरमाई जावे, इसमें ताम्मुल ना फरमावें। क्योंकि यह शरीर भी हुजुर का ही है। मायावश अपना कहा जाता है। यह तन और मन हुजुर का है। धन तो है ही नहीं, ना ही उसकी ख्वाहिश है। जितना कुछ है सब आपका ही है। हुजुर के चरणों में सच्चा प्रेम अता फरमावें। इस की आरज़ू है।..."

महात्मा रामचन्द्रजी महाराज ने 30 जून 1931 को पत्र के उत्तर में लिखा था, 'आपका हमदर्दी से भरा हुआ ख़त मिला, तकबियत हुई।'

सन 1932 में ठाकुर रामसिंहजी का दूसरी बार नवलगढ़ तबादला हुआ। नवलगढ़ रेलवे स्टेशन शहर से करीब 3 किलोमीटर दूर है। एक बार जब वे नवलगढ़ रेलवे स्टेशन से बाहर आए तो कोई सवारी नहीं थी।

सारे यात्री शहर के लिए निकल चुके थे। रेलवे स्टेशन के बाहर केवल एक ऊँट किसी की प्रतीक्षा में खड़ा था। उन्होंने ऊँट वाले को पूछा तो वो उन्हें पुलिस थाने पर छोड़ने को तैयार हो गया। थाने पर छोड़ने के बाद जब वे उसे पैसे देने लगे तो उसने लेने से इन्कार कर दिया । जब ठाकुर रामसिंहजी ने उससे पैसे ना लेने की वजह पूछी तो वो बोला कि वो उन्हें जानता है और वह ऊँट सेठ रामनाथ पोद्दार का है, जो वहाँ के एक रईस व्यापारी थे, सो वो पैसे कैसे ले सकता है ? इस पर ठाकुर रामसिंहजी बोले क्योंकि ऊँट सेठजी का है तो इसका भाड़ा भी दोगुणा होना चाहिए और उसे एक चवन्नी (चार आने का सिक्का, जो उस जमाने में प्रचिलित था) देना चाहा लेकिन ऊँट वाले ने यह कहकर कि सेठजी नाराज होंगे उसे लेने से इन्कार कर दिया। तब ठाकुर रामसिंहजी बोले कि फिर आप मुझे वापस स्टेशन पर छोड़ आओ। ऊँट वाला असमंजस में पड़ गया; ना तो वो ऊँट का भाड़ा ले सकता था ना ही ठाकुर रामसिंहजी को वापस स्टेशन छोड़ सकता था। एक क्षण सोचकर उसने भाड़ा लेना स्वीकार कर वह चवन्नी उनसे ले ली। सेठ रामनाथ पोद्दार की हवेली पहुँचकर उसने वह चवन्नी सेठजी की हथेली पर रख दी और बड़ी विनम्रता से बोला-'हुकुम ! जिनके लिए ऊँट लेकर गया था वो मेहमान तो आए नहीं, लेकिन आज आपका ऊँट कमाई कर लाया है।' यह सुनकर सेठ रामनाथ पोद्दार थोड़ा गम्भीर होकर बोले-'क्या कह रहे हो ? मेरा ऊँट, और भाड़े पर ?' ऊँट वाले ने सारा किस्सा कह सुनाया, बोला-'मेहमान तो आए नहीं पर कोतवाल रामसिंहजी रेलगाड़ी से उतरे। और कोई सवारी थी नहीं, मैंने उन्हें कोतवाली छोड़ा और बता दिया कि ऊँट आपका है। ऊँट आपका है जानकर उन्होंने दोगुणा भाड़ा दिया और भाड़ा लेने से मना करने पर बोले कि फिर मुझे वापस स्टेशन छोड़ आ। मैं क्या करता ? पैसे लेने पड़े।'

सब जानकर सेठजी प्रसन्नचित हो मुस्कुरा दिये । बोले-'बड़ा भाग्यशाली ऊँट है, सच्ची कमाई करके लाया है ।' फिर सेठानीजी को

बुलाया और चवन्नी देते हुए बोले-'यह ठाकुर रामसिंहजी की दी हुई चवन्नी है। खरी कमाई है, तिजौरी में रख लो, खर्च मत करना।'

इसी तरह की एक घटना ठाकुर रामसिंहजी ने स्वयं अपने शब्दों में बताई, बोले-जब मैं नवलगढ़ में थानेदार था, एक बस में नवलगढ़ से झुंझुनू गया। और मुसाफिरों ने कंडक्टर को पैसे देकर टिकट लिया, मैंने भी पैसे देने चाहे लेकिन उसने पैसे लेने से साफ़ इन्कार कर दिया। मैंने कहा या तो वो किराया ले ले, वरना मुझे वापस नवलगढ़ छोड़ दे। आखिर में उसने पैसे ले लिए। किसी तरह यह बात आई. जी. पी. यंग साहब के कानों तक पहुँच गई, जिन्होंने बाद में मुझे बताया।'

ठाकुर रामसिंहजी की अपने गुरु भगवान के प्रति भक्ति और समर्पण अनोखा था। वे उनके ख्याल में ऐसे खोए रहते कि आत्म-विस्मृति हो जाती, यहाँ तक कि अपना अस्तित्व, अपना नाम तक भूल जाते। एक बार उन्हें कोर्ट में गवाही देनी थी। जब उनसे उनका नाम पूछा गया तो उन्हें अपना नाम ही नहीं याद आया। सरकारी वकील ने जब याद दिलाया तब उन्हें अपना नाम याद आया। जज साहब भी ऐसे पुलिस अधिकारी को अपने कोर्ट में देखकर हैरान थे।

नवलगढ़ में नियुक्ति के दौरान ठाकुर रामसिंहजी अपने साथ अपने सुपुत्र जगतसिंह (हरीसिंह) को भी ले गए थे और आगे की पढ़ाई के लिए उन्हें 'श्री नवलगढ़ विद्यालय' में भर्ती करवा दिया। श्री हरीसिंह ने नवलगढ़ थाने का एक किस्सा सुनाया। एक चोर को पकड़कर थाने लाया गया और थाने के लॉकर में बंद कर दिया गया। चोर डर के मारे थर-थर काँप रहा था कि शाम को थानेदार साहब के हाथों उसकी बुरी तरह पिटाई होगी। हमेशा की तरह शाम को थानेदार ठाकुर रामसिंहजी ने अपने लिए खाना बनाया और साथ ही लॉकर में बंद मुलजिम (चोर) के लिए भी खाना बनाया और उसे स्नेहपूर्वक खाना खाने के लिए कहा। जब वो भोजन कर रहा था, ठाकुर रामसिंहजी ने कहा-'यदि कोई आदमी सच बोले तो भगवान भी उसे माफ़ कर देते हैं। मैं तो केवल एक इंसान हूँ।

डरो मत और जो सच है बता दो ।' उसे नहीं मालूम था कि ठाकुर रामसिंहजी ऐसी भागिरथी थे जिसके बहाव में बहकर सुपात्र और कुपात्र दोनों ही निर्मल हो जाते हैं। उनका हृदय एक रोशन चिराग था, प्रेम का एक ऐसा प्रज्ज्वलित दीपक, जिसकी आभा में, जिसकी गर्मी में लोगों के हृदय मात्र निकट बैठने से पिंघल जाते थे। पुलिस विभाग उन दिनों अपनी सख्ती और अत्याचार के लिए ज्यादा जाना जाता था जहाँ थानों की दीवारें मुलजिमों के स्वागत के लिए हण्टर और जूतों से सज्जित रहती थीं। लेकिन इसके ठीक उलट यहाँ थानेदार ठाकुर रामसिंहजी खुद एक मुलजिम को प्रेमसहित, आग्रहपूर्वक अपने हाथों से खाना बनाकर खिला रहे थे। उनके इस स्नेहिल व्यवहार और उनके हाथ का बना खाना दोनों ने अपना प्रभाव दिखाया। खाना खत्म करते-करते उसका सारा डर और दुःख दूर हो गया और वो कुछ सोचने लगा। उसका हृदय पिंघलने लगा और वो जोर-जोर से रोने लगा। थोड़ी देर बाद जब वो शांत हुआ तो उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और यह भी बता दिया कि चोरी का माल किस पेड़ के नीचे छिपाया था जो उसकी निशानदेही पर बरामद भी कर लिया गया। इस घटना ने उसका जीवन बदल दिया, चोरी छोड़ उसने ईमानदारी की राह अपना ली। अक्सर वो ठाकुर रामसिंहजी के पास थाने में सत्संग के लिए आने लगा। ठाकुर रामसिंहजी के लिए यह सब उनके गुरु-भगवान की कृपा का कमाल था। एक बार उसे नवलगढ़ से बाहर किसी शादी में जाना था जिसके लिए उसे पुलिस की अनुमति चाहिए थी लेकिन ठाकुर रामसिंहजी ने मना कर दिया। जब वो जिद करने लगा तो ठाकुर रामसिंहजी कुछ नाराज हो गए। उन्हें नाराज होते देख वो बोला-'थानेदार साहब ! आप नाराज हो रहे हैं तो इसके पीछे जरूर कोई कारण होगा। अब मैं कहीं नहीं जाऊँगा।'

एक बार एक चोर उनकी गिरफ्त से छूटकर भाग गया। अगले दिन उसकी कोर्ट में पेशी होनी थी। अपने गाँव पहूँचकर उस चोर ने सरदार को बताया कि कैसे वो ठाकुर रामसिंहजी की गिरफ्त से छूटकर भाग आया।

सरदार ने उसे शाबासी देने के बजाय तुरंत वापस लौटकर कोर्ट में पेशी पर हाजिर होने को कहा और बोला अगर तू खुद नहीं जाएगा तो मैं तुझे पुलिस के हवाले कर दूँगा। सरदार ने ठाकुर रामसिंहजी के बारे में सुन रखा था और उसके दिल में उनके प्रति बहुत सम्मान था। अगले दिन जब ठाकुर रामसिंहजी इस घटना की रिपोर्ट कोर्ट में देने पहुँचे तो उन्हें चोर को कोर्ट में हाजिर देख सुखद आश्चर्य हुआ।

नवलगढ़ में एक बार उन्हें 'श्री विद्याविवर्धन पुस्ताकलय' के संस्थापकों की प्रतिमाओं के अनावरण समारोह में शामिल होने का निमंत्रण मिला। इस समारोह में उनका परिचय श्री बालगोविन्द तिवारी, जो पेशे से अध्यापक थे, से हुआ। पहली ही मुलाक़ात में तिवारीजी को ठाकुर रामसिंहजी के सानिध्य में शांति का अनुभव हुआ। उन्होंने ठाकुर रामसिंहजी से सम्पर्क बनाए रखा। सन 1935 में तिवारीजी सीकर चले आए और वहाँ उनकी पत्नी गम्भीर रूप से बीमार हो गयीं। इलाज के लिए उन्हें अपनी पत्नी को आगरा ले जाना पड़ा। आगरा से उन्होंने ठाकुर रामसिंहजी को पत्र लिखा:

"ॐ परम पवित्र प्रेममूर्ती निजात्मन ! उस सर्वशक्तिमान जगदीश्वर करूणासिंधु को लाख-लाख धन्यवाद है कि उसने दल-दल से बड़ी सुगमता से निकाल लिया। डिग्रियों की हवस से पीछा छुड़ाया, स्वार्थ-नास्तिकता रूपी चोरों-लुटेरों का बेड़ा गर्क कर दिया। धन्य हो भगवन् ! कोई दिन ऐसा भी होगा जब इस ह्रदय रूपी यमुनाजल से अहंकार रूपी कालिय नाग भी निकाल दिया जाएगा । साधुओं की सिफारिश, महात्माओं की दया और गुरुजनों के आशीर्वाद में सब शक्ति है। इच्छा यही है कि चित्त में प्रभु की तथा प्रभु के प्रेमियों की याद सदा बनी रहे, फिर चोरों का डर ही ना रहे।

यही अभिलाषा है कि पलक झपकना, हाथों की हरकत और खून की दौड़ सब कुछ प्रभु की आज्ञानुसार ही, प्रभु के लिए ही हो।

'जेता चलूँ तेती प्रदक्षणा, जो कुछ करूँ सो पूजा,

गृह-उजाड़ एक सम जानू, भाव मिटाऊँ दूजा'

घर के हालात खतरे में हैं, बृहस्पत को तो नब्ज बन्द हो चली थी। प्रभु का हुक्म संसार में रहने का था, इस कारण शायद एक महीने तो मुझे यहाँ पर ही रहना पड़े। ...यदि भाग्य में हुआ तो दर्शन करूँगा।"

कुछ समय बाद श्री बालगोविन्द तिवारी की पत्नी का देहान्त हो गया। साधना में सहयोगी और मित्रवत पत्नी का साथ छूट जाने पर तिवारीजी का मन बहुत बेचैन रहने लगा। उन्होंने ठाकुर रामसिंहजी से निवेदन किया। पुलिस वेष में संत, करुणासागर ठाकुर रामसिंहजी का हृदय द्रवित हो आया और वे तिवारीजी को नित्य शाम पूजा में साथ बैठा लेते। तीन दिन बाद उनकी मानसिक अवस्था ऐसी हो गयी थी जैसे कि कुछ हुआ ही नहीं हो, जिसकी अमानत थी उसने वापस ले ली। इसमें दुःख कैसा ?

उस जमाने में रेलवे और शहरी पुलिस अलग-अलग नहीं होती थीं, शहरी पुलिस ही रेलवे की सुरक्षा का काम भी देखती थी। ठाकुर रामसिंहजी नवलगढ़ रेलवे स्टेशन पर अक्सर आया-जाया करते थे जहाँ उनकी नजर तारबाबू श्री प्रताप नारायण कपूर पर पड़ गयी। महात्मा रामचन्द्रजी की शरण में आने के बाद ठाकुर रामसिंहजी को लोगों के अध्यात्मिक झुकाव का आभास होने लगा था लेकिन वे स्वयं अपनी हस्ती को छिपाए रहते और जिज्ञासुओं को या तो महात्मा श्री कृष्ण स्वरूपजी, जो महात्मा रामचन्द्रजी महाराज के चचेरे और गुरु-भाई थे, उनके पास अजमेर भेज देते या उन्हें फतेहगढ़ या कानपुर अपने गुरु-भगवान के परिवार की शरण में भेज देते। एक दिन आखिरी ट्रेन जाने के बाद स्टेशन मास्टर ने कपूर साहब को बताया कि उन्हें ठाकुर रामसिंहजी ने बुलवाया है और एक कांस्टेबल उन्हें साथ में ले जाने के लिए आया हुआ है। कपूर साहब थोड़ा घबरा गए कि थानेदार साहब ने उन्हें क्यों बुलाया है, उनसे ऐसा कौन सा अपराध हो गया है ? किसी तरह वो कोतवाली पहुँचे जहाँ एक व्यक्ति नेकर पहने कोतवाली के दालान में

खाना पका रहा था। कांस्टेबल ने उस व्यक्ति से मुखातिब होकर कहा कि हुजुर तारबाबूजी आ गए हैं। कपूर साहब को थोड़ा आश्चर्य हुआ कि कोतवाल साहब खुद खाना पका रहे हैं। उन्हें थोड़ी तसल्ली हुई और कोतवाल साहब के आदेशानुसार उन्हें ऊपर छत पर ले जाया गया थोड़ी ही देर में थानेदार साहब ऊपर आए और कपूर साहब को सांत्वना दी कि वे चिंता ना करें, उन्होंने कुछ गलत नहीं किया है, उन्हें तो उन्होंने बस मिलने के लिए यह कष्ट दिया है। फिर ठाकुर रामसिंहजी ने उनसे पूछा कि वे क्या करते हैं ? कपूर साहब बोले कि वे रेलवे स्टेशन पर तारबाबू का काम करते हैं। ठाकुर रामसिंहजी बोले-'मैं आपके काम के बारे में नहीं पूछ रहा, मुझे मालूम है कि आप तारबाबू हैं, मैं आप पूजा-पाठ के लिए क्या करते हैं, पूछ रहा हूँ।' कपूर साहब ने बताया कि वे कभी-कभार रामायण पढ़ लेते हैं। ठाकुर रामसिंहजी ने उन्हें महात्मा श्री कृष्ण स्वरूपजी के बारे में बताया कि वे अध्यात्म विद्या का खजाना हैं और कपूर साहब को सुझाव दिया कि वे जब भी अजमेर जाएँ तो उनसे जरूर मिलें। कपूर साहब ने इस बात को कोई ख़ास महत्त्व नहीं दिया और कोतवाली से लौटकर परमात्मा को धन्यवाद दिया कि बच गए।

जैसा कि भाग्य को मंजूर था, कपूर साहब का लगभग नौ माह बाद नवलगढ़ से तबादला हो गया और उनकी नियुक्ति मनोहरपुरा के पास झालाना स्टेशन (बाद में जिसका नाम गाँधीनगर स्टेशन रख दिया गया) पर हो गयी। कपूर साहब का रुझान अध्यात्म की तरफ तो था ही, एक कस्टम्स क्लर्क के कहने पर उन्होंने एक भजन मण्डली को बुला लिया, जिनके आने-जाने, रहने-सहने आदि पर पैंतालीस रूपये का खर्चा आया। उनकी मासिक तनख्वाह चालीस रूपये थी और वे महीने के आखिरी दिन थे। भजन मण्डली के लिए पूरे पैसे जुटाने में असमर्थ, कपूर साहब ने सरकारी खजाने से पैसे निकालकर भुगतान कर दिया लेकिन ऐसा करके वे मन-ही-मन दुखी थे और उन्होंने भविष्य में किसी भजन मण्डली को नहीं बुलाने का दृढ़ निश्चय कर लिया। कुछ दिनों बाद वे स्वयं अपने

लिए झांझ-मजीरे खरीद लाए और खुद ही घर में भजन-कीर्तन करने लगे। एक दिन भजन-कीर्तन कर जब वे झालाना रेलवे स्टेशन स्थित अपने घर से बाहर निकले तो ठाकुर रामसिंहजी को स्टेशन से बाहर निकल अपनी ओर आते देखा। ठाकुर रामसिंहजी ने पूछा कि तारबाबू क्या भजन आप ही कर रहे थे ? कपूर साहब ने सोचा कि नवलगढ़ में तो किसी तरह पीछा छुड़ा लिया था लेकिन ये यहाँ भी मिल गए। ठाकुर रामसिंहजी ने उसी पुरानी बात का जिक्र किया और बोले कि महात्मा श्री कृष्ण स्वरूपजी अब जयपुर ही आ गए हैं और कपूर साहब को उनका पता दे दिया। इतने में ट्रेन आ गयी और ठाकुर रामसिंहजी उसमें बैठकर साँभर चले गए जहाँ उनका नवलगढ़ से तबादला हो गया था।

कपूर साहब में भक्ति के संस्कार तो थे ही, उनके मन में महात्मा श्री कृष्ण स्वरूपजी से मिलने की इच्छा जाग्रत हो गयी। एक दिन वे महात्मा श्री कृष्ण स्वरूपजी के घर पहुँच गए और बतलाया कि ठाकुर रामसिंहजी के कहने पर वे हाजिर हुए हैं। महात्मा श्री कृष्ण स्वरूपजी ने भी वही ठाकुर रामसिंहजी वाला सवाल पुछा कि क्या करते हैं ? कपूर साहब ने जो वे करते थे बताकर एक स्वप्न की व्याख्या जाननी चाही। महात्मा श्री कृष्ण स्वरूपजी के पूछने पर उन्होंने बताया-'मैंने स्वप्न में देखा कि मैं अपने जन्मस्थान मथुरा में घर में आँगन में खड़ा था कि ऊपर निगाह जाने पर देखा कि मुख्य द्वार से दो सफ़ेद बन्दर आ रहे हैं। डरकर मैंने अपनी ताईजी को आवाज दी। उन्होंने देखकर कहा, 'ये तो सतगुरु हैं।' मेरे प्रार्थना करने पर उन्होंने मुझे तीन पुड़िया दी और अन्तर्धान हो गए। मेरे मन में तभी से यह दृढ़ धारणा हो गयी है कि जो साधु-महात्मा उन तीन पुड़िया का रहस्य समझा देंगे, मैं उन्हें अपना गुरु स्वीकार कर लूँगा।

महात्मा श्री कृष्ण स्वरूपजी ने कुछ देर बात करने के बाद कपूर साहब से यदि उनके पास समय हो तो वहाँ आते रहने के लिए कहा। कपूर साहब हर रोज शाम को उनके पास हाजिर होते रहे। एक दिन

महात्मा श्री कृष्ण स्वरूपजी ने मौलाना रूमी का यह कलाम सुनाया- 'चश्मबंदो, गोशबंदो, लब्बोबंद; गर ना बीना सिर्रे हक बर मन् बिखंद।' अर्थात आँख बंद कर ले, कान बंद कर ले और जुबान बंद कर ले, अगर फिर भी परमात्मा ना मिले, तो मेरी हँसी उड़ा लेना। कपूर साहब को तीन बंद पुड़ियाओं का रहस्य समझ आ गया (बंद आँख, बंद कान और बंद जुबान)। उसी क्षण उनके चरणों में प्रणाम कर उन्होंने उन्हें अपना गुरु स्वीकार कर लिया और मन-ही-मन ठाकुर रामसिंहजी साहब की मजबूत पकड़ और अनवरत आग्रह का धन्यवाद किया जिनकी कृपा से उन्हें अपने गुरुदेव की शरण मिली।

बाद में कपूर साहब की पदोन्नति सहायक स्टेशन मास्टर, सांगानेर, के पद पर हो गयी। सन 1942 में स्टाफ की लापरवाही से एक भयंकर दुर्घटना होते-होते परमात्मा की कृपा से बच गयी। कपूर साहब स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेकर कानपुर चले आए। यह भी एक संयोग था कि इस दौरान अप्रैल1942 से कुछ माह के लिए ठाकुर रामसिंहजी जिनकी नियुक्ति मंडावा में थी, सांगानेर पुलिस स्टेशन भेज दिए गए थे और इस घटना के बाद उन्हें पुन: मंडावा बुला लिया गया।

ठाकुर रामसिंहजी का सद्-व्यवहार उनके सम्पर्क में आने वाले लोगों पर अपनी अमिट छाप छोड़ देता। पुलिस विभाग के बहुत से अधिकारी उनसे बहुत प्रभावित हुए और कईयों ने तो उनका अनुसरण करते अपने रहने-सहने का ढंग भी बदल लिया। इनमें डिप्टी एस. पी. कुशलसिंह राजावत और एस. पी. मूलसिंह भी शामिल थे। सन 1934 में राजावत कुशलसिंह पुलिस थाना मालपुरा में थानेदार थे और उन्हीं दिनों ठाकुर रामसिंहजी साहब नवलगढ़ थाने में नियुक्त थे। संयोगवश दोनों को ही एक साथ जयपुर ट्रेनिंग में जाने का मौका मिला। दोनों का पुराना परिचय था, बचपन में साथ-साथ पढ़े थे, अत: ट्रेनिंग में भी साथ-साथ समय बिताते।

राजावतजी एक सीधे-सच्चे ईमानदार थानेदार थे। उनका जन्म महला के राजसी परिवार में हुआ था। उनमें बहुत से गुण थे लेकिन उन्हें शराब का व्यसन था, जिसने सब गुणों पर पानी फेर दिया था। शाम होते ही बोतल खोल कर बैठ जाते। वे रईस तबियत के व्यक्ति थे, खुद पीते और साथियों को भी पिलाते। ठाकुर रामसिंहजी साहब ने एक बार उन्हें टोका तो उन्होंने बात हँसी में उड़ा दी। फिर दोबारा जब ऐसा संयोग हुआ तो राजवातजी ने कहा-'आप क्या जानो शराब का मजा ? एक दिन पीकर देखो, स्वर्ग उतर कर धरती पर आ जायेगा।' यह सुनकर ठाकुर रामसिंहजी साहब बोले, 'शराब हम भी पीते हैं, पैसे भी नहीं लगते और मजा भी चौगुना आता है।' राजावतजी बोले क्या ऐसी भी कोई शराब होती है ? ठाकुर रामसिंहजी साहब ने फ़रमाया, 'होती है, शाम को आना, पिलायेंगे।'

शाम को राजावत कुशलसिंह ठाकुर रामसिंहजी साहब के कमरे पर आ गये। आपने उन्हें हाथ-पैर धोकर आने को कहा। फिर दोनों आमने-सामने बैठ गये, बातें होने लगे। राजावतजी पर नशा छाने लगा। वाणी ने मौन धारण कर लिया, पलकें बंद हो गयीं और शरीर की सुध-बुध जाती रही। अंतर में प्रकाश छा गया। जब आँखें खुली तो सामने बैठे ठाकुर रामसिंहजी साहब मुस्कुरा रहे थे। राजावतजी ने आनंद विभोर होकर ठाकुर रामसिंहजी साहब के पाँव पकड़ लिये। कहते हैं कि उन्हें सात दिन-रात यही नशा चढ़ा रहा। आँखों में एक अजीब मस्ती आ बसी। मित्र पूछने लगे कि क्या आजकल दिन में भी पीते रहते हो ? राजावतजी को शराब से हमेशा के लिये छुटकारा मिल गया। उसकी जगह इस दिव्य अनुभव ने ले ली और उन्हें ठाकुर रामसिंहजी साहब का प्रथम सत्संगी होने का सौभाग्य मिला। धीरे-धीरे उनकी चर्चा लोगों में होने लगी जो आई. जी. पी. यंग साहब के कानों में भी पहुँची और वे उन्हें दूसरा रामसिंह कहने लगे।

राजावत कुशलसिंहजी के बाद ठाकुर रामसिंहजी साहब के दूसरे सत्संगी होने का सौभाग्य भी पुलिस महकमे के ही एस. पी. मूलसिंह शेखावत को प्राप्त हुआ। वे लम्बे समय तक जयपुर शहर के पुलिस अधीक्षक (एस. पी.) रहे। ठाकुर रामसिंहजी का जब जयपुर आना होता तो वे मूलसिंहजी के घर ही ठहरते थे। मूलसिंहजी एक खुश मिजाज व्यक्ति थे और पुलिस विभाग को फलों से लदा वृक्ष समझते, जिसे जब चाहा हिला लिया और जेब भर ली। वे ठाकुर रामसिंहजी को अक्सर कहते कि कैसे पुलिस वाले हो आप ? पुलिस की नौकरी में भी पैसा नहीं बनाया ? मूलसिंहजी अच्छी कद-काठी वाले थे और बहादुर आदमी थे। जयपुर रियासत में उनका एक बहादुर पुलिस अधिकारी के रूप में नाम था। चोर और डाकू उनके नाम से काँपते थे। एक बार एक दुर्दान्त डाकू को जिसके पास जाने की कोई हिम्मत नहीं कर रहा था, उन्होंने अकेले ही चुनौती देकर निहत्थे पीछे से जाकर उसे पकड़ लिया। ऐसे बहादुर व्यक्ति को भी मदिरापान के व्यसन ने अपनी गिरफ्त में जकड़ रखा था, जो पुलिस विभाग में एक आम बात थी। एक बार आपने अपनी इस कमजोरी का जिक्र ठाकुर रामसिंहजी साहब के सामने किया। ठाकुर रामसिंहजी साहब ने कहा, 'कोतवाल साहब, इस नशे से गहरा एक और नशा है। शराब का नशा तो चढ़ता-उतरता रहता है लेकिन यह नशा चढने के बाद फिर नहीं उतरता।' मूलसिंहजी बोले, 'यदि आप जैसा व्यक्ति मेरी सहायता नहीं करेगा तो फिर किस से आशा की जा सकती है ? आप जिस नशे में विभोर रहते हैं, उसकी कुछ घूँट मुझे भी पिलाने की कृपा करें।'

तीर निशाने पर लगा। उसी शाम दोनों सज्जन एक तख्त पर आमने-सामने बैठ गये। ध्यान शुरु हुआ। करीब एक घण्टे बाद जब मूलसिंहजी की आँख खुलीं तो वे बोले आज आपने यह अमृत वर्षा कर मेरा जीवन धन्य कर दिया। मूलसिंहजी ने इस प्रथम अनुभव का अपने शब्दों में बाद में इस प्रकार वर्णन किया- "मुझे महसूस हो रहा था कि आनंद की

तरंगे आ-आकर मुझसे टकरा रही हैं। मुझे समय की कोई सुध-बुध ना रही और मैं आनंद के सागर में डूब गया। जब ध्यान समाप्त होने के बाद मैं चलने लगा तो मेरा शरीर काँप रहा था। पूरी बोतल पीने के बाद भी मेरे साथ कभी ऐसा नहीं होता था। ना जाने उस देवता पुरुष ने क्या कर दिया कि मेरे जीवन की दिशा ही बदल गयी। शराब पीने की मेरी आदत एकदम छूट गयी और उसकी जगह समय ईश्वर भजन में गुजरने लगा।"

बाद में सन 1965 में श्री कुशलसिंह राजावत गम्भीर रूप से बीमार पड़ गए और उन्हें जयपुर के सवाई मानसिंह हॉस्पिटल में भर्ती करवाया गया, जहाँ वो करीब दो माह तक रहे। ठाकुर रामसिंहजी रोजाना उनसे मिलने जाते थे। एक दिन दुर्गाजी ने जो कुशलसिंहजी के साथ लम्बे अर्से से थे, ठाकुर रामसिंहजी से उन्हें स्वस्थ करने की विनती की। कहा-'चाहे कोई ओर उन्हें ठीक कर सके या नहीं, मैं जानता हूँ आप यह कर सकते हैं, उन पर कृपा करें।' ठाकुर रामसिंहजी ने जिन्दगी की हकीकत बताते हुए एक उदाहरण द्वारा दुर्गाजी को सांत्वना दी। बोले-'एक स्त्री घर से बाहर जाने की तैयारी कर रही थी। उसका बेटा रोने लगा और साथ ले चलने के लिए जिद करने लगा। माँ उसे खिलौना देती है। अब अगर बेटा खिलौना लेकर चुप हो जाता है और साथ चलने की जिद छोड़ देता है, तो माँ उसे गोद में नहीं लेगी। अगर बेटा खिलौना नहीं लेता और अड़ा रहता है, तो माँ उसे खाने के लिए कुछ देकर उसे बहलाना चाहती है। यदि बेटा मान जाता है, तो माँ उसे छोड़कर चली जाएगी। यदि वो तब भी नहीं मानता, तो माँ कुछ और चीज देकर उसे बहलाएगी और फिर भी नहीं माना तो डांटे-डपटेगी या थप्पड़ लगाएगी और अगर बच्चा जिद पर अड़ा ही रहा तो आखिर में माँ उसे गोद में साथ ले ही जाएगी।' कुशलसिंहजी की तबियत में कोई सुधार नहीं हुआ, बिगड़ती ही गई और अंत में 30 जनवरी, 1966 को वे इस संसार से विदा ले अपनी 'माँ' रुपी परमात्मा की गोद में चले गए। कुशलसिंहजी को कोई संतान नहीं थी। ठाकुर

रामसिंहजी ने उनकी पत्नी को बच्चा गोद लेने की सलाह दी और बच्चे को आशीर्वाद दिया।

ठाकुर रामसिंहजी की नियुक्ति जब साँभर में थी तो जयपुर आते हुए उन्होंने बच्चों के लिए अपने सिपाही को एक रुपया देकर लड्डू मँगवाए। सिपाही ने जाकर हलवाई को एक रुपया दिया और बोला कोतवाल साहब ने लड्डू मँगवाए हैं। उन दिनों सौलह आने का एक रुपया होता था और एक आने का एक लड्डू आता था। हलवाई ने एक पत्तल में सत्रह लड्डू बाँधकर उसे दे दिए। सिपाही ने लड्डू ले जाकर थाने में एक मेज पर रख दिए और बाहर आ गया। पत्तल से एक लड्डू फिसलकर नीचे फर्श पर गिर गया। ठाकुर रामसिंहजी ने सिपाही को बुलाकर पूछा कि लड्डू नीचे कैसे गिर गया ? वो बोला-'हुजुर लड्डू गोल है, फिसलकर गिर गया होगा।' ठाकुर रामसिंहजी विश्वास के साथ बोले-'मेरी कमाई ईमानदारी की है, बर्बाद नहीं हो सकती।' फिर उन्होंने सिपाही से पूछा कि उसने हलवाई से क्या कहा था ? सिपाही बोला-'हुजुर ! मैंने उसे एक रुपया देकर कहा था कि लड्डू आपने मँगवाए हैं। उसने ऊपर से एक लड्डू और रख दिया।' ठाकुर रामसिंहजी ने सिपाही को दो आने दिए हलवाई को उस अतिरिक्त लड्डू के लिए देने के लिए और बोले कि जो लड्डू नीचे गिर गया था उसे रास्ते में किसी गाय को खिला देवे।

सन 1932 में जब श्री कुशलसिंह राजावत मालपुरा में तैनात थे, मालपुरा के सैंतीवास के श्रीकिशन गुजर उनके सम्पर्क में आए और उनके अध्यात्मिक रुझान को देख कुशलसिंहजी ने उन्हें ठाकुर रामसिंहजी से मिलने को कहा। श्रीकिशन गुजर ठाकुर रामसिंहजी से मिले और उनके बताए अनुसार साधन-भजन करने लगे। ठाकुर रामसिंहजी ने उन्हें पुलिस विभाग में नौकरी दिलाने में भी मदद करी और वो एस. पी. मूलसिंहजी के पास अर्दली लग गए। दो साल गुजर गए। सन 1935 में महात्मा श्री कृष्ण स्वरूपजी जयपुर आ गए थे और मूलसिंहजी प्राय: उनके दर्शन के लिए जाते रहते थे और अपने साथ वे

श्रीकिशन गुजर को भी ले जाते। एक दिन उन्हें किसी काम से जाना था सो उन्होंने श्रीकिशन गुजर को महात्मा श्री कृष्ण स्वरूपजी के पास ही छोड़ दिया। उन्हें अकेला देखकर श्रीकिशन गुजर ने हाथ जोड़कर उनसे विनती की कि वे उस पर भी अपनी कृपा करें। सरल और शुद्ध हृदय से की गई प्रार्थना सुन महात्मा श्री कृष्ण स्वरूपजी ने उन्हें ध्यान में बैठा लिया और तवज्जोह देकर उन्हें ठाकुर रामसिंहजी द्वारा बताया गये साधन-भजन में पूर्णता की स्थिति में पहुँचाकर उसमें स्थिरता प्रदान कर दी। कुछ समय बाद श्रीकिशन गुजर की तैनाती जलेबी चौक स्थित ट्रेज़री को गार्ड करने में हो गयी। श्रीकिशन गुजर अपना साधन-भजन करते रहे और उसमें अधिकाधिक गहराई से उतरते रहे यहाँ तक कि ड्यूटी के वक्त भी वो उसमें डूबे रहते और ड्यूटी बदलने के समय जब दूसरा गार्ड आकर उन्हें सचेत करता तब वे बाहरी दुनिया में लौटते। धीरे-धीरे उनके साथियों ने सोचना शुरू कर दिया कि वो ड्यूटी के वक्त भी कोई नशा करने लगे हैं। जाँच करने पर उन्हें ड्यूटी पर लापरवाही का दोषी पाया गया। नतीजतन उनको पुलिस लाइन्स भेज दिया गया। पुलिस लाइन्स में सभी को सुबह-सुबह परेड में शामिल होना होता था। एक दिन वे अपनी साधना में इतना खो गए कि समय का ख्याल ही ना रहा और जब ध्यान आया तो परेड का वक्त कब का गुजर चुका था। वो भागकर परेड इन्चार्ज के पास गए और माफ़ करने के लिए कहने लगे। आसपास खड़े लोग ताज्जुब कर रहे थे कि वो ऐसा क्यों कर रहे हैं, क्योंकि उन सब ने उन्हें परेड में हाजिर देखा था। जब श्रीकिशन गुजर ने आग्रह किया तो परेड इन्चार्ज ने रजिस्टर में उनकी हाजिरी भी दिखला दी, और तो और उनके आगे और पीछे खड़े सिपाहियों को भी बुलाकर पुछवा दिया और उन्होंने भी उनकी हाजिरी की पुष्टि कर दी और बोले कि वो परेड समाप्त होने तक वहीँ थे और उसके बाद ही वहाँ से लौटे। इस घटना से श्रीकिशन गुजर के हृदय में अपने गुरुदेव के प्रति प्रेम का ज्वालामुखी फूट पड़ा और पुलिस की नौकरी से मन उचट गया जिसके

कारण उनके गुरुदेव को उसके बदले ड्यूटी करनी पड़ी। उसी दिन उन्होंने साथियों के समझाने के बावजूद नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया । उच्च अधिकारियों ने मददकर उनकी पेंशन करवा दी।

सन 1937 में जब ठाकुर रामसिंहजी की तैनाती सांगानेर पुलिस स्टेशन में थी और वे वहाँ के थाना इन्चार्ज थे, थाना बस्ती के बाहर एक निजी भवन में था। सांगानेर में तैनाती के दौरान वे दिन में खाना अपने घर से मँगवाया करते थे और इसके लिए उन्होंने गाँव के ही एक युवक भँवरीलाल शर्मा को रख लिया था जो उनके लिए खाना भी लाता था और उनके ऊँट की देखभाल भी कर लिया करता था । उसे मालूम था कि ठाकुर रामसिंहजी एक संत हैं और वो उनकी कृपादृष्टि का इच्छुक भी था लेकिन कहने की कभी उसकी हिम्मत नहीं हुई । ठाकुर रामसिंहजी को इसका आभास था। एक दिन वे उससे बोले-'भँवरी ! अगर मैं तुझसे कुछ कहूँ, तो क्या तू मानेगा ?' भँवरीलाल ने कहा अगर मानने जैसी बात होगी तो जरूर मानूँगा । उसका उत्तर सुन ठाकुर रामसिंहजी थोड़ा मुस्कुराए और बोले-'भँवरी ! चोरी और अन्याय बुरी चीज हैं, इनसे बचकर रहना।' भँवरीलाल के पूछने पर ठाकुर रामसिंहजी ने समझाया-'औरों के धन और पराई स्त्री पर कभी निगाह मत रखना।' भँवरीलाल ने इसे दिल में बैठा लिया और यह बात उसके लिए जीने का मंत्र बन गयी। एक दिन जब वो ऊँट को चराने के लिए ले गया तो थकान के कारण एक पेड़ के नीचे थोड़ा सा आराम करने के लिए बैठ गया। संयोग की बात कि ऊँट थोड़ा आगे निकल गया और उसने सांगानेर हवाईअड्डे की दीवार एक जगह से गिरा दी। शिकायत ठाकुर रामसिंहजी के पास पहुँची तो वे बोले-'भँवरी ! तूने उलाहने वाली बात कर दी । अब मैं तुझे अपने पास नहीं रख सकता।' भँवरीलाल को उदास देख ठाकुर रामसिंहजी ने उसे सांत्वना दी और प्रयासकर उसे रेलवे स्टेशन पर ही पानी लाने के काम पर लगवा दिया। भँवरीलाल ने 36 वर्ष ईमानदारी और निष्ठा से रेलवे की नौकरी की और नाम कमाया। एक बार उसे प्लेटफार्म पर किसी के

200 रूपये पड़े हुए मिले जिसे उसने पूछ-ताछ करके मालिक को लौटा दिए। उसने ईनाम में दस रूपये देने चाहे पर भँवरीलाल ने लेने से इनकार कर दिया। इसी तरह एक दूसरे अवसर पर निवाई रेलवे स्टेशन पर एक नीम के पेड़ के नीचे उसे गहनों का बक्सा मिला। नवाब टोंक का परिवार लखनऊ जारहा था और गहनों का वह बक्सा उन्हीं का था। भँवरीलाल ने उसे स्टेशन मास्टर के पास जमा करवा दिया। नवाब टोंक के परिवार को जब मालूम चला तो उन्होंने भँवरीलाल का बहुत आभार माना और शुक्रिया अदा किया।

इसी दौरान एक रात जब ठाकुर रामसिंहजी ड्यूटी से वापस घर लौट रहे थे तो रास्ते में देखा कि एक आदमी उन्हीं के खेत से चोरी से बबूल के पेड़ को काटकर उसे ले जाने का प्रयास कर रहा था। ठाकुर रामसिंहजी चुपचाप उसके पास पहुँच कटे पेड़ को उठाने में उसकी मदद करने लगे। जब उसने खेत के मालिक और ऊपर से थानेदार ठाकुर रामसिंहजी को स्वयं वहाँ देखा तो घबरा गया और उनके पैरों पर गिर गड़गिड़ाने लगा। कहने लगा कि अब कभी किसी के खेत से पेड़ नहीं काटूँगा, बस आप मुझे माफ़ कर दें। राग-द्वेष से ऊपर उठ चुके करुण-हृदय और दया की साक्षात मूर्ती, ठाकुर रामसिंहजी ने उसे सांत्वना दी और यह कहते कि अब आगे से कहीं भी चोरी मत करना, वरना जेल जाना पड़ेगा, वह कटा हुआ पेड़ उसके कंधे पर रखवा दिया। रास्ते भर वो ठाकुर रामसिंहजी से विनती करता रहा कि वे किसी को ना बताएँ। ठाकुर रामसिंहजी ने उसे आश्वस्त किया कि वे किसी को नहीं कहेंगे और उसे जल्दी से चले जाने के लिए कहा, नहीं तो कोई उसे देख लेगा। अगली सुबह ठाकुर रामसिंहजी के बड़े सुपुत्र हरीसिंहजी हमेशा की तरह जब खेत पर गए और बबूल के पेड़ को कटा पाया तो अपने पिता से बोले-'आप यहाँ के थानेदार हो और आपके ही खेत में चोरी ! कोई अपना बबूल का पेड़ काटकर ले गया।' ठाकुर रामसिंहजी ने उन्हें शांत करते हुए कहा, 'कोई पुख्ता

इंतजाम कर लेंगे।' बाद में उन्होंने अपने किसी परिचित को खेत और फसल की देखभाल के लिए रख लिया।

हालाँकि ठाकुर रामसिंहजी को अख्त्यार था कि वे उस व्यक्ति को गिरफ्तार कर उचित कार्यवाही कर सकते थे, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। वे गुरु-भक्त थे और उनकी निगाह में एक भक्त के लिए ऐसा करना उचित नहीं था, उन्होंने इसे अपने मालिक की मर्जी समझ, सब उस पर छोड़ रखा था। (पेड़ तो कट ही चुका था, उसे वापस लगाया नहीं जा सकता था। उस व्यक्ति से उन्होंने आगे से ऐसा ना करने की बात कहलवा ली थी और जहाँ तक उनके स्वयं का सवाल है, वे खुद खेत के मालिक थे, सो वे अपनी चीज किसीको भी दे सकते थे अत: चोर का साथ देने के भी वे अपराधी नहीं ठहराए जा सकते थे) ठाकुर रामसिंहजी के इस अविश्वस्नीय व्यवहार ने उस व्यक्ति को भीतर तक झकजोर कर रख दिया था। वो इसके बारे में विचार करता रहा और अंत में उसने अपनी ग्लानि दूर करने सन 1971 में (ठाकुर रामसिंहजी के शरीर त्यागने के बाद) यह घटना खुद हरीसिंहजी को बताई और उनसे उसे माफ़ कर देने की विनती की।

सन 1937 की ही एक और रोचक घटना है। ठाकुर रामसिंहजी के बारे में लोगों ने कहना शुरू कर दिया था कि वे हाथ देखकर ही बता देते हैं कि आरोपी सच बोल रहा है या झूठ ? दरअसल हुआ यह था कि सांगानेर थाने के क्षेत्रधिकार में पड़ने वाले शिवपुर गाँव के एक खाती (बढ़ई) की पुत्रवधु काफी समय से अपने पीहर में ही रह रही थी और बहुत मनाने के बाद भी पति के पास ससुराल नहीं आ रही थी। आखिर में उसका पति और स्वसुर उसे लेने उसके पीहर गए। उस लड़की के माँ-बाप ने किसी तरह समझा-बुझाकर उसे उनके साथ भेज दिया। वे तीनों पैदल ही आ रहे थे कि रास्ते में एक कुआँ देख लड़की पानी पीने के बहाने कूए में कूद गयी। तुरंत उसका पति कूए में लटकी लाव (पानी निकलने के लिए रस्सी) के सहारे कूए में नीचे सरकते हुए अपनी पत्नी को जीवित निकाल

लाया। लेकिन लड़की ने बाहर निकलकर शोर मचाना शुरू कर दिया, अपने माँ-बाप के पास चली गयी और अपने पति और ससुर पर इल्जाम लगा दिया कि उन्होंने उसे कूए में धकेलकर मारने की कोशिश करी लेकिन खेत में काम करने वाले कुछ लोगों ने उसका रोना-चिल्लाना सुन उसे बचा लिया। लड़की के माँ-बाप ने उन बाप-बेटे के खिलाफ सांगानेर थाने में रिपोर्ट लिखवा दी। थाने के सहायक इन्चार्ज ने एक कांस्टेबल के साथ शिवपुर जाकर रिपोर्ट बनाई और उन पिता-पुत्र दोनों को लाकर थाने में बंद कर दिया। जब ठाकुर रामसिंहजी थाने पहुँचे तो उन्होंने रिपोर्ट देखी और पिता-पुत्र दोनों को बुलवा लिया। तब तक लड़की के पीहर वाले शिवपुर के रावजी के पास, जो ठाकुर रामसिंहजी के रिश्तेदार थे, पहुँच गए थे और उनसे ठाकुर रामसिंहजी को कहलवा दिया था कि वे पिता-पुत्र दोनों को कड़ा दण्ड दिलवाएँ। ठाकुर रामसिंहजी ने पिता-पुत्र दोनों की बात तसल्ली से सुनी और सुनकर लड़के को अपनी हथेलियाँ दिखाने को कहा। लड़के की दोनों हथेलियों पर रस्सी की रगड़ के कारण घाव हो गए थे। ठाकुर रामसिंहजी ने ब्यान दर्ज किये और पिता-पुत्र दोनों को बेगुनाह साबित कर बरी कर दिया।

ठाकुर रामसिंहजी की आन्तरिक शुचिता, दयालुता और सादगी उनके व्यक्तित्त्व और आचरण में भी झलकती थी। यह घटना चाकसू पुलिस स्टेशन की है जहाँ सांगानेर से ठाकुर रामसिंहजी का तबादला सन 1937 में ही हो गया था। किसी तरह आई. जी. पी. यंग साहब के कानों में यह बात पहुँच गयी कि ठाकुर रामसिंहजी साधु-संतों की बात करते रहते हैं और अपनी ड्यूटी पर ध्यान नहीं देते। उन्होंने डी. आई. जी. पुलिस को चाकसू थाने का अचानक निरीक्षण करने का आदेश दे दिया और एक दिन डी. आई. जी. साहब अचानक ही चाकसू पुलिस स्टेशन पहुँच गए। उन्होंने देखा कि थाने का सारा कार्य चाक-चोबन्द है जैसा कि किसी ईमानदार अधिकारी द्वारा किया जाना चाहिए। पुलिस स्टेशन की सुचारु व्यवस्था और कार्य में सक्षमता देख वे ठाकुर रामसिंहजी की कार्य

प्रणाली से काफी प्रसन्न हुए और उनकी पीठ थपथपाकर उनको शाबासी दी और कहा कि उन्हें उन पर गर्व है। लेकिन क्षेत्राधिकारी एस. पी. पुलिस ठाकुर रामसिंहजी की लोकप्रियता और प्रसिद्धि के कारण उनसे ईर्ष्या करते थे। ठाकुर रामसिंहजी के बंद-गले के कोट के बटन, जो उनकी वर्दी का हिस्सा था, पीतल के बने थे और शीशे की तरह चमकते थे। मौक़ा देखकर एक दिन उन एस. पी. साहब ने आई. जी. पी. यंग साहब से ठाकुर रामसिंहजी की शिकायत कर दी कि 'रामसिंह अपनी कुर्सी पर बैठा सारे दिन राम-राम करने के सिवा कुछ नहीं करता, बस अपने कोट के बटन चमकाता रहता है। यंग साहब ने तुरंत डी. आई. जी. साहब को बुलवाया और बोले देखो यह एस. पी. रामसिंह की क्या शिकायत कर रहा है ? डी. आई. जी. साहब ने एस. पी. को डाँटते हुए कहा-'उसका पुलिस स्टेशन भी उसके बटनों की तरह ही चमकता है। मैंने खुद उसके थाने का मुआयना किया है।' शर्मिन्दा एस. पी. साहब छोटा सा मुँह लेकर चुपचाप कमरे से बाहर निकल गए।

आई. जी. पी. यंग साहब के पास एक और अधिकारी ठाकुर रामसिंहजी की शिकायत लेकर पहुँचे थे। गांधीजी के डांडी मार्च और नमक आन्दोलन ने सारे देश में हलचल मचा दी थी। राजस्थान की राजसी रियासतें भी इससे अछूती नहीं रहीं। इन्हीं दिनों राजस्थान में जगह-जगह प्रजा-मण्डलों की भी स्थापना हो गयी थी जो बाद में एक जन आन्दोलन में बदल गया। ऐसा ही एक आन्दोलन गीजगढ़ में भी शुरू हो गया जिसका नेतृत्व व्यापारी समुदाय कर रहा था। गीजगढ़ का सामन्त जयपुर स्टेट कौंसिल का एक सदस्य था जो गीजगढ़ में ऐसे किसी आन्दोलन के पक्ष में नहीं था। उसने आई. जी. पी. यंग साहब से सलाह ली जिन्होंने चालाकी से काम लेते हुए अपने कुछ आदमी सादा कपड़ों में गीजगढ़ भेज दिए। इन लोगों ने डंडों से व्यापारियों की पिटाई की और मार-पिटाई के दौरान इन लोगों के सरदार के मुँह से निकल गया कि उन्हें यंग साहब ने उन लोगों (व्यापारियों) को सबक सिखाने के लिए

भेजा है। पिटाई होने के कारण व्यापारी पुलिस थाने में रिपोर्ट लिखाने पहुँच गए। ठाकुर रामसिंहजी थानाध्यक्ष थे। वे जब तक घटनास्थल पर पहुँचे वे लोग जा चुके थे। ठाकुर रामसिंहजी ने मामला दर्ज कर जाँच शुरू कर दी। बयान दर्ज किए गए जिनमें कहा गया था कि उन लोगों का सरदार पंजाबी जैसा लग रहा था जिसने उन जैसी पगड़ी पहनी हुई थी और वो कह रहा था कि उन्हें यंग साहब ने उन लोगों (व्यापारियों) को सबक सिखाने के लिए भेजा है। ठाकुर रामसिंहजी ने रोजनामचे में एक-एक शब्द वैसे ही लिखकर शिकायत दर्ज कर ली। जब उस क्षेत्र के डिप्टी एस. पी. को शिकायत दर्ज करने की जानकारी मिली तो उसने रोजनामचे को अपने पास रख लिया और व्यंग से बोला-'थानेदार साहब ! अब आपकी महात्माई सबके सामने आ जाएगी। आपने यंग साहब के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज की है।' ठाकुर रामसिंहजी ने कहा-'मैंने अपनी ओर से कुछ नहीं लिखा है, केवल अपनी ड्यूटी को ईमानदारी से निभाया है।' अपनी वफादारी दिखाने के लिए वह अधिकारी रोजनामचा लेकर जयपुर पहुँचा। उस समय काशीप्रसाद तिवाड़ी जयपुर में पुलिस अध्यक्ष थे। वह अधिकारी एस०पी० के सामने हाजिर ना होकर रोजनामचा लेकर सीधा ही आई. जी. पी. यंग साहब के पास पहुँच गया। मौका मिलते ही रोजनामचा पुलिस महानिरीक्षक के सामने रख दिया और कहा, "यह पुलिस थाना बस्सी का रोजनामचा है, इसके थानेदार रामसिंह ने साहब के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज की है। यंग साहब चौंके और सब काम छोड़कर रिपोर्ट सुनाने को कहा, फिर पूरी रिपोर्ट सुनने के बाद दिल खोलकर हँसे। रोजनामचा लाने वाले पुलिस अफसर से बोले, "रामसिंह धानेदार ही ऐसी रपट लिख सकता है, तुम लोग नहीं, तुम लोग गूँ खाता है।"

आई. जी. पी. यंग साहब को जरूर याद हो आया होगा कि एक बार जब उन्होंने ठाकुर रामसिंहजी को बुलवाया था और धानेदार रामसिंह को खाने के लिए दो संतरे दिए थे तो ठाकुर रामसिंहजी ने उन संतरों के बदले साहब की मेज पर अपनी जेब से एक चवन्नी रख दी। यंग साहब ने कभी

कल्पना भी नहीं की होगी कि उनका कोई अधीनस्थ पुलिस वाला एसा कर सकता है, वे असमंजस में पड़ गए और ठाकुर रामसिंहजी से बोले कि वे पैसे नहीं ले सकते। प्रत्युत्तर में ठाकुर रामसिंहजी ने नम्रता लेकिन दृढ़ता से कहा-'सर ! मैं किसी से भी कोई चीज मुफ्त में नहीं लेता। यदि आप पैसे नहीं ले सकते तो कृपाकर मुझे संतरे लेने के लिए मजबूर ना करें।' हारकर यंग साहब ने पैसे रख लिए थे।

दिसम्बर 1937 के अन्तिम सप्ताह में चाकसू से तबादला होकर ठाकुर रामसिंहजी फुलेरा पुलिस स्टेशन आ गए जहाँ उनकी तैनाती काफी समय तक रही। उन दिनों पुलिस थाना फुलेरा रेलवे स्टेशन से लगा हुआ था और वहाँ से शहर कुछ दूर था। भारत में चाय तब नई ही थी जिसे अंग्रेज अपने साथ लेकर आए थे और लोगों में चाय का सेवन इतना लोकप्रिय नहीं हुआ था। लोग अपने घरों में भी चाय का प्रयोग यदा-कदा ठंड आदि लगने पर दवा के रूप में ही करते थे और लोग इसे रईसी का प्रतीक मानते थे। फुलेरा रेलवे स्टेशन के आसपास कोई चाय वाला भी नहीं हुआ करता था। एक दिन एक मदारी अपना खेल-तमाशा दिखा थका-हारा निढ़ाल होकर पुलिस थाने की दीवार से टिककर आ बैठा। ठाकुर रामसिंहजी समझ गए कि माजरा क्या था ? वे थाने के भीतर गए और ब्रुक-बाण्ड चाय का एक छोटा पैकेट अपने हाथ में लिए बाहर आए और मदारी की नकल करते उसे डमरू की तरह घुमाने लगे। उनके हाथ में चाय का पैकेट देख मदारी की जान में जान आगयी और वो उनसे बोला-'माई-बाप ! आज पूरे दिन चाय कहीं भी नहीं मिली। मुझ पर दया करो।' ठाकुर रामसिंहजी ने पहले तो चाय बनाकर उसे पिलाई और फिर वो चाय का पैकेट उसे ही दे दिया। उस दिन से उन्होंने स्वयं चाय पीना छोड़ दिया। इस घटना से विदित होता है कि जहाँ एक तरफ उनका हृदय दूसरों के प्रति करुणा और सहानुभूति से भरा हुआ था, वहीं दूसरी तरफ वे अपने ऊपर लगाम लगाते जा रहे थे और स्वयं को कसते जा रहे थे।

ठाकुर रामसिंहजी सभी की सेवा पूर्ण निष्ठा के साथ करना अपना कर्त्तव्य समझते थे और उनकी निगाह में छोटे-बड़े का भेदभाव नहीं था। यह घटना उनकी फुलेरा में तैनाती के समय की ही है जिसे साँभर के तत्कालीन तहसीलदार साहब ने बताया । वे ठाकुर रामसिंहजी के व्यवहार, आचरण और संत-प्रकृति से बहुत प्रभावित थे। जब भी उन्हें मौका मिलता वे साँभर से उनसे मिलने फुलेरा आ जाते। ऐसे ही छुट्टी के एक दिन वे ठाकुर रामसिंहजी के पास फुलेरा आए हुए थे। दिन के भोजन का समय था और ठाकुर रामसिंहजी भोजन तैयार कर खाना खाने बैठे ही थे कि तभी एक ग्रामीण हाथ जोड़कर थानेदार साहब के पास आया और कहने लगा कि मैं धोती ओढ़कर मुसाफिर खाने में लेटा था, मेरी आँख लग गयी, कोई धोती उठा ले गया । रामसिंहजी ने उस गरीब को निहारा भोजन की थाली एक ओर सरका दी, सीधे उस आदमी के साथ मुसाफिर खाने की राह ली । मुसाफिर खाने में थोड़े से यात्री थे । उन्होंने इस चोरी का मौका मुआयना किया । मुसाफिर खाने में खड़े होकर इधर-उधर देखा और एक आदमी का हाथ पकड़कर कहा "रामजी इस गरीब की धोती दे दो । तुम पराई धोती का क्या करोगे ?" उस आदमी ने थानेदार जी के मुख की ओर देखा और बिना कुछ बोले ही अपनी पोटली में से धोती निकालकर दे दी ।

ठाकुर रामसिंहजी ने सर्वाधिक समय पुलिस थाना नवलगढ़ में रहकर बिताया । नवलगढ़ में ठाकुर रामसिंहजी की पहली दफा नियुक्ति सन 1926 में कांस्टेबल पद पर हुई थी, जिसके बाद सन 1932 में उनकी वहाँ थानेदार के पद पर नियुक्ति हुई और लोगों की माँग पर तीसरी दफा सन 1940 में। नवलगढ़ के लोग आज भी इस सन्त थानेदार को याद करते हैं । शेखावाटी में उन दिनों चोर डाकू काफी सक्रिय हो रहे थे ।आए दिन चोरियाँ हो रही थीं भोड़की निवासी अर्जुन नामक डाकू का बड़ा आतंक छाया हुआ था। वह वेष बदलकर दूर-दूर तक डाके डालता था । पुलिस के वश में नहीं आ रहा था । जयपुर राज्य की ओर से उसे जीवित या मृतक

जैसे भी हाथ लगे पकड़ने के आदेश थे । यह नवलगढ़ की सीमा क्षेत्र में था । जब रामसिंहजी नवलगढ़ आए तो चोरियाँ कम हो गयीं किंतु डाकू अर्जुन व कालू उसी प्रकार उत्पात मचाते रहे । डाकुओं का मुकाबला करने के लिए रामसिंहजी ने अतिरिक्त पुलिस बल बुला लिया । एक दिन नवलगढ़ थाने पर खबर आयी कि अर्जुन डाकू भोड़की आया हुआ है । सूचना मिलते ही थानेदार रामसिंह पुलिस बल लेकर भोड़की की ओर बढ़ चले । ढलती रात गाँव को आ घेरा । सुबह होते ही डाकू के अन्य साथी तो पकड़ में आ गए किंतु अर्जुन हाथ नहीं आया । अर्जुन बड़ा चतुर व साहसी डाकू था । वह घबराया नहीं, उसने तिलक लगा कर ब्राह्मण पुजारी का वेष धारण किया और थानेदार साहब के सामने से निकल गया तथा धीरज के साथ ब्राह्मण की भांति हाथ उठाकर आशीर्वाद भी दिया और चलता बना ।

ठाकुर रामसिंहजी को जब इस बात का पता लगा तो उन्होंने ग्रामवासियों से कहा-"मैंने अर्जुन धाडैती को देख लिया है, अब जहाँ कहीं भी मिल जाएगा गोली मार दूँगा ।" अर्जुन जानता था थानेदार रामसिंह जबान का पक्का है जो कहता है कर दिखाएगा । इस भय से उसने स्वयं जयपुर जाकर पुलिस महानिरीक्षक एफ. एस. यंग साहब के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया ।

सितम्बर 1941 में ठाकुर रामसिंहजी का तबादला मंडावा हो गया । उन्होंने अपना स्वभाव बना लिया था कि वे किसी की सेवा ना लेते बल्कि औरों की सेवा करने में आनंद महसूस करते । भोर रहते ही सुबह चार बजे उठ जाते और पुलिस थाने के सामने स्थित कूए से अपने ही लौटे और रस्सी से अपने नहाने के लिए पानी खींचते । स्नान के बाद खड़ाऊँ पहनकर मटके में पीने के लिए पानी भरकर साथ लाते । फिर पूजा करते और अपने लिए भोजन बनाते । सरकारी दौरे पर भी अपना सामान खुद उठाते, किसी सिपाही को हाथ ना लगाने देते, अपना सारा कार्य स्वयं करते । जो उन्हें नहीं जानते थे अक्सर उन्हें ब्राह्मण समझ बैठते ।

एक बार नवलगढ़ के एक कांस्टेबल रामजीलाल पुरोहित का, जिसने ठाकुर रामसिंहजी के बारे में सुना तो था लेकिन कभी देखा नहीं था, किसी डाक को लेकर मंडावा जाना हुआ। वो प्रात: ही मंडावा पुलिस थाने पहुँच गया और देखा कि एक पतला-दुबला, सीधा सा दिखने वाला व्यक्ति थाने के आंगन में झाड़ू लगा रहा है। उससे थानेदार साहब के बारे में पूछने पर उसने कहा कि आप भीतर आकर बैठो, थानेदार साहब अभी आ जाएँगे। थोड़े समय बाद उसने देखा कि वही व्यक्ति जो झाड़ू लगा रहा था, थानेदार की वर्दी पहन, आकर थानेदार की कुर्सी पर बैठ गया। रामजीलाल कल्पना भी नहीं कर सकता था कि यह व्यक्ति थानेदार रामसिंह होगा, इस थाने का इन्चार्ज, इतना सहज और विनम्र कि जिसके लिए कोई भी काम उसकी गरिमा के विरुद्ध नहीं था। वर्षों बाद रामजीलाल पुरोहित ने इस घटना का जिक्र करते हुए कहा कि ठाकुर रामसिंहजी को उसने पहली बार देखा था और उनके देवतुल्य चरित्र ने उसे बहुत प्रभावित किया।

सन 1941 में ही 'सुरजनिया' नामक एक डाकू ने शेखावाटी इलाके में आतंक मचाया हुआ था। वो बीकानेर रियासत में डाका डालता और शेखावाटी की लोहार्गल पर्वत श्रृंखला में आकर छिप जाता। किसी पुलिस अधिकारी में उसे पकड़ने की हिम्मत नहीं थी। ठाकुर रामसिंहजी मंडावा पुलिस थाने के थानाध्यक्ष थे जो झुंझुनू के नाजिम के तहत आता था। पुलिस महानिरीक्षक एफ. एस. यंग साहब के आदेश पर पुलिस का एक दल सुरजनिया डाकू को पकड़ने उसके गाँव गया लेकिन गाँव की स्त्रियों ने पुलिस दल पर परातों में भर-भरकर राख फेंकना शुरू कर दिया जिसके कारण पुलिस दल की आँखों से बचकर डाकू भाग गए। इस घटना से सुरजनिया की हिम्मत और भी बढ़ गयी और उसने खुले-आम ऐलान कर दिया कि-"मैं ऐसे ही थोड़ी हाथ आऊँगा, जब हाथ आऊँगा तो बहुत से पुलिस वाले मारे जाएँगे, कितनी ही स्त्रियाँ विधवा होंगी। बड़ी टोकरी में

डालकर ले जाएँगे (यानि जब तक बोटी-बोटी नहीं बिखर जाएगी तब तक पकड़ा नहीं जाऊँगा) ।"

एक दिन यंग साहब ने व्यंग किया-'रामसिंह ! क्या तुम अपने इलाके के एक डाकू को नहीं पकड़ सकते ?' ठाकुर रामसिंहजी जितने विनम्र और दयालु थे उतने ही कर्मठ, स्वाभिमानी और अत्याचार के विरुद्ध भी । यंग साहब के व्यंग ने उन्हें झकझोर दिया था और वे अब बस उचित मौके की प्रतीक्षा में थे । सुरजनिया यदाकदा अपने घर आया करता था । एक दिन देर रात को उसके आगमन की नवलगढ़ थाना में सूचना मिली । थानेदार रामसिंहजी आधी रात को थाना नवलगढ़ से मात्र तीन ऊँट और चार सिपाही साथ लेकर निकल पड़े ।

चाँद निकल आया था और ऊँट अपनी गति से सूने मार्ग पर बढ़ रहे थे । इतने में सामने से किसी खेजड़ी पर बैठी कोचर पक्षी की चिल्लाहट सुनाई दी जैसे पत्थर में करोत चल रही हो । एक सिपाही जो आयु में बड़ा था, शकुन विचार जानता था, कहने लगा, "थानेदार साहब ! कोचरी बोली खून बिखर सी" । यह सुनकर साथी सिपाहियों के दिलों में भय व्याप्त हो गया । थानेदार साहब शांत रहे फिर कहने लगे- "हिम्मत रखो गुरु भगवान मदद करेंगे ।" और हुआ भी वही, खून बिखरा, पर पुलिस वालों का बाल भी बाँका नहीं हुआ ।

डकैत घर में सो रहा था । संयोगवश पुलिस ने जिस दरवाजे पर पहली दस्तक दी, वो सुरजनिया का ही घर था । आहट पाकर घर में सो रहे डाकू बाहर निकलकर इधर-उधर भागने लगे । सुरजनिया भी बाहर निकला और पुआल (जानवरों के चारे) के ढेर के पास रखे डाले के नीचे जा छुपा । थानेदार रामसिंहजी भी सीधे उसी डाले के पास पहुँचे और वे डाले को छूते उससे पहले ही सुरजनिया ने डाले को उन पर ही उछालते हुए खिड़की से बाहर कूदने की चेष्टा की । तभी ठाकुर रामसिंहजी ने खिड़की पर रखे उसके हाथ पर डंडा दे मारा । सुरजनिया जोर से चिल्लाया-'अरे मैं थारी गाय हूँ, मत मारो, मन्हें मत मारो' और वहीं

अचेत होकर गिर पड़ा। ठाकुर रामसिंहजी ने सन 1970 में स्वयं एक बार बताया था कि अपनी पूरी पुलिस सेवा में यह पहली बार था कि उन्होंने किसीको डंडा मारा था। उसे पकड़कर जकड़कर ऊँट की पीठ पर बाँधकर तुरंत थाने ले जाया गया।

दूसरे दिन यह खबर चारों तरफ फैल गयी । लोग डाकू को देखने आए, उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था कि चार सिपाही उस डाकू को पकड़ लाए और किसी सिपाही को कोई चोट भी नहीं लगी । एक परिचित व्यक्ति से रहा नहीं गया उसने अवसर मिलने पर डाकू से पूछा-"तेरा नाम सुनकर तो पराक्रमी भी पंगु हो जाते थे । यह रामसिंह दुबला-पतला थानेदार और चार सिपाही तुझे पकड़ कर ले आये, कोई हाथापाई नहीं की, अच्छी नामर्दी दिखायी, ऐसा कौन सा वज्रपात हो गया था ?" डाकू उदास भाव से बोला-"क्या बताऊँ भाई, जैसे ही नींद से उठकर बाहर आया तो क्या देखता हूँ चप्पे-चप्पे पर सिपाही बन्दूक ताने खड़े हैं मैंने सोचा आज तो बीकानेर का सारा रिसाला चढ़ आया । इतने में मेरी पीठ पर भरपूर वार से लाठी पड़ी, मैं संभल ही नहीं पाया ।"

उक्त सफल अभियान की सूचना पाकर पुलिस महानिरीक्षक ने बधाई तार भेजा ।

आई. जी. पुलिस ने लिखा:

जयपोल नं. 882 दिनांक 12 मार्च, 1941,

"पुलिस अधीक्षक, शेखावाटी, झुंझनू,

प्रति-सब इन्सपेक्टर रामसिंह,

बधाई, आपको एवम् अधीनस्थ कर्मचारियों को ।

अधोहस्ताक्षरित आपके द्वारा भागे हुए मीणा और भोड़की के डाकुओं के खिलाफ 5/6 मार्च 1941 को की गई कार्यवाही की सराहना करता है ।

पुलिस महानिरीक्षक जयपुर स्टेट, जयपुर"

ठाकुर रामसिंहजी का कहना था कि यह उनके गुरु-भगवान की कृपा का कमाल था, जिन्होंने इस दुस्साहस भरे कार्य को उनके लिए फूल तोड़ने जैसा आसान कर दिया था। यह घटना 5/6 मार्च की थी। अगले दिन 7 मार्च को महात्मा श्री रघुवरदयालजी ने कानपुर से पत्र लिखा जो ठाकुर रामसिंहजी को 10 मार्च को मंडावा के पते पर प्राप्त हुआ। पत्र पढ़कर उन्होंने कहा-'अच्छा, तो यह मदद वहाँ से आई थी।' बाद में जब वे कानपुर उनके पास हाजिर हुए तो महात्मा श्री रघुवरदयालजी ने फरमाया-'पूरी तैयारी के बिना, ऐसा कदम उठाना ठीक नहीं है।'

शेखावाटी का मंडावा पुराना पुलिस स्टेशन है । ठाकुर रामसिंहजी जिन दिनों मंडावा में थानेदार थे, जयपुर में हकीकत राय, पुलिस अध्यक्ष के पद पर आसीन थे । बिसाऊ के किसी धनवान सेठ से एस. पी. हकीकत राय की पहचान थी । जब कभी उनका बिसाऊ जाना होता वे सेठ के यहाँ ठहरते थे । एक बार एस. पी. हकीकत राय ने ठाकुर रामसिंहजी से पूछा कि-"आपके इलाके में बिसाऊ है वहाँ अमुक सेठ जी से मिलने जाते हो या नहीं ? इस बार जाओ तो उनसे मिलने जाना ।" कुछ समय बाद एस. पी. साहब पुलिस थाना मंडावा का निरीक्षण करने आए और वही बात फिर दोहरायी । ठाकुर रामसिंहजी ने जवाब दिया- "साहब मुझे कौन सा काम है जो सेठजी से मिलने जाऊँ ? यदि बिना काम मिलने जाऊँगा तो सेठजी समझेंगे थानेदार मेरी लिहाज करता है । फिर मेरे जाने से लोग देखेंगे कि सेठजी के पास थानेदार आता है तो लोग सेठजी से ज्यादा डरेंगे । मेरे मिलने से जनसामान्य को नुकसान पहुँचेगा इससे तो ना मिलना ही अच्छा है ।" यह सुन एस. पी. साहब चुप हो गए ।

सन 1941 में उनके गुरु-भगवान महात्मा श्री रामचन्द्रजी महाराज के सुपुत्र महात्मा श्री जगमोहन नारायणजी ने एक पुस्तक के प्रकाशन के लिए महात्मा श्री रामचन्द्रजी महाराज द्वार उन्हें लिखे पत्रों को ठाकुर रामसिंहजी से मँगवाया था। ठाकुर रामसिंहजी ने उनके गुरु-भगवान द्वारा सन 1929 से सन 1931 के बीच उन्हें लिखे सभी 22 पत्र क्रमवार

उन पर पत्र संख्या लिखकर लिफ़ाफ़े सहित सावधानी के साथ संभालकर रखे हुए थे। महात्मा श्री जगमोहन नारायणजी का पत्र प्राप्त होने पर उन्होंने उन सभी पत्रों की उर्दू में अपनी हस्तलिपि में कॉपी बनाकर जिल्द चढ़वाकर अपने पास रख ली और मूल पत्र उनके पास फतेहगढ़ भेज दिए। बाद में वे सभी 22 पत्र महात्मा श्री जगमोहन नारायणजी ने उन्हें वापस लौटा दिए थे।

ठाकुर रामसिंहजी मंडावा में सन 1941 से सन 1943 तक रहे। उनके सदाचार, नैतिक व्यवहार और सत्यपरायणता की सुगंध पूरी जयपुर रियासत में फैल गयी थी। न्यायालय भी उस अलौकिक सुगंध से अछूते नहीं रहे। न्यायाधीश श्री शीतला प्रसाद बाजपेयी ठाकुर रामसिंहजी को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे। शेखावाटी के नाजिम इकराम हुसैन रामसिंहजी की सच्चाई और ईमानदारी से इतने प्रभावित थे कि जिस केस में रामसिंहजी ने चालान पेश कर दिया, उनकी बात को सच मानकर फैसला कर देते थे। उस समय में निजामत का नाजिम दिवानी और फौजदारी का बड़ा अधिकारी माना जाता था। झुंझुनु के नाजिम इकराम हुसैन ने एक चोर को केवल ठाकुर रामसिंहजी के बयान पर मुजरिम करार देकर सजा दे डाली। इस सजा के विरुद्ध जयपुर राज्य के चीफ कोर्ट में अपील हुई और सुनवायी प्रधान न्यायाधीश शीतलाप्रसाद बाजपेयी ने की। दोनों पक्षों को सुनने के बाद नाजिम के फैसले को बहाल रखा और सजा बरकरार रखी। बचाव पक्ष के वकील की दलील थी-"एक सब-इंसपेक्टर पुलिस के बयान को प्रमाण मानकर सजा देना उचित नहीं है। फौजदारी कानून में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है।" प्रधान न्यायाधीश ने इस दलील को यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि-"यह बयान ठाकुर रामसिंह जैसे सत्यनिष्ठ सब-इंस्पेक्टर का है। कानून बनानेवालों ने ऐसे थानेदार की कल्पना नहीं की होगी। इस थानेदार का बयान कानून के प्रावधनों से कहीं ज्यादा वजनदार है।" बहुत अर्से तक

यह बात पुलिस विभाग में ही नहीं बल्कि कानूनविदों में भी चर्चा का विषय रही।

दो-ढाई वर्ष मंडावा थाने पर रह ठाकुर रामसिंहजी का तबादला जनवरी 1944 में खाटू (खाटूश्याम) थाने में हो गया था। उन दिनों इस इलाके में साँसी-धाड़ेतियों (डाकुओं) का आतंक बहुत ज्यादा फैला था। अप्रेल 1944 में ईस्टर की छुट्टियों में ठाकुर रामसिंहजी गुरु-भगवान महात्मा रामचन्द्रजी महाराज के वार्षिक भण्डारे में सम्मिलित होने के लिये फतेहगढ़ गये थे। लौटते समय 'अचनेरा' स्टेशन पर गाड़ी बदलते समय उनका बिस्तर और कपड़े गुम हो गये, तलाश करने पर भी नहीं मिले। ठाकुर रामसिंहजी ने डी. टी. एस. बाँदीकूई को लिखा, 'अचनेरा से अजमेर तक मुमकिन है मेरा बिस्तर कहीं गुमशुदा माल में जमा हुआ हो, तलाश करके भिजवादें । खाटूश्याम जाने से पहले ठाकुर रामसिंहजी अपने गाँव मनोहरपुरा रुके और घर पर सबको फतेहगढ़ का प्रसाद देकर, खाटूश्याम चले गए।

खाटूश्याम थाने पर पहुँचते ही 29.4.1944 को खाटूश्याम के पास, गाँव जाती हुई एक 'बिराणी' (व्यापारी बनिये की पत्नि) को दो धाड़ेतियों (डाकुओं) ने लूट लिया। ठाकुर रामसिंहजी का कहना था कि गुरु भगवान की दया से चार-पाँच दिन में ही एक घाड़ेती को मय बन्दूक कारतूस व जेवर, वारदात कर भागते हुए खाटू थाना क्षेत्र के करीब ही सीकर इलाके में पकड़ लिया। उस वक्त उसके साथ दो धाडेती और थे, जो भाग गये, मगर दोनों के ऊँट पकड़ में आगये। मुलजिम की शनाख्त कार्यवाही पूरी कर जब ठाकुर रामसिंहजी, झुंझुनू (शेखावाटी एस.पी. कार्यालय एवम् निजामत कार्यालय) से खाटू लौटे, तो देखा थाने पर आपका बिस्तर और कपड़े रखे हुए थे।

ठाकुर रामसिंहजी को उनके गुरु-भगवान महात्मा रामचन्द्रजी महाराज से मिलाने वाले श्री कृष्ण चन्द्र भार्गव थे। श्री कृष्ण चन्द्र भार्गव के दामाद श्री पुरुषोत्तम भार्गव उन दिनों रींगस रेलवे स्टेशन पर मालबाबू

के पद पर तैनात थे। ठाकुर रामसिंहजी को यदि उनसे या किसी और से मिलना होता तो वे खाटू से पहले 'बधाल' आते जहाँ फुलेरा से रिवाड़ी जाने वाली ट्रेन 12 बजे पहुँचती थी और वे इस ट्रेन से रींगस 12.30 बजे पहुँच जाते थे। रींगस से वे सीकर से जयपुर जाने वाली ट्रेन पकड़ लेते थे जो 15.30 बजे छूटती थी। इस प्रकार उन्हें रींगस में तीन घण्टे का समय मिल जाता था जिसमें वे जिससे मिलना होता उससे मिल लेते। यदि किसी से मिलना ना होता तो वे खाटू से सीधे रींगस चले जाते। ये रेलगाड़ियाँ अब भी इसी समय चल रही हैं। खाटू से रींगस और बधाल दोनों करीब 10-15 किलोमीटर दूर हैं लेकिन बधाल के खाटूश्याम का ब्रांच-पोस्ट ऑफिस होने के कारण ठाकुर रामसिंहजी को अक्सर बधाल जाना होता था।

इस समय तक ठाकुर रामसिंहजी को कोई महात्मा थानेदार और कोई सन्त थानेदार कहने लगा था। उनकी ईमानदारी व आदर्शवादिता की बातें समाज में चर्चा का विषय थीं । इन्हीं दिनों एक बार ठाकुर रामसिंहजी श्री पुरुषोत्तम भार्गव के साथ रींगस रेलवे स्टेशन पर जयपुर जाने वाली ट्रेन का इन्तजार कर रहे थे। रींगस स्टेशन पर आपने अपने शुतुरसवार (ऊँटवान) से जयपुर के दो टिकट लाने को कहा । शुतुरसवार चौंका कि दूसरा टिकट क्यों मँगाया है ? आपने एक टिकट अपनी जेब में रखा और दूसरे को वहीं फाड़कर फेंक दिया । श्री पुरुषोत्तम भार्गव के पूछने पर वे मुस्कुराए और कहने लगे, "रेलवे का पैसा रेलवे को चुका दिया।"

हुआ यह था कि पिछले दिनों वे जयपुर से रींगस आ रहे थे । जयपुर रेलवे प्लेटफार्म पर पहुँचे ही थे कि रेलगाड़ी ने सीटी दे दी। उन्होंने जल्दी से गाड़ी तो पकड़ ली, पर टिकट नहीं खरीद पाए । चोमू-सामोद रेलवे स्टेशन पर वे टी. टी. से मिले और कहा कि मैं जल्दी में जयपुर से टिकट नहीं ले पाया । आप जयपुर से रींगस तक का टिकट बना दें और चाहे तो कायदे से डबल चार्ज कर लें । टी. टी. बोला आप गाड़ी में बैठिए सब हो

जाएगा । जब रींगस गाड़ी आ पहुँची तो वे फिर टी. टी. से मिले । टी. टी. ठाकुर रामसिंहजी को भली प्रकार जानता था और एक आदर्श पुरुष के रूप में उनका आदर करता था । बहुत बार कहने पर भी वह टिकट बनाने को राजी नहीं हुआ । उसने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि ठाकुर साहब आप मुझे माफ करें । आप पधारिए । आखिर ठाकुर रामसिंहजी खाटूश्याम चले आए । इस प्रकार उन पर यह रेलवे का कर्ज था जिसे उन्होंने अतिरिक्त टिकट खरीद कर यह कहते चुका दिया था कि 'रेलवे का मेरे ऊपर कर्ज था, दो टिकट खरीदकर रेलवे का पैसा रेलवे तक पहुँचा दिया जो मेरा फर्ज है ।'

4
सेवानिवृति के उपरान्त

सन 1944 में जनवरी से लेकर सितम्बर तक ठाकुर रामसिंहजी खाटूश्याम पुलिस स्टेशन के इन्चार्ज थे और वहीं से उन्होंने 46 वर्ष की उम्र में पुलिस विभाग से इस्तीफ़ा देकर अपने कार्यकाल से लगभग दस वर्ष पहले ही सेवानिवृति ले ली। उन्होंने ऐसा क्यों किया इस बारे में श्री द्वाराकानाथजी पुरोहित जो सर गोपीनाथ पुरोहित के दत्तक पुत्र और पुलिस विभाग में उपमहानिरीक्षक थे, ने बताया कि सन 1944 तक पुलिस महानिरीक्षक यंग साहब सेवानिवृत हो चुके थे और उनका स्थान श्री विनयानन्द पाठक ने ले लिया था। उन्हीं दिनों खाटू में किसी जमीन विवाद में खाटू ठिकाने के कर्मचारियों ने एक किसान परिवार के साथ उसके खेत में जाकर मार-पीट कर डाली । थाने में रिपोर्ट होने पर, थानेदार ठाकुर रामसिंहजी ने स्वयं घटना स्थल पर जाकर तफतीश शुरू कर दी। खाटू ठिकाने के मुसाहब (कामदार) ने आकर, खाटू ठिकाने के पूर्व ठाकुर हरीसिंहजी लाडखानी जो जयपुर रियासत के समय जयपुर रियासत के सेनापति और पुलिस विभाग के महानिरीक्षक थे और रामसिंहजी के पिता ठाकुर मंगलसिंहजी के घनिष्ट सम्बन्धों का हवाला देते हुए मामले को रफा-दफा करने हेतु दबाव डाला । थानेदार ठाकुर रामसिंहजी ने मुसाहब की सारी बातें सुन, केवल इतना कहा-"कामदारजी ! आप निश्चिन्त रहें, मैं अपना फर्ज पूरी ईमानदारी से निभा रहा हूँ।"

थानेदार ठाकुर रामसिंहजी द्वारा भेजी गई प्रथम जाँच रिपोर्ट पढ़कर एस. पी. साहब ने उनसे कहा, आप यह जाँच रिपोर्ट तीन दिन अपने पास रख कर विचार करें, पाठक साहब ने खाटू ठिकाने के पक्ष में, रिपोर्ट बनाने को कहा है। तीन दिन तफ्तीश फाईल अपने पास रखने के बाद ठाकुर रामसिंहजी ने वही पूर्व लिखित रिपोर्ट एस.पी. साहब को पेश करते हुए कहा कि मैंने पूरी रिपोर्ट में सब कुछ सत्य लिखा है, अब झूठी रिपोर्ट

नहीं बना सकता । जब रिपोर्ट आई. जी. पी. पाठक साहब के सामने पेश हुई तो उन्होंने थानेदार रामसिंहजी को बुलाकर उन पर अपनी रिपोर्ट बदलने के लिए जोर डाला । ठाकुर रामसिंहजी द्वारा दृढ़ता से रिपोर्ट बदलने से इंकार करने पाठक साहब ने कहा अगर रिपोर्ट नहीं बदल सकते तो अपना इस्तीफ़ा दे दो, कोई और थानेदार आपकी जगह रिपोर्ट दे देगा। ज़रा भी विचलित हुए बिना ठाकुर रामसिंहजी ने वहीँ पर अपना त्यागपत्र लिखकर पाठक साहब को सौंप दिया और उन्होंने उसे तुरंत मंजूर भी कर लिया।

उस समय तक ठाकुर रामसिंहजी की कोई भी संतान कमाने योग्य नहीं हुई थी और उनके पिता ठाकुर मंगलसिंहजी भी देहत्याग कर चुके थे और वे स्वयं भी मात्र 46 वर्ष के थे। सब कुछ अपने गुरु-भाग्वान की मर्जी पर छोड़ और अपने पिता से किए वायदे की मर्यादा रखते हुए कि वे ताउम्र ईमानदारी से अपना कर्त्तव्य पालन करेंगे, ठाकुर रामसिंहजी ने इसे ईश्वर-प्रदत्त अवसर जान, अपना समय अपने गुरुदेव के मिशन को आगे बढाने में लगा दिया।

आरम्भ के वर्षों में ठाकुर रामसिंहजी ने जिन सत्संगियों को अपने पास बैठाया उनमें दुर्गाराम भी थे। दुर्गारामजी ने श्री कुशलसिंह राजावत की सेवा की थी और वे ठाकुर रामसिंहजी से बहुत प्रेम करते थे । जब भी समय मिलता सत्संग में आते थे । वे मनोहरपुरा आते रहते थे । पत्नी की मृत्यु हो जाने के कारण वे काफी दुखी रहते थे । उनका किसी काम में मन नहीं लगता था । एक दिन उन्होंने यह बात ठाकुर रामसिंहजी से कही । तब से उन्हें पत्नी की याद ने नहीं सताया। मन प्रसन्न रहने लगा । उन्हीं दिनों एक बार वह मनोहरपुरा आए । सुबह जब वापस जाने लगे तो माताजी (ठाकुर रामसिंहजी की पत्नी) उन्हें दस रुपये देने लगीं । यह देख ठाकुर रामसिंहजी ने फरमाया-"आप तो इन्हें सुखी गृहस्थ जीवन का आशीर्वाद दें ।" कुछ ही दिनों में दुर्गाराम का पुनः विवाह हो गया ।

दुर्गारामजी को पुस्तकें पढ़ने का बहुत शौक था । जब भी समय मिलता पुस्तक पढ़ने में लग जाते । विशेष रूप से वे रामचरितमानस का पाठ किया करते थे । इसे वे सबसे बड़ा धार्मिक कार्य मानते थे । साधना पथ पर वे आगे बढ़ना चाहते थे, किंतु निरंतर साधनारत रहने का राजमार्ग नहीं अपना पाए । वे पुस्तकों में ही अटक कर रह गए । दुर्गाराम की इस दशा को देखकर एक बार ठाकुर रामसिंहजी ने कहा दुर्गाराम जिन्दगी भर पुस्तकें ही पढ़ते रहोगे या आगे की भी सोचोगे ? दुर्गाराम ने हाथ जोड़कर कहा कि मैं चाहता तो बहुत हूँ, पर साधना में मेरा मन नहीं लगता । मैं तो रामायण का पाठ किया करता हूँ। इस पर ठाकुर रामसिंहजी ने कहा-'रामायण का पाठ करना तो अच्छा है, पर इसके साथ-साथ दिल की किताब भी पढ़ा करो ।' दुर्गाराम ने पूछा यह कैसे पढ़ूँ ? ठाकुर रामसिंहजी ने फरमाया-"अपने दिल पर निगाह रखो । मन को शाह-राह पर चलना सिखाओ। भाई, भगवान का सहारा ले लो । हरदम उसकी याद में मस्त रहो । रास्ता अपने आप मिल जाएगा।" दुर्गाराम ने बताया कि इसके बाद मुझपर ऐसी कृपा हुई कि अपने आप ही किताबों का शौक खत्म हो गया । उनका मन ध्यान-भजन की और लग गया ।

जयपुर महाराज ने ठाकुर रामसिंहजी को सेवानिवृति के बाद खातीपुरा फार्म पर देखभाल के लिए रख लिया था । वे करीब दो साल खातीपुरा फार्म पर रहे । दरबार (जयपुर महाराज) की ओर से पूरी सुविधा थी, किन्तु वे स्वयं खाना बनाकर खाते थे । फार्म पर उनके पास अनेक नौकर थे पर किसी से अपना कोई काम नहीं करवाते थे । एक दिन ठाकुर रामसिंहजी जब बाज़ार से गुजर रहे थे, बाजार में दुर्गाराम से भेंट हो गयी । दुर्गाराम किसी काम से जयपुर आये थे । बाजार में उनसे मुलाकात होने पर प्रसन्न हुए । ठाकुर रामसिंहजी ने पूछा, 'महलॉ से कब आए ? दुर्गाराम ने बताया आज सुबह ही आ रहा हूँ । इस पर उन्होंने पूछा-"तब भोजन कहाँ किया ?" दुर्गाराम ने कहा में तो सुबह नाश्ता करके चला था

अब गाँव जाकर भोजन करूँगा । इस पर उन्होंने कहा-"तब आज हमारे साथ चलो आपको अमृत भोजन कराएंगे ।“

दोनों शाम को खातीपुरा पहुँचे । पहले आन्तरिक पूजा (ध्यान) चली फिर बातचीत होती रही । देर रात को ठाकुर रामसिंहजी ने भोजन बनाना शुरू किया । तेज मसाले डालकर महकती हुई सब्जी बनाई फिर रोटियाँ बनाई । रोटियों पर खूब घी लगाया । ठाकुर रामसिंहजी हर काम बड़े धीरज से करते थे । दुर्गारामजी ने मदद करनी चाही पर उन्होंने मना कर दिया । भोजन तैयार होने तक काफी रात हो गई । दुर्गारामजी को पहले भूख लग रही थी अब नींद भी आने लगी । दुर्गाराम अपने संस्मरण में लिखते हैं कि मैं बड़ी मुश्किल से नींद रोकता रहा । वास्तव में यह नींद नहीं थी, गुरु महाराज की कृपा की धार बड़े बेग से बह रही थी । फैज उतर रहा था । जब नींद ज्यादा सताने लगी तो ठाकुर रामसिंहजी कहने लगे, "देखो दुर्गाराम अमृत भोजन बन रहा है ।” दुर्गारामजी ने बड़ी कठिनाई से आँखे खोलकर हाँ में हाँ मिलायी । तब उन्होंने मुस्करा कर कहा जानते हो अमृत भोजन कैसा होता है ? दुर्गाराम ने कहा-"साहब मैं नहीं जानता ।" ठाकुर रामसिंहजी ने कहा-"अरे भाई जब भूख खूब लग रही हो तब जो कुछ मिल जाए वही अमृत के समान लगता है । यही अमृत भोजन की पहचान है ।" भोजन बनाने के बाद उन्होंने सारा सामान अंदर रखा । पसीना सुखाया । फिर अन्दर से आम लाए, जिन्हें ठंडे पानी में भिगोया । तब तक आधी रात बीत चुकी थी । अमृत भोजन बन चुका था । अब आपने भोजन परोसा । पहले दुर्गाराम को फिर अपने लिए । फिर भोजन करने बैठे । भोजन करने के बाद अपने निकट अपने हाथ से उनके लिये बिस्तर लगाया । बिस्तर पर बैठकर मधुर आवाज में एक भजन सुनाया और बोले-"भोजन को भजन में बदल लो और नींद को याद में ।”

दुर्गारामजी एक जगह लिखते हैं-"मैं जब भी जयपुर जाता तो यह चाहता कि गुरु महाराज के दर्शन बाजार में ही हो जावें क्योंकि सिटी पैलेस जाने में देर लगती थी । यह विचार रहता और आपके दर्शन बाजार

में ही हो जाते । एक दो बार जिधर मुझे काम होता उधर ही आप सामने से पधारते हुए मिल जाते । यह मेरी आदत हो गयी थी पर इस बात को मैं समझ ही नहीं पाया । एक बार गुरु महाराज ने बाजार में ही फरमाया कि हम तो उस आदमी से खुश होते हैं जिसके एक पैर होते हुये भी मैं जहाँ जाता हूँ, वहाँ पहुँच जाता है । आगे फरमाया कि उसे हमारे दर्शन का फल यह मिला कि पेड़ से गिरने पर पैर काट दिया गया ।" आपका यह फरमाना था कि मुझे धक्का लगा कि मेरे तो दोनों पैर सलामत हैं और मैं आज तक गलती करता रहा और आप ना जाने कहाँ से पधार कर दर्शन देते रहे ।

महात्मा श्री कृष्ण कुमार गुप्ता, महात्मा डॉ. चन्द्र गुप्ता के ज्येष्ठ सुपुत्र भी इसी प्रकार के अनुभव के बारे में कहते थे। उन दिनों वे युवा ही थे और बाबा हरिश्चन्द्र मार्ग पर एक तिमंजिले मकान में रहते थे । मकान में नीचे एक चबूतरा और मुख्य दरवाजे के दोनों तरफ गोखे (बैठने के लिए स्थान) बने थे । वे कभी-कभी वहाँ बैठकर ठाकुर रामसिंहजी को यादकर उनके दर्शन की इच्छा करते और कितनी दफा पाते कि ठाकुर रामसिंहजी साहब कृपाकर उन्हें दर्शन देने चले आ रहे हैं।

ठाकुर रामसिंहजी जिस आदमी की बात दुर्गारामजी को बता रहे थे, वह था बागरू का भोलू राईका। बागरू और महलाँ दोनों गाँव पास-पास हैं । ऊँट चराने वाला भोलू राईका बागरू में और श्री कुशलसिंह राजावत महलाँ में रहा करते थे । समय पाकर दोनों सत्संगी ठाकुर रामसिंहजी के सम्पर्क में आ गए और एक-दूसरे से जुड़ गए । अध्यात्म साधना ऐसी पूँजी है जो जन्म-जन्मान्तर तक साथ देती है । पूर्व जन्म की संचित पूँजी लेकर जब कोई जन्म लेता है तो उसे अपने आप ही फिर सुयोग मिल जाता है । भोलू राईका ऐसा ही एक भाग्यवान व्यक्ति था । वह देहाती और अनपढ़ तो था किंतु ब्रह्म साधना में लगा हुआ था । उसने डिप्टी कुशलसिंहजी के बारे में सुना तो उनसे मिलने महलाँ पहुँचा । दोनों एक दूसरे की तरफ आकर्षित हुए । कुशलसिंहजी के माध्यम से भोलू को

ठाकुर रामसिंहजी का परिचय प्राप्त हुआ । वह उनके दर्शन के लिए उतावला हो गया । ठाकुर रामसिंहजी डिप्टी कुशलसिंहजी को इतना प्यार करते थे कि जब कभी कुशलसिंहजी नहीं आ पाते थे तो उनसे मिलने ठाकुर रामसिंहजी स्वयं महलाँ पहुँच जाते थे । संयोगवश एक बार ठाकुर रामसिंहजी महलाँ पहुँचे । डिप्टी कुशलसिंहजी ने रामसिंहजी को भोलू राईका के बारे में बताया । समाचार मिलते ही भोल राईका आ पहुँचा । देखते ही ठाकुर रामसिंहजी ने भोलू को पहचान लिया और अपना लिया । भोलू को जिसकी तलाश थी, उन्हें सहज ही पा लिया और अपना जीवन उनके श्रीचरणों में अर्पित कर दिया । उन्हें गुरु मान लिया । भोलू ठाकुर रामसिंहजी से मिलने मनोहरापुरा आया करता था । एक बार भोलू राईका पेड़ पर से गिर गया । उसका एक पैर जाता रहा । उसे जयपुर के अस्पताल में भर्ती कराया गया । पैर का घाव ठीक नहीं हो रहा था । कुशलसिंहजी उसकी देखभाल के लिए स्वयं अस्पताल में रहे । पूरा पैसा लगाया पर बात नहीं बनी । आखिर उसका एक पैर काट दिया गया । जब ठीक हो गया तो वह एक पैर से ही चलकर ठाकुर रामसिंहजी से मिलने आया करता था ।

ठाकुर रामसिंहजी त्रिकालदर्शी संत थे । श्री कृष्ण कुमार गुप्ता एक बार ठाकुर रामसिंहजी के दर्शन करने उनके गाँव मनोहरपुरा गए हुए थे । शाम होने पर उन्होंने ठाकुर रामसिंहजी से लौटने की इजाजत चाही, लेकिन ठाकुर रामसिंहजी ने उन्हें कुछ और देर रुकने के लिए कहा । कुछ देर बाद फिर से आज्ञा माँगने पर भी उन्होंने उन्हें कुछ और देर रुकने के लिए कहा । मनोहरपुरा कृष्ण कुमारजी के घर से करीब 11 किलोमीटर दूर है और क्योंकि उन्हें साइकिल पर आना था और अँधेरा घिरने लगा था, कृष्ण कुमारजी ने तीसरी बार ठाकुर रामसिंहजी से इजाजत चाही । ठाकुर रामसिंहजी ने कहा-'रुक जाते तो अच्छा था ।' श्री कृष्ण कुमार गुप्ता घर के लिए चल दिए लेकिन रास्ते में उनके होंठ पर एक ततैये ने काट लिया और उनका चेहरा काफी सूज गया । अगले दिन ठाकुर

रामसिंहजी सिटी पैलेस आगए थे, श्री कृष्ण कुमार गुप्ता उनके दर्शन के लिए वहीँ चले गए और जो घटा था बताने पर ठाकुर रामसिंहजी बोले-'भगवान का शुक्र है, सब ठीक है।' श्री कृष्ण कुमार बोले-'महाराज ! मुझे ततैये ने काट लिया, मेरा चेहरा सूज रहा है और आप कह रहे हैं सब ठीक है।' ठाकुर रामसिंहजी बोले-"किशनबाबु ! किसे मालूम किसी ट्रक से टक्कर हो जाती, अंग-भंग हो जाता। गुरु-भगवान का शुक्र है।' उन्हें तब समझ आया कि कैसे उन्होंने तलवार की चोट को काँटे की चुभन में बदल दिया था।

इसी तरह जब एक बार श्री कृष्ण कुमार ठाकुर रामसिंहजी के पास सिटी पैलेस में हाजिर थे, नीचे खातीखाना से किसी खाती की जोर-जोर से खाँसने की आवाज आई। श्री कृष्ण कुमार ने ठाकुर रामसिंहजी से निवेदन किया तो वे बोले-'हाँ, आदमी तो अच्छा था।' उनका फरमाना था-'हाँ, आदमी तो अच्छा था' और दो-तीन दिन बाद उस खाती का स्वर्गवास हो गया।

यह ठाकुर रामसिंहजी के स्वेच्छिक सेवानिवृति लेने के कुछ समय बाद सन 1944 की ही बात है, जब वे मनोहरपुरा में रहने लगे थे। उनके ज्येष्ठ सुपुत्र श्री हरीसिंहजी का दीपावली के कुछ दिन पहले ही झालाना रोड पर गंभीर एक्सीडेंट हो गया। माथे के बाँयी और गहरा घाव हो गया जिससे खून का बहना रुक नहीं रहा था और वे बेहोश होकर गिर गए थे। रात का समय था और वक्त बीतने के साथ उनके बचने की आशा भी धूमिल होती जा रही थी। सब लोग घबरा रहे थे और उनकी माताजी का बुरा हाल था। लेकिन ठाकुर रामसिंहजी बोले-"गुरु-भगवान पर विश्वास रखो। उनकी कृपा से हरिनारायण (ठाकुर रामसिंहजी हरीसिंहजी को इसी नाम से पुकारा करते थे) जल्दी ठीक हो जाएगा।" हुआ भी ऐसा ही, श्री हरीसिंहजी ठीक होकर घर आगए। ठाकुर रामसिंहजी ने तब 14 वर्ष पुराना वह पत्र सबको दिखलाया जिसमें महात्मा श्री रामचन्द्रजी ने मोटे अक्षरों में हरीसिंहजी को दीर्घायु होने का आशीर्वाद लिख भेजा था और

बोले यह उन्हीं के आशीर्वाद का कृपा-प्रसाद है। महात्मा श्री रामचन्द्रजी महाराज सन 1930 में मनोहरपुरा पधारे थे और वहाँ से उनके अजमेर जाने के बाद श्री हरीसिंहजी, जो तब बहुत छोटे 6-7 वर्ष के ही थे, उन्हें पत्र लिखा था-"श्रीरामजी ! ॐ ! आपकी सेवा में आपके पोते जगतसिंह की दण्डवत मालूम होवे । आपका दास, जगतसिंह ।" महात्मा श्री रामचन्द्रजी महाराज ने इसी पत्र के पीछे अपना आशीर्वाद लिख भेजा था और ठाकुर रामसिंहजी ने यह पत्र भी सहेजकर रखा हुआ था। जहाँ वह गहरा घाव हुआ था, हरीसिंहजी का माथा उस जगह पर चपटा होगया था और शेष जीवन वैसा ही रहा।

यह भी उनके गुरु-भगवान की कृपा का फल था कि ठाकुर रामसिंहजी की सेवानिवृति के चार महीने बाद ही श्री हरीसिंहजी की नौकरी लग गयी थी और वे 20 वर्ष की उम्र में ही जयपुर रियासत के मुलाजिम हो गए थे। महात्मा श्री रामचन्द्रजी महाराज के आशर्वाद ने ताउम्र श्री हरीसिंहजी की रक्षा की। उनके साथ चार बार गम्भीर दुर्घटनाएँ घटीं जिनमें से दो में वे चलते हुए पंखे की पंखुड़ी के उन पर गिरने से बाल-बाल बचे। दोनों ही दफा पंखे की पंखुड़ी सीधे उन्हीं की तरफ गिरी और उस कुर्सी को चीरती हुई उस में धँस गयी जिस पर वे बैठे थे लेकिन दुर्घटना से ठीक पहले उस पर से उठ गए थे।

सेवानिवृति लेने के पहले ही, अर्थात सन 1944 से पहले ही, कुछ काश्तकारों ने उनकी जमीनों के बड़े भाग पर नाजायज कब्जा कर लिया। वे लोग समझाने-बुझाने से कब्जा छोड़ने को तैयार नहीं हुए तो कुछ प्रभावशाली इष्ट मित्रों और परिचितों ने, जमीनों से जोर जबरदस्ती कब्जा खाली करवाने की पेशकश की, लेकिन ठाकुर रामसिंहजी ने मना कर दिया और सत्य और इन्साफ का मार्ग चुना। उन्होंने ईश्वरीय इच्छा को सर्वोपरि मान, काश्तकारों के विरुद्ध अपनी जमीन वापस लेने के लिए न्यायालय में मुकदमा दायर कर दिया। लेकिन मुकदमा दायर कर देने के बावजूद, ठाकुर रामसिंहजी ने विरोधियों के साथ पूर्ववत्

सद्व्यवहार बनाये रखा, किसीके प्रति हृदय में वैमनस्य ना रख पेशी पर जाते समय विरोधी पक्ष वालों के भूल जान पर, समय-समय पर उन्हें याद दिलाते रहते कि आज पेशी पर जाना है । मुकदमा दायर किया तब कचहरियाँ (कलेक्ट्रेट) जलेबचौक में ही थी । महात्मा श्री चतुर्भुज सहायजी (ठाकुर रामसिंहजी के गुरुभाई) के शिष्य श्री नारायणदास मेहता एस. डी. एम. पद पर कार्यरत थे। मुकदमें की प्रारम्भिक जाँच के सिलसिले में, तत्कालीन मजिस्ट्रेट औंकारसिंहजी बाबरा भी एक बार गाँव मनोहरपुरा आए थे।

ठाकुर रामसिंहजी की 1934 में साँभर तैनाती के दौरान श्री मनमोहन माथुर उनके सम्पर्क में आगये थे, जो उन दिनों कलेक्ट्रेट में हैड अकाउन्टेंट पद पर कार्यरत थे, । मुकदमे के सिलसिले में ठाकुर रामसिंहजी को जलेबचौक कलेक्ट्रेट जाना ही होता था सो मनमोहनजी उनके और नज़दीक आगये । वर्षों बाद श्री मनमोहन माथुर ने इस मुकदमें से सम्बन्धित यह घटना सुनाई। उन दिनों कार्यरत एस.डी.ओ. को ठाकुर रामसिंहजी के विरोधियों ने और कुछ राजनीति करने वालों ने बहका रखा था । बड़े अफसर मनमोहनजी की बात मान लेते थे सो उन्होंने एस.डी.ओ. साहब से कहा कि ठाकुर रामसिंहजी तो झूठ बोलना! जानते ही नहीं, हमेशा सच्ची बात कहते हैं, और मुकदमे में उनका पक्ष सच्चा है । लेकिन एस.डी.ओ. साहब कहने लगे-'ये बात तो ठीक है, लेकिन मुझे तो टीकारामजी पालीवाल ने, एस.डी.ओ. बनाया है, मैं उनकी बात रखते हुए, यह काम कैसे करूँ ?' श्री मनमोहन माथुरजी के शब्दों में- "मैंने फिर कहा-'देखो साहब ! आप न्याय की कुर्सी पर बैठे हो, आपको तो, जो सच है वही करना चाहिए ।' केस पेश हुआ, उसमें तारीख पड़ गई लेकिन टीकारामजी तो धरे रह गये और एस.डी.ओ. साहब वापस तहसीलदार बना दिये गये। उस समय महाराज (ठाकुर रामसिंहजी) ने कहा- 'देख लो! टीकारामजी तो वहीं बैठे हैं, लेकिन वो एस.डी.ओ. साहब ? न्याय की कुर्सी झूठ का साथ कब तक दे ?" मनमोहनजी ने आगे

बताया- महाराज की मुझ पर शुरू से, साँभर से ही कृपा रही है, तबसे मैं महाराज के बताये उसूलों पर चलता आ रहा हूँ । उन्हीं की कृपा से मैं तहसील का नौसिंदा (जमा-खर्च नवीस) होकर, जयपुर कलेक्ट्रेट में, 15 वर्ष तक चीफ अकाउन्टेन्ट रहा। मेरे समय में 8-10 कलेक्टर आये, सभी मुझ पर पूरा भरोसा रखते थे, बल्कि उन अफसरों ने मुझे एडवांस ग्रेड इन्क्रिमेन्ट भी दिलवाये । यह सब महाराज की कृपा थी और जब राजस्थान बना, तो पहले के अकाउन्टेंटों के इम्तिहान लिये गये। मैंने महाराज से आकर कहा मेरे इम्तिहान का क्या होगा ? आपने फरमाया, तुम्हें इम्तिहान देने की जरूरत ही नहीं रहेगी । महाराज की ऐसी कृपा हुई कि मेरे लिये गवर्नमेन्ट का स्पेशल आर्डर बना-'इनको इम्तिहान से एग्जेम्ट (मुक्त) किया जाय ।'

लगभग उन्हीं दिनों की यह घटना है कि मनोहरपुरा गाँव के पास ढ़ाणी में किसी खेतीहर मजदूर का बेटा जिसका नाम रेखा रैगर था, खेत में काम करते समय भूत बाधा से ग्रस्त हो गया। घर वालों ने सभी तरह का इलाज करवाया लेकिन कोई लाभ ना हुआ। थक हारकर वे लोग घर बैठ गये । तब तक ठाकुर रामसिंहजी को लोग थानेदार कम और सन्त महात्मा के रूप में अधिक जानने लगे थे । किसी ने उन्हें रेखा रैगर को ठाकुर रामसिंहजी के पास ले जाने की राय दी तो घरवाले उसे लेकर ठाकुर रामसिंहजी के पास आये, और उनसे 'भूत' निकालने के लिये निवेदन किया । ठाकुर रामसिंहजी ने यह कहते कि मैं तो भूत निकालना नहीं जानता, उन्हें उसे किसी स्याणे भोपे के पास ले जाने के लिए कहा । परिजनों में एक बुजुर्ग, जिन्हें ठाकुर रामसिंहजी की भक्ति-शक्ति का आभास था, कहने लगा कि हमने सब कराकर देख लिया और सब तरफ से निराश होकर आपके द्वार पर आए हैं, क्या यहाँ से भी खाली जाना पड़ेगा ? अधिक आग्रह देख ठाकुर रामसिंहजी ने उस लड़के की ओर देख, 'मैं तो इतना ही जानता हूँ' कहते हुए उसके चाँटा मारने के लिये हाथ उठाया ही था कि उसका सिर ठाकुर रामसिंहजी के सामने झुकता चला

गया। वो कुछ देर अचेत सा रहा, फिर हमेशा के लिये भूत बाधा से मुक्त हो गया । कालान्तर में ठाकुर रामसिंहजी के महाप्रयाण करने के बाद उनकी समाधि का निर्माण कार्य इसी युवक के हाथ से प्रारम्भ हुआ।

ठाकुर रामसिंहजी की गाथा में उनकी सुपुत्री बाई दयाल कँवर एक विशेष स्थान रखती है। मनोहरपुरा में महात्मा रामचन्द्रजी महाराज ने ठाकुर रामसिंहजी के पूरे परिवार पर अपनी कृपा-वर्षा की पर उनकी पुत्री बाई दयाल कँवर जो तब मात्र साल-डेढ़ साल की थीं, उनकी विशेष स्नेहपात्र बनीं। वह अपने पत्रों में उन्हें याद करते। बाई दयाल कँवर भी हमेशा जनाब लाला जी महाराज को याद करतीं। बाई दयाल कँवर अपने पिता को 'काकोसा' कहतीं। एक बार पास के गाँव में एक स्त्री सती हो गयी । बाई दयाल कुँवर ने अपने पिता से सती स्थल पर जाने की अनुमति माँगी । ठाकुर रामसिंहजी ने कहा-"बाई सा आप वहाँ जाकर क्या करेंगी, आप तो स्वयं सती हैं।" कौन जानता था यह शब्द भविष्य में सच होंगे ? फतहगढ़ में जिस दिन लाला जी महाराज ने अपना शरीर छोड़ा उस दिन दयाल कँवर दिन भर रोती रही। जब पूछा गया कि क्यों रो रही हो तो बोली-"पता नहीं क्यों आज गुरु महाराज की बहुत याद आ रही है बार-बार रोना आ रहा है मुझे उनके पास ले चलो।" तीन-चार दिन बाद फतेहगढ़ से पत्र आया कि महात्मा रामचन्द्र जी ने उसी दिन शरीर त्याग दिया था जिस दिन दयाल कँवर का रोना रुकता नहीं था।

दयाल कँवर अलौकिक ज्ञान से सम्पन्न विलक्षण बालिका थी जिसने अपने पूर्व संस्कारों से ही ठाकुर रामसिंह जैसे पिता की पुत्री होकर जन्म लिया । वह अन्तर्मुखी थी । उन्हें आस-पास भविष्य में होने वाली घटनाओं का आभास हो जाता । जब ठाकुर रामसिंहजी शेखावाटी में थानेदार थे एक बार घर आए । जब जाने लगे तो दयाल कँवर ने सहज भाव से कहा-"काकोसा, आपके मुलजिम तो आज सब जयपुर में ही मिल जाएँगे।" ठाकुर रामसिंहजी ने बालिका की बात पर ध्यान नहीं दिया,

प्रस्थान किया और जयपुर आकर देखा कि जिन अपराधियों की तलाश है वह सब एक जगह खड़े हैं ।

एक दिन ठाकुर रामसिंहजी की कचहरी में पेशी थी वह जा रहे थे । दयाल कँवर ने कहा-"काकोसा आज आपकी पेशी तो नहीं होगी ।" ठाकुर साहब ने इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया । वर्षा में भीग कर भी वह अदालत पहुँचे, पर उस दिन जज साहब ने कोई भी पेशी करने से मना कर दिया ।

दयाल कँवर जब विवाह योग्य हुई तो उनकी माता को उनके विवाह की चिन्ता सताने लगी, किंतु पिता सदैव यही कहते कि भगवान ने इसका वर तो तभी तय कर दिया जब इसका जन्म हुआ था, देखना गुरु कृपा से दयाल का वर घर बैठे मिल जाएगा । दयाल कँवर के भावी पति भवानी सिंह तब जयपुर में चांदपोल के पास खूड़ हाउस में रहते थे उन्हें पता था कि ठाकुर रामसिंहजी की पुत्री विवाह योग्य है ।उन्होंने ठाकुर रामसिंहजी को पत्र लिखा-"मैं बचपन से ही आपके परिवार से प्रभावित हूँ । मेरे माता-पिता नहीं है जिनसे मैं अपनी इच्छा व्यक्त करता । आपको ही पिता मानकर पत्र लिख रहा हूँ । मैं उत्तम कुल की कन्या को अपनी सहधर्मिणी बनना चाहता हूँ और आप जैसा उत्तम कुल मेरी जानकारी में दूसरा नहीं है ।"

भवानीसिंहजी के माता-पिता का निधन उनके बचपन में ही हो गया था । वे जोबनेर में धीरसिंहजी खंगारोत के यहाँ जन्मे थे । माता-पिता के ना रहने पर उनके मामा ने उनका लालन-पालन किया । बालक की संस्कारी व कुशाग्र बुद्धि देखकर खूड़ के ठाकुर मंगलसिंहजी ने उसकी शिक्षा-दीक्षा का सम्पूर्ण भार अपने ऊपर ले लिया । भवानीसिंहजी के धार्मिक संस्कार देखकर जोबनेर के एक अध्यापक केसरीसिंह ने उन्हें कहा कि नवलगढ़ के थानेदार ठाकुर रामसिंह से मिलें, वे उच्चकोटि के गृहस्थ संत हैं अत: उन्हें ही गुरु बनाएँ । भवानीसिंहजी आकर ठाकुर रामसिंहजी से मिले किंतु उन्होंने यह कहकर लौटा दिया कि अभी पढ़ो-

लिखो फिर आना । इस अल्प साक्षात्कार ने भवानीसिंहजी पर ठाकुर रामसिंहजी की अमिट छाप डाल दी ।

भवानीसिंहजी ने नवलगढ़ से मैट्रिक पास की और कानपुर से बी-कॉम किया । कानपुर में उन्होंने स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लिया और मैदान में एक अच्छे फुटबाल खिलाड़ी का परिचय दिया लेकिन खेल के मैदान में एक दिन अंग्रेज अधिकारी के पक्षपात से निराश होकर वे खूड़ वापस आ गए ।

कानपुर से लौटने के बाद भवानीसिंहजी की आध्यात्मिकता की इच्छा तीव्र हो गयी साथ ही अच्छा गुरु प्राप्त करने की इच्छा उन्हें पांडिचेरी श्री अरविंद आश्रम ले गयी, जहाँ उन्होंने योगीराज अरविंद घोष से दीक्षा ली । भवानीसिंहजी ने जो रास्ता दिखाया, उसी पर उनके संरक्षक ठाकुर मंगलसिंहजी भी चले और वे भी श्री अरविन्द घोष के शिष्य बने। मंगलसिंहजी ने खूड़ ठिकाने का सारा काम-काज भवानीसिंहजी के सुपुर्द कर दिया था । पूर्णाधिकार प्राप्त होने के बाद भी भवानीसिंहजी में कोई अभिमान नहीं था ना ही वे क्रोध करते थे । उन्होंने उस क्षेत्र में शिक्षा प्रचार का बीड़ा उठाया और प्रथम बहुउद्देश्यीय विद्यालय की स्थापना की । इसमें छात्रों को स्वावलम्बी बनाने के उद्देश्य से बहुत से कामों का जैसे चरखा कताई, खिलौने बनाना आदि का प्रशिक्षण दिया जाता था । स्वयं भवानी सिंह व मंगलसिंहजी भी विद्यालय में पढ़ाते थे ।

वह कंट्रोल का जमाना था और अनाज, कपड़े, चीनी तथा मिट्टी के तेल के वितरण पर सरकारी कंट्रोल था । सरकार ने भवानीसिंहजी को आनरेरी तहसीलदार बनाकर कंट्रोल का काम देखने के लिए नियुक्त किया था । भवानीसिंहजी ने जिस लगन और ईमानदारी से जिस प्रकार उन वस्तुओं का वितरण प्रबंध किया वह प्रशंसनीय था और किसी को इससे शिकायत नहीं हुई ।

जयपुर रियासत में कानूनी सुधारों के अन्तर्गत जब धारा सभा और प्रतिनिधि सभा का गठन किया गया तो भवानीसिंहजी दाता- रामगढ़ क्षेत्र के प्रतिनिधि सभा से निर्वाचित हुए और उन्होंने अपने को गरीब जनता का सच्चा प्रवक्ता सिद्ध किया। खूड़-ठाकुर मंगलसिंहजी के पास भवानीसिंहजी की जो डायरी सुरक्षित थी उसमें उनकी लिखी हुई एक अंग्रेजी कविता थी, उसका भावार्थ है:

"हे महान शिव, मुझको भी पार्वती दे, जो सुन्दर हो सुशील हो, गुणी हो, चतुर हो और महान हो, साथ ही वह जीवन में उज्ज्वल किरण हो उसके जीवन से मेरा जीवन सफल हो। जिस सती को पाकर तुम महान पूजनीय बने हो वैसी ही पार्वती देकर, मुझे भी कृतार्थ करो ।"

इन भवानी सिंह ने जब स्वयं ठाकुर रामसिंहजी को पत्र देकर उनकी पुत्री दयाल कँवर से विवाह का प्रस्ताव रखा तो स्वयं ठाकुर रामसिंहजी गदगद् हो गए । तभी पत्नी गोपाल कँवर से बोले-देखी तुमने गुरु महाराज की कृपा ? घर बैठे ही बाईसा के लिए वर मिल गया है । समय पाकर ठाकुर रामसिंहजी ने ठाकुर मंगलसिंहजी से परामर्श कर विवाह तय कर दिया किंतु विवाह से पूर्व जब लगन भेजा गया तो भवानी सिंह का स्वास्थ्य ठीक नहीं था अतः यह शगुन तलवार के साथ किया गया । विवाह 1946 में सम्पन्न हुआ । दयाल कँवर तब 17 साल की थीं ।

दयाल कँवर व भवानीसिंहजी की सगाई के बाद नसीराबाद के पास खारी नदी में बाढ़ आयी थी । राहतकार्य व बाढ़ पीड़ितों की सेवा करते अपनी सेहत की चिन्ता ना करने से भवानीसिंहजी का जुकाम-खाँसी बिगड़ गया और उन्हें टी.बी. हो गयी । विवाह के दिन उन्हें 102 डिग्री बुखार था । फेरे की रस्म पूरी हो जाने पर जब हथलेवे की रस्म में दयाल कँवर का हाथ भवानीसिंहजी के हाथ में दिया गया तो उन्होंने अपने पति की आधी बीमारी अपने ऊपर ले ली । इस रस्म के बाद उनके पैर जुड़ गए और उनसे उठा भी नहीं गया । यह शक्ति, दूसरे की बीमारी को अपने

शरीर में खींचने की विद्या दयाल कँवर को अपने पिता ठाकुर रामसिंह से प्राप्त हुई थी ।

द्वितीय विश्वयुद्ध का समय था और देश में चीनी की कमी थी । चीनी कंट्रोल में मिलने लगी थी । ठाकुर रामसिंहजी की पुत्री दयाल कँवर का विवाह उन्हीं दिनों में सम्पन्न हुआ था । उस समय ठाकुर साहब के घर 50 किलो चीनी थी । कंट्रोल रेट से इतनी ही चीनी मिली । वर पक्ष की ओर से बड़ी बारात आनी थी जिसमें अनेक सामन्त शामिल होने थे । काला बाजार में चीनी उपलब्ध थी, आसानी से खरीदी जा सकती थी किंतु ठाकुर रामसिंहजी को अनुचित मार्ग पसंद नहीं था । आखिर यह निर्णय लिया गया कि केवल दो मिठाई बनायी जाएँ । हलवाई ने मिठाई बनाना शुरू किया । दो मिठाई बन गयी, चाशनी फिर भी काफी बची थी । जो भरी सभा में द्रौपदी का चीर बढ़ा सकता है, उसके लिए चाशनी बढ़ाना क्या मुश्किल था ? एक-एक कर पाँच मिठाईयाँ तैयार हो गई । कोठार मिठाइयों से भर गया । बारात का स्वागत सत्कार शानदार हुआ । सारा गाँव खाना खा गया । बची हुई चाशनी की विवाह के बाद चीनी (बूरा) बनायी गयी । वह पच्चीस किलो निकली ।

ठाकुर रामसिंहजी ने अपनी पुत्री दयाल कँवर के विवाह पर कन्यादान में एक गाय दी थी । बारात के साथ ही ठाकुर रामसिंहजी गाय को पुत्री की ससुराल खूड़ पहुँचाना चाहते थे । कन्यादान में दी गयी गाय का दूध घर में काम में नहीं ले सकते थे । गाय को गाड़ी में भेजने की व्यवस्था की गयी, किंतु गाय गाड़ी में चढ़ नहीं रही थी । यह बात घर पर ठाकुर रामसिंहजी को बतायी गयी । वे स्वयं गाड़ी पर गए, गाय की पीठ पर बड़े प्यार से हाथ फेरा तथा गाय से निवेदन किया-"गऊ माता मैंने तुम्हें बाईसा को दिया है, बाईसा की ससुराल चली जाओ ।" गाय ने ठाकुर रामसिंहजी की ओर देखा और आराम से गाड़ी में चढ़ गई ।

भवानीसिंहजी को विवाह के बाद टी.बी. के इलाज के लिए बीकानेर ले जाया गया । दयाल कँवर खूड़ में अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए

रहने लगीं । सादा भोजन एवम् नित्य प्रति नियमित रूप से स्नान-ध्यान ईश्वर-चिन्तन ही उनकी दिनचर्या थी । वह कभी झूठ नहीं बोलती थीं । दयाल कँवर अत्यन्त मृदुभाषी एवम् सहानुभूति रखने वाली थीं । उनका मानसिक संतुलन देखने योग्य था । उन्हें कठिन से कठिन परिस्थिति में चिंता नहीं सताती थी । "स्त्री के लिए पति ही देवता, पति ही बंधु और पति ही गुरु है, इसलिए प्राण देकर भी विशेष रूप से पति का प्रिय कार्य करना चाहिए" ऐसा दयाल कँवर सोचती थीं ।

उन्हीं दिनों वह मनोहरपुरा आईं । उनकी सात्विक दिनचर्या देखकर माँ का दिल भर आया तो उन्होंने परमज्ञानी की तरह माँ को समझाया- "भाभूसा (माँ) मेरा मरना जीना तो अब उनके साथ है । यदि वे ना रहे तो मैं भी नहीं रहूँगी ।" कुछ दिन बाद वे खूड़ वापिस चली गयीं ।

दयाल कँवर को खूड़ पहुँचाने इस बार, ठाकुर रामसिंहजी साथ आये, आपको खूड़-सरदार से मिलकर, भवानीसिंहजी के इलाज के सम्बन्ध में विचार-विमर्श भी करना था। ठाकुर रामसिंहजी वर्ष 1944 में सेवानिवृति के बाद केवल एक वक्त भोजन करने लगे थे । घर से बाहर जाने पर किसी के हाथ का भोजन नहीं करते थे, घर से पूए अथवा सकरपारे बनवाकर ले जाते अथवा स्वयं अपना भोजन बना लेते और अगर सुविधा नहीं होती तो बाजार से चना-गुड़ लेकर क्षुधा शान्त कर लेते थे । दयाल कँवर को खूड़ पहुँचाने आये तब साथ में भोजन बनवाकर ले आये थे । खूड़ सरदार मंगलसिंहजी के निवेदन करने पर भी उन्होंने गढ़ में भोजन करना स्वीकार नहीं किया । तब खूड़ सरदार ने इतना ही कहा-कदै तो भगवान सुणे ही लो ।"

अन्त:पुर के बाहर-गढ़ परिसर में ही एक बड़ा कूआ है और पास ही ठिकाने के काम-काज के लिये बहुत बड़ा कक्ष (बैठक) है, जहाँ ठाकुर रामसिंहजी के विश्राम की व्यवस्था की गई थी । भोजन के समय ठाकुर रामसिंहजी जब जल निकालने के लिये कूए पर पहुँचे, तभी एक कुत्ता कहीं से बैठक में घुस गया और खुशबू पाकर भोजन का थैला मुँह में ले

भागा । तभी खूड़ सरदार मंगलसिंहजी भी आगये और इस भगवद-प्रदत्त अवसर को देख कर-बद्ध निवेदन करने लगे "रामसिंहजी ! अब तो इस सेवक का अनुरोध स्वीकार कर लो ।" ठाकुर रामसिंहजी भी हाथ जोड़ मुस्काराते हुए कहने लगे-"भगवान ने भक्त की सुन ली। अब तो आपके यहाँ भोजन करना ही पड़ेगा, उसकी यही इच्छा है।" और उस दिन ठाकुर रामसिंहजी ने, खूड़ सरदार मंगलसिंहजी के यहाँ भोजन स्वीकार किया ।

एक ईमानदार और कर्त्तव्यनिष्ठ थानेदार के रूप में ठाकुर रामसिंह की ख्याति दूर-दूर तक फैल चुकी थी। खूड़ से लौटते हुए ठाकुर रामसिंहजी ने अपने सबसे छोटे पुत्र विष्णु सिंह को साथ ले लिया जो पहले से ही खूड़ आए हुए थे। सालगरामपुरा के ठाकुर केसरीसिंह चंपावत, जो ठाकुर रामसिंहजी के धर्म भाई थे और उन्हें दादाभाईसा कहकर पुकारते थे, उनके साथ ही यात्रा कर रहे थे । सीकर रेलवे स्टेशन पर साथ के एक यात्री ने मूँगफली ली । पास में बैठे बालक विष्णु सिंह को वह मूँगफली देने लगा, किंतु बच्चे ने मूँगफली लेने को हाथ नहीं बढ़ाया । यात्री ने बच्चे से काफी कहा पर वह ना माना । इस पर वह यात्री बोला-"तू क्या थानेदार रामसिंह हो गया है जो कुछ नहीं लेता ?" यह सुनकर ठाकुर केसरीसिंह हँसने लगे और बोले, "दादाभाईसा सुना सेठ जी क्या कह रहे हैं ?" ठाकुर रामसिंहजी मुसकुराए । ठाकुर केसरीसिंहजी से रहा नहीं गया, उस यात्री से बोले-"सेठ जी आपने थानेदार रामसिंह का नाम ही सुना है या कभी उन्हें देखा भी है ?" यात्री ने उत्तर दिया मैं तो अकोला (महाराष्ट्र) रहता हूँ । मैंने तो नाम ही सुना है, कभी दर्शन नहीं किए । इस पर केसरीसिंहजी बोले-"लो आज आपको दर्शन करा देता हूँ । जिनका आपने नाम सुन रखा है वे आपके सामने बैठे हैं । यही रामसिंहजी थानेदार हैं और यह बच्चा इन्हीं का पुत्र है।" यह सुनकर सेठ श्रद्धानत हो गया और कहने लगा कि आज तो खूब ही दर्शन हुआ ।

भवानीसिंहजी डायरी लिखा करते थे । अपनी पत्नी के पवित्र व आदर्श संयमी जीवन को देखकर एक दिन उन्होंने डायरी में लिखा-"मेरा

मानना है कि मैंने दयाल से विवाह करके अपने जीवन में बड़ा भारी अनिष्ट किया है। मैंने उसे ऐसा कुछ नहीं दिया जो एक पति को देना चाहिए। वह मेरे लिए सब कुछ न्यौछावर करती जा रही है। मैं इस पवित्र प्रेम को समझने में असमर्थ हूँ, किंतु यह एक परमानन्द है जो ईश्वर ने मुझे दिया है।" एक और जगह लिखा है-"हर व्यक्ति एक जीवन साथी की इच्छा रखता है जो उसके जीवन में हर कार्य में सहयोगी बने। किन्तु मुझ जैसे बीमार व्यक्ति के लिए तो वह वरदान ही सिद्ध हो रही है। मैं तो सोचता हूँ कि मैंने दयाल को विवाह कर बड़ी भूल की है, किंतु जब दयाल सामने होती है, तो निराशा के सभी भाव हवा हो जाते हैं और लगता है दयाल जगदम्बा का साक्षात् रूप है।" एक अन्य स्थान पर लिखा है-"अपनी पत्नी दयाल को सामने पाकर मुझमें कामुकता जागृत होने की बजाय एक स्वर्गीय पवित्रता का भाव आता है।" भवानीसिंहजी ने अपने अन्तिम दिनों में लिखा है-"मेरा ख्याल है कि मेरे जीवन का अन्त नजदीक है। फिर भी जब दयाल मेरे सामने आती है तो मुझे दुःख नहीं होता और मैं उसे महान शक्ति समझता हूँ जो अपने जीवन का समापन भी मेरे शरीर के साथ चिता पर भस्म होकर कर सकती है।" उनका यह अनुमान सत्य निकला और सचमुच ऐसा ही हुआ।

भवानीसिंहजी के इलाज में कोई कमी ना की गई। ठाकुर मंगलसिंहजी ने कहा था-"भवानी सिंह के बराबर चाँदी तोल कर दे दूँ कोई उनको ठीक करे तो।" ईश्वर की इच्छा विपरीत थी बीमारी ठीक होने की जगह बढ़ती गई। डाक्टरों ने जवाब दे दिया तो उन्हें बीकानेर से खूड़ वापिस ले आया गया। भवानीसिंहजी को खूड़ के गढ़ में ना रखकर गाँव से बाहर बाग (महल) में रखा गया। उनकी हालत के बारे में किसी को नहीं बताया गया। मंगलसिंहजी अवश्यंभावी को जान और उसे सहन ना कर पाने की स्थिति देख स्वयं तीर्थ के लिए लोहार्गल चले गए।

भवानीसिंहजी स्वस्थ होकर लौटे हैं यह समझ एक नौकरानी ने दयाल कँवर को बधाई देते हुए मिठाई व इनाम माँगा। इस पर वह बोली-

"कैसा इनाम, कैसी मिठाई, अब तो जाती के डंके हैं, उनके साथ जाने की तैयारी करनी है ।" यह सुनकर नौकरानी डर गयी । बोली, “आप कैसी बात करती हैं ?" दयाल कँवर बोली-"सच ही तो कह रही हूँ अब तो जाना ही है ।" तथा खूड़ के ठाकुर साहब को खबर भिजवायी-"अब तो मुझे भी उनकी सेवा करने का अवसर दिया जाए ।" तुरंत एक रथ लेकर उन्हें बाग भिजवाने की व्यवस्था की गयी । बाग में जाने के बाद एक नौकरानी को बुलाकर एक डिब्बे में लाख का चूड़ा, केसरी कपड़े, काजल, कुंकुम, रोली, मोली आदि शृंगार प्रसाधन रखे । फिर तेरह सुहागिन स्त्रियों को उन्होंने वस्त्राभूषण, गंध, पुष्प, कुंकुम, मिठाई और चाँदी का सिक्का दान करने की इच्छा प्रकट कर भगवान से प्रार्थना की कि उन्हें पति के साथ सहगमन का सत्व प्रदान करे । दयाल कँवर के पास विक्टोरिया छाप 206 चाँदी के रुपए थे। उन्हें ब्राह्मणों को देने की इच्छा प्रकट की। फिर अपनी राखड़ी या बोर (माथे पर लगाने वाला गहना) देकर कहा कि यह किसी ब्राह्मण कन्या के विवाह में दे दिया जाए । अपनी निजी वस्तुएँ नौकरानी को दे दी । “जस की तस धर दीनी चदरिया" उक्ति को सही साबित करते हुए वे तीव्रता से रथ में आ बैठी । कहा जाता है कि कांवर से एक पहुँचे हुए साधु उस दिन खूड़ आए हुए थे। जब रथ गढ़ से बाहर निकला तो किसी दासी ने उन्हें वह सब कुछ बताया जो गढ़ में हो चुका था। उन साधु ने कहा-"इस रथ में जो महिला बैठी है, उसी के सत ने उसके पति को जीवित अवस्था में बीकानेर से यहाँ खींच लिया है वरना उसकी मृत्यु तो वहीं हो जाती । इसमें कोई सन्देह नहीं कि पति के शरीर छोड़ते ही यह महिला सती हो जाएगी और कोई उसे नहीं रोक सकेगा।"

दयाल कँवर जब बाग पहुँची तो लोगों ने देखा कि उन पर पूरा सत चढ़ गया है, मुख पर एक अलौकिक प्रकाश चमक रहा था। उनकी इस अलौकिक आभा को देखकर उनकी नौकरानी बहुत डर गयी । उन्होंने दूसरे कमरे से अपने पति का ओढ़ा हुआ सफेद कम्बल मँगवाया तथा उसे आधा बिछा लिया एवम् आधा ओढ़ लिया । उन्होंने अपना मुँह ढ़क लिया

और हरि ओ३म्-हरि ओ३म् मंत्र का जाप शुरू कर दिया । रात ग्यारह बजे भवानीसिंहजी ने शरीर छोड़ा, उसी समय दयाल कँवर ने अपना जाप हरि ओ३म् शुरू किया था । कार्तिक एकादशी 1948 में 32 वर्षीय भवानीसिंहजी ने विवाह के 18 महीने बाद शरीर त्याग दिया ।

इधर जयपुर दयाल कँवर के पिता ठाकुर रामसिंहजी को अपने दामाद की चिन्ताजनक अवस्था का समाचार मिला तो वे खूड़ रवाना हुए । खूड़ से पाँच-छह मील दूर गाँव मूड़वाड़ा पहुँचे तो लोगों के समूह को सतीमाता का जयघोष करते सुना और वहीं उन्हें ज्ञात हो गया कि दयाल कँवर ने अपने पति के साथ सहगमन कर लिया । वे बोले, "हे प्रभु आपने जो कुछ किया, वह ठीक ! आपकी बड़ी कृपा !" खूड़ पहुँचकर वह सीधे सती दाह स्थल गए । चिता की भस्म लेकर टीका लगाने लगे तो किसी ने मना किया कि "यह तो आपकी पुत्री थी ।" इस पर ठाकुर रामसिंह ने कहा, "पुत्री! पर वह तो जगन्नमाता हो गई है, मेरे टीका लगाने से क्या होता है । यदि बाईसा के सती होते समय मैं पहुँच जाता तो पता नहीं क्या हो जाता ?"

खूड़ की सती वाली घटना ने पुलिस को सक्रिय कर दिया । अभियोग दर्ज कर कानूनी कार्यवाही शुरू हो गई । कानून से डरते लोगों ने उल्टी-सीधी बयानबाजी की । ठाकुर रामसिंहजी ने जब खूड़ पहुँचकर यह जाना तो मामले की सही-सही रिपोर्ट पुलिस में दर्ज करायी । पुलिस की डायरी जयपुर मँगायी गयी । गवाहों के बयान नए सिरे से दर्ज हुए । सती होने की सारी स्थिति को सही-सही बताया गया तथा किसी को दोषी नहीं पाया गया । इस अभियोग के निवारण में ठाकुर मंगलसिंहजी की भूमिका निर्णायक रही । वे जयपुर के नरेश सवाई मानसिंह द्वितीय के सहपाठी थे ।

ठाकुर रामसिंहजी के ज्येष्ठ सुपुत्र श्री हरीसिंहजी का विवाह सन 1951 में हुआ । यह घटना उसी समारोह से सम्बन्धित है । शादी में श्री कुशलसिंह, दुर्गाजी, और बहुत से जागीरदारों सहित अनेक लोग शामिल

हुए। बारात को चुरू जिले में 'जनाऊमीठी' जाना था सो वहाँ पहुँचने के लिए एक बस की व्यवस्था कर ली गई। उन दिनों मार्ग में खाने-पीने की सुविधाएँ बहुत ही सीमित थी इसलिए रास्ते में बारात के खाने-पीने के लिए सामान मनोहरपुरा से ही लेकर बस की छत पर रखवा लिया गया। बारात समय से पहुँच गयी सो खाने-पीने के लिए सामान को उतारने की जरूरत ही नहीं पड़ी। बारात वहाँ तीन दिन ठहरी। तीन दिन बाद दुल्हा-दुल्हन और बारातियों को लेकर बस जनाऊमीठी से वापस मनोहरपुरा के लिए रवाना हुई। कार्तिक (अक्टूबर-नवम्बर) का महीना था, रेगिस्तानी इलाका होने से बस थोड़ी धीरे चल रही थी इसलिए रास्ते में बस को देरी होती गई और शाम के खाने का समय होने पर बारातियों में खुसर-पुसर शुरू हो गई जो ठाकुर रामसिंहजी के कानों तक जा पहुँची। उन्होंने बस रुकवाई और बस की छत पर रखा तीन दिन पहले बना खाने-पीने का सामान नीचे उतरवाकर बस के भीतर ही एक तरफ को रखवा लिया। मनोहरपुरा से एक टोकरी में पूरी और तांबे के एक बड़े से बर्तन में आलू-टमाटर की सब्जी रखी गयी थी। ठाकुर रामसिंहजी ने दुर्गाजी को कहा कि वे चार-चार पूरी पर सब्जी रखकर उनके हाथ पर रखते जाएँ। श्री केसरीसिंहजी और कुशलसिंहजी ठाकुर रामसिंहजी के साथ ही बैठे हुए थे। श्री केसरीसिंहजी को चिंता हुई कि खाना तीन दिन पुराना है, बस की छत पर तीन दिन से धूप में पड़ा और ऊपर से आलू-टमाटर की सब्जी, तांबे के बर्तन में रखी, सो निश्चित ही खराब हो गयी होगी। वे ठाकुर रामसिंहजी को टोकने ही वाले थे कि साथ ही बैठे कुशलसिंहजी ने उन्हें रोक लिया और बोले-'जैसा गुरु महाराज चाहें होने दो।' ठाकुर रामसिंहजी दुर्गाजी से पूरी-सब्जी लेकर कुछ क्षण अपने हाथ में रखते और कुशलसिंहजी को मेहमानों को देने के लिए सौंप देते। सभी मेहमानों ने वो पूरी-सब्जी खाई और उनका कहना था कि वे ऐसी लग रही थीं कि मानों अभी-अभी बनकर आई हों।

5
सत्संग को समर्पित शेष जीवन

सेवानिवृति के कुछ वर्षों बाद ठाकुर रामसिंहजी के ज्येष्ठ सुपुत्र श्री हरीसिंहजी जो जयपुर दरबार की सेवा में थे, उन्हें सिटी पैलेस में खातीखाने में, जो चौड़ाई के मुकाबले काफी लम्बा और बीच में से पूरा खुला था, पहले तल पर निवास के लिए स्थान मिल गया और ठाकुर रामसिंहजी जयपुर में सिटी पैलेस में ही अपना अधिकतर वक्त गुजारने लगे। वैसे तो उनका अपना निजी निवास मनोहरपुरा में था लेकिन उन्होंने सिटी पैलेस को इसलिए चुना ताकि वे अपने गुरु-भगवान के मिशन को प्रभावी रूप से आगे बढ़ा सकें। सिटी पैलेस में जहाँ वो रहते थे एक छोटा सा कमरा था जिसके बाहर एक लम्बा सा दालान था। कमरे में वे अपना कुछ निजी सामान रखते और रहना-सहना दालान में करते, जिसमें उनके लिए एक तख्त बिछा रहता और आगुन्तकों के लिए दरी बिछी रहती। दीवान के समीप ही पीने के लिए तिपाई पर मटके में पानी और गिलास रखा रहता। इसके अलावा एक कुर्सी और दीवार पर टंगा एक कैलेन्डर और साथ में ही एक स्लेट और पेंसिल रखे रहते, जिस पर वे अपनी सिटी पैलेस में उपलब्धता की जानकारी लिख दिया करते थे। इतना भर उनके लिए काफी था। यह कमरा पहली मंजिल पर था जहाँ पहुँचने के लिए एक बंद चौड़े से घुमावदार रैंप (ढलाव) से चलकर आना होता था। इस रैंप में दिन में भी अन्धेरा रहता, सो वे एक दीपक जलाकर रखवा देते ताकि आने-जाने वालों को असुविधा ना हो। रैंप से पहली मंजिल पर पहुँचते ही सामने दालान में ठाकुर रामसिंहजी के दर्शन होते और उन 'दाढ़ीवाले बाबा' के दर्शन करते ही दुनिया पीछे छूट जाती, मन आनंद से भर जाता। ठाकुर रामसिंहजी बहुत ही आकर्षक व्यक्तित्व के धनी थे। लम्बे, छरहरे और सुन्दर और भव्य चेहरे पर राजपूती शान

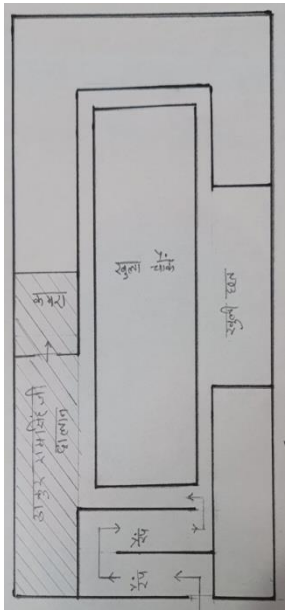

सिटी पैलेस में ठाकुर रामसिंहजी का निवास स्थल

को झलकाती श्वेत दाढ़ी, मनमोहक बड़ी-बड़ी आँखे और उभरा हुआ माथा जिसपर त्रिशूल जैसी तीन नसें स्पष्ट दिखतीं। साधारणतय वे आधी बाजू का सूती कुर्ता और धोती पहनते और सर पर मूँगिया रंग का राजस्थानी साफ़ा धारण करते। कहीं पर आते-जाते समय अपने साथ कंधे पर लटकाने वाला एक झोला और एक छोटा डंडा रखते। सुबह जल्दी उठ, कुल्ला कर कुछ घूँट पानी पीते और फिर नहाकर कुर्सी पर बैठ चिड़ियों को दाना डालते। खाना शांति से धीरे-धीरे अपने गुरु-भगवान की याद में खाते और फिर कृतज्ञता के भाव के साथ विश्राम करते। मृदुभाषा में प्रेम और आदर के साथ बात करते, प्रत्येक आगुन्तक का स्नेह और आदर से स्वागत करते और छोटे बच्चों को भी आप कहकर बुलाते। उनके सामने हाजिर होते ही सामने वाले को आंतरिक शांति का आभास होता। उनके सारे कार्य पूरी श्रद्धा और सामर्थ्य के साथ होते। किसी ने भी उन्हें कभी विचलित या क्रोध करते नहीं देखा। अपने सिद्धांतों पर अडिग, कभी अपनेआप को कोई ढील ना देते और स्वयं को कसने में लगे रहते। उनके व्यवहार में कोई आडम्बर नहीं था, जैसे भीतर वैसे ही बाहर। किसी चीज का जरूरत से अधिक संग्रह करके ना रखते, सादा और सरल जीवन जीते। अक्सर दो-तीन दिन पहले बनी सूखी रोटी को मूली

के साथ खा लेते। हमेशा अहोभाव और अपने गुरु-भगवान के प्रति कृतज्ञता से भरे रहते। साधारण मनुष्य की तरह जीने पर जोर देते और फरमाते कि यह रास्ता (सूफ़ियों का तरीका) मुश्किल रास्ता है जिस पर हरेक कदम को सावधानी से उठाने की आवश्यकता है। किस बात का घमण्ड जब अपना कुछ है ही नहीं, अपना कोई अस्तित्व ही नहीं, हर ओर हर रूप में 'वो' ही प्रकट हो रहा है ?

ठाकुर रामसिंहजी सांगानेर से बस में अजमेरी गेट आते और वहाँ से पैदल ही कंधे पर अपना झोला लटकाए सिटी पैलेस पधारते। हालाँकि कुछ सत्संगी भाई उनके पास बराबर आते थे लेकिन ठाकुर रामसिंहजी साहब ने स्वयं को बहुत ही गुप्त रखा और अपनी अध्यात्मिक पहुँच को लोगों पर ज़ाहिर नहीं होने दिया। बहुत कम लोग ही उनके अध्यात्मिक सागर की गहराई में गोता लगा पाने का सौभाग्य पा सके। अधिकतर लोग उन्हें एक ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ पुलिस ऑफिसर के रूप में तो जानते थे लेकिन वे अध्यात्मिकता का अथाह समुद्र हैं लोगों को मालूम नहीं था। फिर भी कुछ लोगों को उन्हें निकट से जानने और उनकी कृपा पाने का सौभाग्य मिला। इनमें श्री श्यामसिंहजी राठोड़, श्री भागीरथसिंह, डॉ. चन्द्र गुप्ता, श्री मूलराज टण्डन, श्री रवीन्द्रसिंह चौहान, श्री हरीसिंह चौहान, श्री जगदीश चन्द्र भार्गव, श्री गोवर्धन लाल गुप्ता, श्री यश पाल जोली और श्री चिरंजीलाल बोहरा आदि कुछ प्रमुख लोगों के नाम हैं। वे एक ऐसे निराले संत हुए हैं जिनके बारे में चर्चा करना सत्संग है और जिन्हें स्मरण करना साक्षात् परमात्मा को अनुभूत करने सरीखा है।

यह सन 1963 की घटना है जिसका वर्णन ठाकुर रामसिंहजी के एक सत्संगी ने अपनी डायरी में इस प्रकार किया है। डायरी में उन्होंने ठाकुर रामसिंहजी को राम-महाशय नाम से सम्बोधित किया है।

"11 जून 1963

शाम का समय है । राम महाशय फर्श पर शांतचित्त बैठे हैं। मुख पर सौम्यता की छटा छा रही है । सिटी पैलेस में सत्संग का आनंद उमड़ रहा है। एक-एक कर सब सत्संगी चले गये ।

आज मंगलवार है । मंगलवार के दिन जज साहब (श्री जगन्नाथ प्रसादजी, महात्मा डॉ. चतुर्भुज सहायजी के शिष्य) के मकान पर सत्संग होता है । राम महाशय को मंगलवार की याद आ गई । बोले, "चलो आपको जज साहब के यहाँ सत्संग दिखा लाते हैं । सिटी पैलेस से पैदल चलकर सुभाष चौक जज साहब के मकान पर पहुँचे ।

गर्मियों के दिन हैं। दूसरी मंजिल की खुली छत पर सत्संग चल रहा है । पूरी छत सतसंगियों से भरी है । सीढ़ियों की ओर सतसंगियों की पीठ है । राम महाशय सीढ़ियों पर चढ़कर सबसे पीछे दरी पर बैठने वाले ही थे कि जज साहब की दृष्टि पड़ गई । जज साहब हाथ जोड़कर खड़े होगये, उनके साथ सारे सत्संगी भी खड़े हो गये । यह देखकर राम महाशय ने विनम्र भाव से कहा-"बैठिये साहब, उसके दरबार में खड़े होने की क्या जरूरत है ?" जज साहब ने हँसते हुए उत्तर दिया-"उसके दरबार के किसी दरबारी के आने पर खड़ा होना पड़ता है ।"

इतने में जज साहब राम महाशय के निकट आ गए। आप किंचित मुस्कराये और जज साहब की ओर कुछ क्षण हाथ जोड़े खड़े रहे । आपका वह अद्‌भुत विनीत भाव दर्शनीय था। यह दुर्लभ दृश्य देख मन आनन्दविभोर हो उठा । सहसा सन्त कबीर की एक साखी याद आगई:

'कबीर चेरा सन्त का, दासन का परदास
कबीर ऐसे हो रहा, ज्यों पाऊँ तले घास'

तदुपरान्त जज साहब ने विनीत आग्रह किया कि आप आगे पधारिये किन्तु राम महाशय राजी नहीं हुए । वे वहीं दरी पर सबसे पीछे बैठ गये । जज साहब भी पास में ही बैठ गये । आपने सतसंगियों से राम महाशय की ओर मुँह करके बैठने को कहा । कुछ अन्तराल तक सब शान्त बैठे रहे । वह मौन की घड़ी प्रवचन से भी बढ़कर रही । कोई कुछ नहीं बोल रहा था

। राम महाशय शान्त बैठे अन्तर्लीन होते चले जा रहे थे । मन्द प्रकाश में सत्संगी उनके मुख की ओर देख रहे थे । मौन सत्संग चलता रहा ।

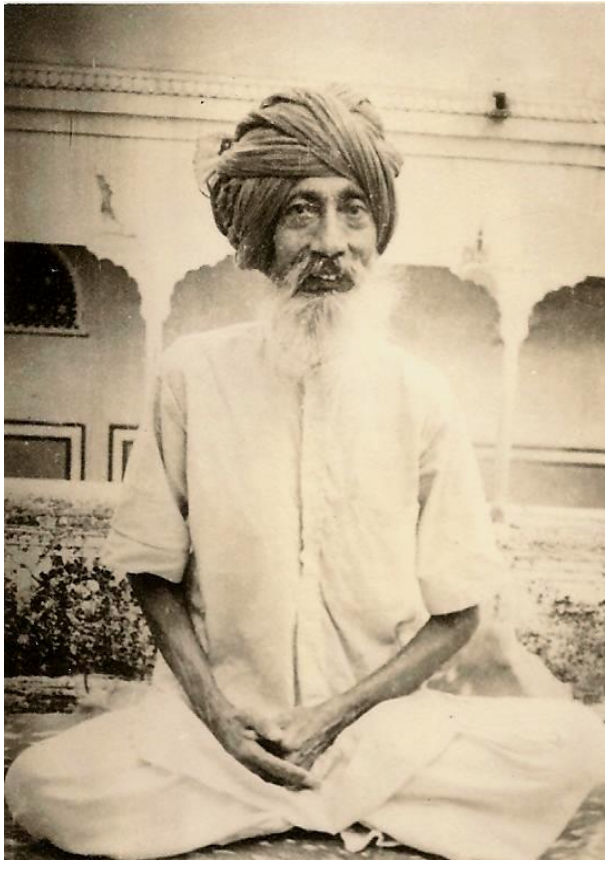

परम संत ठाकुर रामसिंहजी

राम महाशय यदा-कदा ही सत्संग में सम्मिलित होते हैं । अचानक उनके आगमन से सत्संग ने नया मोड़ लिया । कुछ समय बाद जज साहब ने निवेदन किया-"इन सतसंगियों को आप कुछ कहियेगा ।" आप

थोड़ी देर उसी अन्तर्मुखी भाव मुद्रा में बैठे रहे । फिर एक कहानी कहकर यह बताया कि अपनी धर्मपत्नी को भी हमख्याल बना लेना चाहिए । फिर वही नीरव शांति छा गई । अन्त में आप कहने लगे-"जिसे हम ढूंढ रहे हैं, वह भीतर ही है । उन्हें प्यार करना होगा । यदि हम उनकी तरफ दो कदम चलेंगे तो वे हमारी तरफ चार कदम चलेंगे। वे परमपिता जो हैं। इस मन की तरफ ध्यान देना होगा। इसमें मुहब्बत का जज्बा पैदा करना होगा । मन में हर समय उनकी याद बनी रहे ।"

एक युवक शेखावाटी से चलकर ठाकुर रामसिंहजी से मिलने आया करता था। एक दिन जब वह सिटी पैलेस पहुँचा तो उसे वहाँ ठाकुर रामसिंहजी नहीं मिले । जब कभी ठाकुर साहब जयपुर छोड़कर जाते थे तो एक स्लेट पर सूचना लिख जाते थे । युवक की निगाह स्लेट पर पड़ी उस पर लिखा था कि गाँव जा रहा हूँ । कब लौटेगें इसकी सूचना नहीं थी । वह युवक यह पढ़कर निराश हो गया कि उसका जयपुर आना व्यर्थ हो गया । थोड़ी देर बैठा रहा फिर बाजार चल दिया । उसे एक परिचित थानेदार मिले । किंतु वह ठाकुर साहब के गाँव का पता नहीं बता पाये । सहसा थानेदार को याद आया कि रेलवे स्टेशन के पास एक पुराने सत्संगी रहा करते हैं, जिनका नाम हरनारायण सक्सेना है । उनके यहाँ सत्संग हुआ करता है शायद वहाँ पता लग जाये । दूसरे दिन वह युवक सक्सेना साहब के मकान पर पहुँच गया । संयोग से वहाँ सत्संग शुरू होने वाला था वह सत्संग में शामिल हो गया । पूजा समाप्त होने पर जब उस युवक ने आँखें खोली तो क्या देखता है, ठाकुर साहब प्रसन्न मुद्रा में एक ओर बैठे मुस्करा रहे हैं । ठाकुर रामसिंहजी को देखकर सभी सत्संगी प्रसन्न हो गये । सक्सेना साहब खड़े हो गये । अभिवादन किया और बोले-“अरे भाईसाहब ! आप कब आये, आज तो बड़ी कृपा की । आप वहाँ कहाँ बैठ गये, ऊपर आइये ।" ठाकुर रामसिंहजी ने कहा, मैं आराम से बैठा हूँ । सत्संग होने दीजिए ।" प्रसाद वितरण के बाद उन्होंने उस

युवा सत्संगी को बुलाया । उसके कंधे पर हाथ रखा और मकान के सामने चबूतरे के किनारे ले जाकर बोले-“आपने याद किया तो मैं चला आया ।"

शायद यह ठाकुर रामसिंहजी का एक ही समय में अलग-अलग जगह एक साथ उपस्थित होने का एक उदाहरण था । इसी तरह की एक और घटना है । एक बार ठाकुर रामसिंहजी अपने गुरु भगवान के भण्डारे में शामिल होने हेतु फतेहगढ़ ना जा सके । एक अन्य सत्संगी जो फतेहगढ़ भण्डारे में शामिल होकर लौटे थे, उनसे मिलने पधारे । अन्य सत्संगी भी वहाँ मौजूद थे । बातचीत के दौरान उन सत्संगी के मुँह से निकला-"आप तो वहाँ फतेहगढ़ भण्डारे में हाजिर थे ।" तुरंत ठाकुर रामसिंहजी ने उन्हें आगे कुछ ना बोलने का इशारा किया ।

हालाँकि ठाकुर रामसिंहजी किसी पर अपनेआप को जाहिर नहीं करते थे फिर भी उचित पात्रों पर कृपा करने से हिचकते भी नहीं थे। महात्मा डॉ. चन्द्र गुप्ता एक ऐसे ही व्यक्ति थे जिन पर ठाकुर रामसिंहजी ने स्वयं आगे बढ़कर अपनी कृपा-वर्षा की, केवल उन पर ही नहीं बल्कि उनके समस्त परिवार और परिचितों पर भी।

नक्शबंदी सूफ़ी सिलसिले में ऐसे कई उदहारण मिलते हैं जब उपयुक्त साधकों को एक से अधिक शैखों द्वारा ज्ञान प्राप्त हुआ। गुरु-शिष्य सम्बन्ध की तुलना बहुत हद तक पति-पत्नी के रिश्ते से की जा सकती है । जिस तरह पत्नी के लिए पति उसका सर्वस्व होता है, उसी तरह शिष्य के लिए उसका गुरु उसका सर्वेसर्वा होता है । फिर भी यह सत्य है कि जिस तरह पति के रिश्ते के कारण ही अन्य नाते-रिश्तेदार उसकी पत्नी को अपना स्नेह और आशीर्वाद देते हैं, ठीक उसी तरह बुज़ुर्गान-ऐ-सिलसिला व अन्य संतजन अपने गुरु पर पूर्णत: आश्रित शिष्य पर उसके गुरु की निस्बत (आत्मिक सम्बन्ध) के कारण, अपनी कृपा की वर्षा करते हैं। यह सब गुरु कृपा का ही दूसरा रूप है। इस सन्दर्भ में एक सूफ़ी दरवेश का किस्सा यहाँ कहना उचित होगा । एक बार एक सूफ़ी दरवेश शैख़ शहाबुद्दीन सुहरावर्दी के यहाँ गया। कुछ देर बाद उसे

भूख लगी तो उसने खाने के लिए कुछ माँगा। सूफ़ी महात्मा ने उसे अपने शिष्य के साथ खाने के लिए दूसरे कमरे में भेज दिया। खाना खाने के बाद उस दरवेश ने अपने शैख़ हजरत कुतुबुद्दीन हैदर की खानकाह की दिशा में मुँह कर उनका नाम लेकर उन्हें खाना देने के लिए धन्यवाद दिया। महात्मा के शिष्यों ने जब यह बात उन्हें बताई और कहा कि यह आदमी अजीब है, खाना आपका खाता है और शुक्रिया अपने शैख़ का करता है तो शैख़ शहाबुद्दीन सुहरावर्दी ने फ़रमाया कि मुरीदी (शिष्यत्व) इस दरवेश से सीखना चाहिए। शिष्य के लिए जो कुछ भी और कहीं से भी मिलता है सब उसके गुरु द्वारा ही मिलता है।

इस बात में कोई संदेह नहीं कि शिष्य के लिए गुरु के प्रति एकनिष्ठ होना ही एकमात्र साधन है। शिष्य की गुरु के प्रति एकनिष्ठा उसे अन्य संत-महात्माओं का भी कृपापात्र बना देती है। ऐसा ही कुछ डॉक्टर चन्द्र गुप्ता के साथ घटित हुआ। वे महात्मा श्री राधा मोहन लालजी साहब से बैअत हुए थे लेकिन उन्हें परमसंत ठाकुर रामसिंहजी की पूर्ण कृपा भी प्राप्त हुई जिसे उनके गुरु महाराज महात्मा श्री राधा मोहन लालजी ने बिरादराना-सुलूक का नाम दिया और ठाकुर रामसिंहजी के माध्यम से हजरत अब्दुल रहीम साहब उर्फ़ मौलवी साहब के भी वे कृपापात्र बने।

सन 1959 में वे परमसंत ठाकुर रामसिंहजी की कृपा के पात्र बने। डॉक्टर चन्द्र गुप्ता का संपर्क श्री सागरचन्दजी वकील जो महात्मा श्री चतुर्भुज सहायजी के शिष्य थे और चाँदपोल बाज़ार में रहा करते थे, से था और वे उनके यहाँ सत्संग में भी जाया करते थे। श्री हरफूलसिंहजी भी सत्संग में आया करते थे। वे भी महात्मा डॉ. चतुर्भुज सहायजी के शिष्य थे। आपकी आवाज़ काफी बुलंद थी और बड़े अच्छे भजन गाया करते थे, सुनने वालों के हृदय ईश्वर प्रेम से भर जाते। कई बार तो सत्संग रात में काफी-काफी देर तक चलता रहता। एक बार श्री सागरचन्दजी वकील के यहाँ सत्संग के दौरान कोई सज्जन कव्वाली गा रहे थे-'जिस दिन से देखा तुझको सनम, मेरा दिल ही दीवाना हो गया।' डॉक्टर चन्द्र गुप्ता

उस कव्वाली को सुनते-सुनते बहुत मग्न हो गए। श्री सागरचन्दजी वकील उनके साथ सटकर बैठे थे, वे भी डॉक्टर चन्द्र गुप्ता की इस मस्ती से अछूते ना रहे। श्री सागरचन्दजी वकील कई दिनों तक रूहानी मस्ती में झूमते रहे। डॉ. चन्द्र गुप्ता उन दिनों होमियोपैथी दवाखाना चलाया करते थे। यूँ तो वे ऐ.जी. ऑफिस में कार्य करते थे पर ऑफिस से इज़ाज़त लेकर वे लोगों को दवा भी दिया करते थे। तब उनका दवाखाना मिश्रराजाजी के रास्ते में था। एक शाम वे श्री सागरचन्दजी वकील के साथ अपने दवाखाने में बैठे हुए थे कि तभी अचानक ठाकुर रामसिंहजी वहाँ आ पहुँचे और फ़रमाया 'डॉक्टर साहब, डॉक्टर तो बहुत मिल जाते हैं पर मरीज नहीं मिलता।' श्री सागरचन्दजी ठाकुर रामसिंहजी का तात्पर्य समझ गए। इन शब्दों का अर्थ था कि सच्चे जिज्ञासुओं को संत लोग स्वयं खोजकर उनकी सहायता करते हैं। ठाकुर रामसिंहजी साहब भी स्वयं इसी उद्धेश्य से डॉक्टर चन्द्र गुप्ता को आमंत्रित करने आये थे। श्री सागरचन्दजी ने डॉक्टर चन्द्र गुप्ता को बताया कि ठाकुर साहब आपको निमंत्रण देकर गएँ हैं।

हालाँकि डॉक्टर चन्द्र गुप्ता महात्मा श्री राधा मोहन लालजी साहब के दीक्षित शिष्य थे लेकिन ठाकुर रामसिंहजी साहब स्वयं उन्हें बुलाने आये थे। अध्यात्म के उच्च शिखरों पर संतजन अपने-पराये में भेद नहीं करते, वे तो उचित पात्रों को स्वयं खोजकर उन्हें अपनी कृपा रुपी अमृत धार से सींचने के लिए तत्पर रहतें हैं। डॉक्टर चन्द्र गुप्ता ने इस बारे में अपनी डायरी में लिखा है कि-'इसके (बैअत होने के) 5-6 माह बाद ठाकुर रामसिंहजी ने मुंशी भाईसाहब की इज़ाज़त से अपनी शरण में ले लिया।' महात्मा श्री राधा मोहन लालजी साहब ने ठाकुर रामसिंहजी के पास पत्र भेजा जिसमे लिखा था कि यही बिरादराना सलूक है और इसे आगे भी निभाइए। उन्होंने यह भी लिखा कि डॉक्टर चन्द्र गुप्ता के लिए दोनों दर खुले रहेंगे। ठाकुर रामसिंहजी ने पत्र को सीने से लगाया और डॉक्टर चन्द्र गुप्ता को फ़रमाया कि 'यू आर माय ब्लड नाउ' (अबसे आप मेरा ही

खून हैं) और ध्यान कराना शुरू कर दिया। महात्मा श्री राधा मोहन लालजी ने ठाकुर रामसिंहजी के सम्बन्ध में अपने एक पत्र में लिखा है- 'श्री कुँवर रामसिंहजी भक्त हैं। हमारे बड़े महापुरुषों में बैठे हुए हैं। उनकी सेवा का लाभ उठाये हुए हैं। आपका हृदय हर वक़्त परमात्मा के प्रकाश से लबालब भरा रहता है। पत्र व्यवहार अधिक नहीं है पर ख्याल बना रहता है। खूब गौर कर लीजिये। प्रेम कभी छिपाए नहीं रहता है।'

डॉक्टर चन्द्र गुप्ता ठाकुर रामसिंहजी के पास रोजाना हाज़िर होने लगे और उनका यह नियम बन गया कि ऑफिस से लौटकर खाना खाकर वे ठाकुर रामसिंहजी साहब के पास सिटी पैलेस पहुँच जाते। घर गृहस्थी की सब जिम्मेदारी उन्होंने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती दर्शना देवी पर छोड़ ही रखी थी। उनके पास एक पुरानी साइकिल थी उसी से वे ऑफिस जाते थे और उसी से सिटी पैलेस भी। पुरानी होने के कारण साइकिल कुछ आवाज़ करती थी और साइकिल की यही आवाज़ उनके पहचान वालों में उनके आने का संकेत बन गयी थी।

ठाकुर रामसिंहजी साहब ने एक दफा डॉ. चन्द्र गुप्ता को मौलवी अब्दुल रहीम साहब (पीर साहब, मौलवी साहब) जो मौलवी हिदायत अली खान साहब के सुपौत्र और ठाकुर रामसिंहजी साहब के समकालीन थे और देश विदेश में बहुत आदर की दृष्टी से देखे जाते थे, उनके दर्शन कर आने को कहा। डॉ. चन्द्र गुप्ता तब बाबा हरिश्चंद्र मार्ग पर रहते थे और मौलवी अब्दुल रहीम साहब नजदीक ही खेजडे वालों के रास्ते में रहते थे। डॉ. चन्द्र गुप्ता उनके पास हाज़िर हुए, दुआ-सलाम हुई और उन्होंने यह कहते हुए कि उनके गुरु महाराज ने उनके (मौलवी अब्दुल रहीम साहब) के दर्शन की आज्ञा दी थी तुरंत लौटने की इज़ाज़त चाही। उस दिन उन दोनों के बीच कोई विशेष बात नहीं हुई और डॉक्टर चन्द्र गुप्ता मौलवी साहब के दर्शन कर वापस लौट आए।

कुछ दिनों बाद डॉ. चन्द्र गुप्ता खेजडे वालों के रास्ते से गुजर रहे थे कि सामने से मौलवी साहब आते दिखाई दिए। मौलवी साहब डॉ. चन्द्र

गुप्ता को अपने साथ अपने घर लिवा ले गए और पूछा कि आज आपके गुरु महाराज की क्या आज्ञा है? डॉ. चन्द्र गुप्ता अपने गुरु महाराज की आज्ञा पालन करने में बहुत सावधान रहते थे और उसका दृढ़ता से पालन करते थे। पहली दफा उनके गुरु महाराज ने उन्हें मौलवी साहब के दर्शन मात्र की आज्ञा दी थी और डॉ. चन्द्र गुप्ता ने उसका पालन कर दर्शन के तुरंत बाद लौटने की आज्ञा चाही थी। इस बार ऐसी कोई आज्ञा नहीं थी अत: डॉ. चन्द्र गुप्ता ने मौलवी साहब से निवेदन किया की आज उनके गुरु महाराज की तरफ से कोई निर्देश नहीं है। मौलवी साहब ने फ़रमाया-'माँगो, क्या माँगते हो?' डॉ. चन्द्र गुप्ता कुछ ना बोले, चुप रहे। वे अपने गुरु महाराज के सिवाय किसी अन्य से कुछ नहीं चाहते थे। मौलवी साहब ने फिर दोबारा कह-'माँगो, क्या माँगते हो?' इस बार भी डॉ. चन्द्र गुप्ता ने जवाब नहीं दिया। तब मौलवी साहब ने तीसरी बार वही शब्द दोहराए। संत-मत में किसी संत द्वारा तीन दफा पूछने पर भी उत्तर ना देना बेअदबी समझा जाता है। जब मौलवी साहब ने तीसरी बार भी वही प्रश्न दोहराया तो डॉ. चन्द्र गुप्ता ने प्रतिप्रश्न किया-'क्या आप मुझे जो माँगूँगा देंगे?' मौलवी साहब ने फ़रमाया-'आज आसमान जमीन पर आ सकता है, माँगो, क्या माँगते हो ?' डॉ. चन्द्र गुप्ता ने उनसे दो मिनट का समय माँगा, अपने गुरु महाराज को याद किया और मौलवी साहब से निवेदन किया-'यदि आप मुझे देना ही चाहते हैं तो मुझे अपने गुरु का प्रेम बख्शें।' यह उत्तर सुनकर मौलवी साहब बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने डॉ. चन्द्र गुप्ता को अपने सीने से लगाकर कहा, 'आज से मैं भी तुम्हारा गुरु हूँ।' मौलवी साहब ने केवल डॉ. चन्द्र गुप्ता पर ही नहीं वरन उनके पूरे परिवार पर भी अपनी कृपावृष्टि की। अन्य सत्संगियों को भी जिन्हें डॉ. चन्द्र गुप्ता मौलवी साहब के पास ले गए, मौलवी साहब ने अपनी कृपा से धन्य किया।

डॉक्टर चन्द्र गुप्ता ने अपनी डायरी में लिखा है कि ठाकुर रामसिंहजी साहब ने 'उस रोज से (महात्मा श्री राधा मोहन लालजी साहब का पत्र

मिलने के दिन से) मुझे विशेष तवज्जोह देना शुरू कर दिया। पहले मुझको मुंशी भाईसाहब (महात्मा श्री राधा मोहन लालजी साहब का घर का नाम) में लय करवाया और कहते थे कि तुम मुंशी भाईसाहब बन गए। बाद में कानपुर पत्र लिखकर मुझे इज़ाज़त दिलवाई। फिर बाद में 1970 में हुक्म फ़रमाया जो काम मेरे मरने के बाद करना है सो अब करो।' डॉक्टर चन्द्र गुप्ता ने अपनी डायरी में यह भी लिखा है कि मुझे महात्मा श्री राधा मोहन लालजी साहब ने जो हद-बेहद के दर्जे को पार किये हुए थे और बड़े जलाली थे बाकायदा बैअत करके ठाकुर रामसिंहजी साहब के जेरे साया रखा। ठाकुर रामसिंहजी साहब शांति के अवतार थे। आपने मेरा कल्ब जाकिर किया और बड़ा कष्ट उठाकर इल्लत-जिल्लत-किल्लत के महीन मरहलों से मुझे पार कराया। मैं ज्यादातर जलाल की हालत में रहा, जिसकी वजह से मैं बदनाम भी रहा। आपने अपनी जिन्दगी में हजरत अब्दुल रहीम साहब, जयपुरी की खिदमत में रखा। आप ने मेरी बड़ी मदद की और गुरु पर विश्वास पक्का कराया और समझाया की गुरु की असल खिदमत यह है की जैसे तुम्हारा कल्ब जाकिर हुआ, उसी तरह औरों का भी कल्ब जाकिर करके तालिब को अपने गुरु के हवाले कर दो और खुद परदे में रहो। सिद्धियों से बचो और खुद तकलीफ उठाकर दूसरों को राहत पहुँचाओ। दिखावे से बचो।

इससे साफ जाहिर होता है कि अध्यात्म के उच्च शिखर पर पहुँचे संतों के लिए अपने-पराये का भेद मायने नहीं रखता, वे तो उचित पात्रों की सहायता को तत्पर रहतें हैं और इसे अपना कर्तव्य मानते हैं। जात-पात, देश, धर्म उनकी निगाहों में कोई मायने नहीं रखता। उनके प्रेम का झरना निर्बाध रूप से बहता रहता है जिसकी एक बूँद भी सच्चे साधक को आनंद के सागर में डुबो देने के लिए पर्याप्त होती है।

शुरुआती दिनों में ठाकुर रामसिंहजी ने डॉ. चन्द्र गुप्ता को आगाह किया था कि वे उनके बारे में अन्य लोगों को नहीं बताएँ। लेकिन डॉ. चन्द्र गुप्ता उनके पास कई लोगों को ले गए। एक दिन जब डॉ. चन्द्र

गुप्ता ठाकुर रामसिंहजी साहब के पास सिटी पैलेस हाज़िर हुए तो ठाकुर रामसिंहजी नीचे फर्श पर विराजमान थे और पास ही एक कुर्सी रखी हुई थी। ठाकुर रामसिंहजी ने उन्हें कुर्सी पर बैठने के लिए इशारा किया। डॉ. चन्द्र गुप्ता एक क्षण के लिए कुर्सी पर बैठे और तुरंत उतरकर नीचे फर्श पर उनके सामने बैठ गए। ठाकुर रामसिंहजी ने पूछा-'डॉ. साहब मैंने आपको कुर्सी पर बैठने का हुक्म दिया था, लेकिन आप उतरकर नीचे बैठ गए। बताएँ आपको क्या सजा दी जाये ?' डॉ. चन्द्र गुप्ता ने उत्तर दिया- 'महाराज, मैं पहले कुर्सी पर बैठा, आपके हुक्म की तामील की, फिर क्योंकि आप नीचे फर्श पर विराजमान थे नीचे उतरकर अदब की तामील की।' इस उत्तर को सुनकर ठाकुर रामसिंहजी ने कहा, 'डॉ. साहब मैंने आपको मना किया था कि मेरे बारे में आप किसी को नहीं बताएँगे लेकिन आप मेरे पास इन-इन सज्जन को लेकर आये, और उन्होंने उन सब लोगों के नाम गिना दिए जिन्हें डॉ. चन्द्र गुप्ता उनके पास लेकर आये थे, और फिर बोले बताइए आपको क्या सजा दी जाये ?' लगता था उस दिन ठाकुर रामसिंहजी डॉ. साहब को सजा देने का मन बनाये हुए थे। डॉ. साहब ने सब शांति से सुना और फिर बोले महाराज सजा मुझे ही मिलेगी ना, उनको तो नहीं जिन्हें मैं आपके पास लेकर आया ? ठाकुर रामसिंहजी ने कहा नहीं उन्हें कोई सजा नहीं मिलेगी। तब डॉ. चन्द्र गुप्ता ने कहा, 'सजा वो ही जो मिज़ाज़े यार में आये। लेकिन महाराज सजा देने से पहले यह सोच लीजिये जहाँ मैं हूँ वहाँ आप हो, और जहाँ आप हैं वहाँ मैं हूँ।' यह निडर और विश्वासपूर्ण उत्तर सुनकर ठाकुर रामसिंहजी बहुत खुश हुए। उन्होंने डॉ. चन्द्र गुप्ता को अपने सीने से लगा लिया और फ़रमाया, 'डॉ. साहब, आज से आपके सारे गुनाह माफ़।'

यहाँ आचार्य रामानुज (रामानुजाचार्य; 1017-1137) का जिक्र करना प्रासंगिक होगा। उनके गुरु पेरियानाम्बी ने उन्हें मंत्र देते हुए वचन लिया था कि वे 'ॐ नमो नारायणाय' इस पवित्र और अति शक्तिशाली मंत्र को किसी को नहीं बताएँगे क्योंकि इस मंत्र के निरंतर जाप से मुक्ति हो

जाती है अत: इसे केवल उचित पात्र को ही दिया जाना चाहिए। लेकिन आचार्य रामानुज सभी प्राणियों के साथ सहानुभूति रखते थे और उनके विचार में सभी प्राणी मुक्ति के अधिकारी थे। वे मन्दिर के मुख्य कपाट के सम्मुख लगे ऊँचे स्तम्भ पर चढ़ गए और जोर-जोर से मंत्र का उच्चारण करने लगे। गुरु पेरियानाम्बी उन पर बहुत क्रोधित हो गए और बोले कि आचार्य रामानुज को इसके लिए कठोर दण्ड भुगतना होगा। लेकिन आचार्य रामानुज ने कहा कि इस मंत्र के जाप से असंख्य लोगों के उद्धार के लिए वे कठिन से कठिन नारकीय दण्ड सहर्ष भुगतने को तैयार हैं। उनके गुरु पेरियानाम्बी यह जानकर कि उनका हृदय औरों के प्रति दया और करुणा से भरा है उनसे बहुत प्रसन्न हुए और आचार्य रामानुज को गले लगा आशीर्वाद दिया।

शिष्य को जानना चाहिए कि गुरु आज्ञा का सच्चा पालन क्या है ? गुरु की आज्ञा का असली तात्पर्य ना जान केवल शाब्दिक पालन काफी नहीं है। एक सूफ़ी संत और युवक की कहानी संदर्भित है। एक युवक एक सूफ़ी संत के पास गया और उनसे स्वयं को शिष्य बनाने के लिए जिद करने लगा। सूफ़ी संत ने कहा कि वह अभी शिष्य बनने के लिए तैयार नहीं है, लेकिन वह युवक ना माना। सूफ़ी संत ने उसे अपने साथ मक्का की यात्रा पर चलने को कहा। यात्रा सुचारू रूप से चल सके इसके लिए सूफ़ी संत ने कहा कि उनमे से एक नायक बन जाये और दूसरा उसका अनुसरण करे। युवक ने तुरंत उन्हें नायक बन जाने के लिए कहा और स्वयं उनका अनुसरण करने को तैयार हो गया। रात्रि में वे जहाँ रुके वहाँ वर्षा होने लगी तो सूफ़ी संत युवक पर चादर तान कर खड़े हो गए व उसे भीगने से बचाने लगे। जब युवक ने कहा कि यह तो उसे करना चाहिए तो सूफ़ी संत बोले कि वे नायक हैं और उनकी इच्छा है कि युवक को भीगने से बचाएँ। अगले दिन युवक ने कहा कि आज नया दिन है अत: हमें अपना कार्य बदल लेना चाहिए। आज मैं नायक बनूँगा और आप मेरा अनुसरण करें। सूफ़ी संत तुरंत सहमत हो गए। कुछ देर बाद भोजन

के लिए आग जलाने हेतु वह युवक लकड़ी बीनने जाने लगा। तुरंत सूफ़ी संत ने उसे रोकते हुए कहा कि वह ऐसा कोई काम ना करे क्योंकि अब वे स्वयं अनुसरण करने वाले थे और उनके रहते वे उस युवक को जो अब नायक था, अपनी सेवा नहीं करने दे सकते थे।

डॉ. चन्द्र गुप्ता जिन लोगों को ठाकुर रामसिंहजी साहब के पास लेकर गए उनमे से एक श्री सम्बन्ध भूषण मित्तल भी हैं, जो डॉ. चन्द्र गुप्ता के दामाद भी हैं। श्री सम्बन्ध भूषण पक्के आर्यसमाजी थे और संत-महात्माओं में उनका कोई विश्वास नहीं था लेकिन डॉ. चन्द्र गुप्ता क्योंकि उनके श्वसुर थे इसलिए वे उनके आग्रह पर यह सोचकर कि एक बार मिलने में क्या हर्ज़ है ठाकुर रामसिंहजी साहब के दर्शन करने को तैयार हो गए। उनके मन में ढेरों प्रश्न भी थे जिन्हें वे ठाकुर रामसिंहजी साहब से पूछना चाहते थे, और कुछ आशंकाएं भी थीं। लेकिन ठाकुर रामसिंहजी के सम्मुख पहुँचते ही उनका मन शांत हो गया, सभी कुछ भूलकर उन्हें असीम शांति का अहसास होने लगा। उन्होंने आगे बढ़कर ठाकुर रामसिंहजी के पाँव छूना चाहे तो ठाकुर रामसिंहजी साहब अपने पाँव पीछे हटाने लगे। वे किसी से अपने पाँव छुआना पसंद नहीं करते थे। तभी डॉ. चन्द्र गुप्ता ने कहा, महाराज इनका तो हक बनता है, ये तो आपके दामाद हैं। डॉ. चन्द्र गुप्ता की इस साधिकार बात को सुन ठाकुर रामसिंहजी साहब ने अपने पाँव जहाँ थे वहीं रोक लिए। श्री सम्बन्ध भूषणजी ने पाँव छूकर ठाकुर रामसिंहजी से पूछा कि वे उन्हें क्या भेट दें ? ठाकुर रामसिंहजी ने फ़रमाया-'अजी आप देने की मत सोचो। आप तो जो कुछ ले सकते हो लेलो।' उनका आशय अध्यात्मिक सम्पदा से था। बस तभी से श्री सम्बन्ध भूषणजी अपने गुरु महाराज ठाकुर रामसिंहजी साहब के हो रहे।

अपने सच्चे भक्तों की साधिकार विनती को भगवान भी प्रसन्नता से स्वीकार करते हैं। महात्मा कृष्णदासजी महाप्रभु वल्लभाचार्य के जो पुष्टिमार्ग के संस्थापक थे, प्रिय अनुयायी और श्रीनाथजी के मंदिर के

अधिकारी और उनके यश के गायक व चरण सेवक भी थे । एक बार किसी विशेष कार्य से उन्हें आगरा जाना पड़ा। आगरा उस समय मुगल ऐश्वर्य का केन्द्र था। वे आगरा के बाजार में घूम रहे थे कि इतने में ही उन्हें किसी युवती का कोकिल कंठ सुनाई दिया । वह अत्यन्त मधुर स्वर में गा रही थी । संत कृष्णदास कला प्रिय, कवि हृदय व्यक्ति थे । वे उस मधुर स्वर की तरफ आकृष्ट हो चल पड़े । वह युवती एक वारांगना थी । उसके मनमोहक रूप और शृंगार को देख उनके मन में यह भाव आया कि वह तो श्रीनाथ जी के सम्मुख पदगान करने हेतु ही स्वर्ग से उतर कर पृथ्वी पर उतरी है । उनके हृदय में भक्ति का सागर उमड़ पड़ा । उन्होंने निश्चय किया कि इसे श्रीनाथ जी के पदगान और नृत्य सेवा में समर्पित कर देना चाहिये । भगवान के विश्वासी भक्त के मन में यह पवित्र संकल्प उठते ही वे उसे क्रियान्वित करने चल पड़े । वह वारांगना उन्हें देख आश्चर्य में पड़ गई । उसे क्या पता था कि श्रीनाथ जी के परम कृपापात्र, उनकी सेवा के अधिकारी ने अपने प्रभू की रीझ और उनकी प्रसन्नता के लिये उसका घर पवित्र किया है । वह अपने सौन्दर्य और शृंगार से स्वर्ग से उतरी अभिशापग्रस्त देवी जैसी लग रही थी । संत कृष्णदास जी ने उसे एक टक निहारा और कहा कि तुम जो धन माँगोगी वह मैं दूँगा पर एकबार मेरे बालगोपाल श्रीनाथ जी को अपना पद-गायन सुना दो । उसके उद्धार का समय आ गया था और संत कृष्णदासजी की पवित्र कृपादृष्टि से उसका मन पवित्र हो चला था । वह नन्दनन्दन को रिझाने जायेगी, उनके सामने नाचेगी, गायेगी, यह सोचकर कृष्णदास प्रेममग्न हो गये । भक्त ने वारांगना को उसकी कला, रूप और सुषमा सहित श्रीकृष्ण के चरणों में समर्पित कर दिया । वह उनके साथ गोवर्धन आयी । वारांगना ने स्नान किया, स्वच्छ वस्त्र धारण किये और श्रीनाथ जी के दर्शन के लिये मन्दिर में शुद्ध व पवित्र हृदय से उपस्थित हुई । उत्थापन झाकी का समय था, यशोदा-नन्दन के अधरों पर स्मित की मन्द-मन्द केलि देखकर उसका रोम-रोम सिहर उठा, उसके नयनों में

गोपीजनबल्लभ समा गये । वह उनके रूप पर न्यौछावर हो गयी। मन्दिर में अनेक संत जन उपस्थित थे । कृष्णदास ने आनन्दमग्न होकर कहा कि आज तक संसारी लोगों को रिझाया है, आज हमारे लाला को रिझाकर अपना जीवन धन्य कर लो । ऐसा अवसर फिर नहीं मिलेगा । वाद्य बजने लगे और उनके साथ वारांगना के कण्ठ से संत कृष्णदास रचित पद फूट पड़ा:

'मों मन गिरिधर छवि पर अटक्यौ,
ललित त्रिभंग चाल पै चली के, चिबुक चारु गहि ठटक्यौ,
सजल श्याम घन बरन लीन है, फिर चित अनत ना भटक्यौ,
कृष्णदास किए प्राण निछावरि, यह तन जग सिर पटक्यौ'

श्रीनाथ जी की कृपा दृष्टि वरांगना पर पड़ गयी। दोनों के नयन चार हो गये । कृष्णदास जैसे सन्त की वाणी थी, फलवती हो गई, प्रभु ने वारांगना को अपने चरणों में स्थान दे दिया । गीत समाप्त होते ही प्रभु के अंग से एक ज्योति निकली व उसके प्राण उसमें समा गये । कृष्णदास के लाला ने उनकी भेंट स्वीकार कर ली, उनके अधिकारी भाव का उपयोग श्रीनाथ जी ने स्वीकार कर लिया ।

ठाकुर रामसिंहजी को क्षय रोग (टी.बी.) हो गया थी । पुलिस में कार्यकाल के दुरान एक दफा एक ऊँट उनके सीने पर गिर गया था और कालान्तर में उस चोट ने तपेदिक का रूप ले लिया जिसके इलाज के लिए उन्हें दो बार टी.बी. सेनेटोरियम में भर्ती होना पड़ा। उनके प्रिय सत्संगी श्री गोवर्धनलालजी एवम् श्री चिरंजीलालजी उनकी सेवा-टहल किया करते थे। ठाकुर रामसिंहजी उनकी सेवा से बहुत खुश थे। रोज की तरह एक दिन डॉ. चन्द्र गुप्ता अपनी साइकिल पर टी.बी. सनेटोरियम पहुँचे। ठाकुर रामसिंहजी कॉटेज के चबूतरे पर एक कुर्सी पर बैठे दातुन कर रहे थे, श्री चिरंजीलाल पास ही पानी का लौटा हाथ में लिए खड़े थे। डॉ. चन्द्र गुप्ता चबूतरे के नीचे ही रुक गए। ठाकुर रामसिंहजी साहब ने फ़रमाया- 'पधारो।' डॉ. चन्द्र गुप्ता निश्चल खड़े रहे। उन्होंने फिर फ़रमाया-'पधारो

।' डॉ. चन्द्र गुप्ता ने अर्ज किया-'महाराज, राजस्थानी में पधारो के दो अर्थ हैं (आने को भी पधारो कहा जाता है और जाने को भी), मैं नहीं समझा आपका क्या हुक्म है ? ठाकुर रामसिंहजी साहब एक क्षण चुप रहे फिर बोले-'डॉ. साहब, पधारो।' डॉ. चन्द्र गुप्ता ने एक शेर पढ़ा-

'जेरे दिवार खड़ा हूँ, तेरा क्या लेता हूँ,

देख लेता हूँ तपिश दिल की बुझा लेता हूँ

शेर सुनते ही ठाकुर रामसिंहजी साहब ठठाकर हँस पड़े, उनका बाँया हाथ श्रीचिरंजिलालजी के सीने पर लगा और वे पास ही के खम्बे से टकरा गये। ठाकुर रामसिंहजी साहब हँसी से लोट-पोट हो गए। फिर खुश होकर फ़रमाया-'डॉ. साहब के आने से रोम-रोम खिल जाता है, यह खूबी इन्ही में है।'

यह घटना सन 1968 की है। मोती डूंगरी, बुर्ज की तलहटी में 'पीर बाबा रामदेवजी' का एक छोटा मन्दिर है, जो ले. कर्नल शिवसिंहजी शेखावत ने बनवाया था। सन् 1968 का समय था, मन्दिर के चबूतरे पर पाँच-छः राजपूत सरदार, आध्यात्मिक चर्चा हेतु नियमित शाम के समय आकर बैठा करते थे। इनमें तीन सरदार ले. कर्नल शिवसिंहजी शेखावत, श्री पूरणसिंहजी और सरदारसिंहजी उर्फ कल्याणसिंहजी नियमित रूप से आया करते थे । कभी-कभी पूर्व जयपुर महाराजा श्री मानसिंहजी II भी आजाते थे।

एक दिन बातों-बातों में ले. कर्नल शिवसिंहजी ने नायला कुं. रामसिंहजी राठौड़ (चाँपावत) के सामने चुनौती रख दी कि "महात्मा ठाकुर रामसिंहजी भाटी आपके नाम राशी ही हैं, किसी का भोजन तो दूर, पानी भी नहीं पीते, यदि आप उनको अपने घर भोजन पर बुलालें, तो मान लेंगे, आप बात के धनी राठौड़ सरदार हैं ।" नायला कुँवर रामसिंहजी कुछ क्षण विचारमग्न रहे, फिर तत्काल हाँ भरते हुए बोले-'मैं जरूर ठाकुर रामसिंहजी महाराज को भोजन कराऊँगा, भोजन कल्याणसिंहजी के घर पर ही होगा, ये मेरा वचन है । अगर नहीं करा सका तो फिर कभी, आप

सरदारों को मुँह नहीं दिखाउँगा, लेकिन मैंने महात्माजी को कभी देखा नहीं, आप तीनों सरदार मेरे साथ चलो, मेरा परिचय करा देना, उनको भोजन के लिये मैं राजी कर लूँगा ।'

चारों सरदार ठाकुर रामसिंहजी के पास सिटीपैलेस, चन्द्रमहल जा पहुँचे। ठाकुर रामसिंहजी उस समय दीवान पर लेटे विश्राम कर रहे थे। नायला कुँवर ठाकुर रामसिंहजी के चरणों की ओर जा बैठे और मन-ही-मन दीन भाव से बात की लाज रखने की प्रार्थना करने लगे। दूसरे ही क्षण ठाकुर साहब उठ बैठे, नायला कुँवर से परिचय के पश्चात् उनका आग्रह सुन कहने लगे-'भोजन तो मैं कर लूँगा लेकिन एक बात मेरी भी माननी होगी, अगर आपके गुरू महाराज भी भोजन करना स्वीकार करलें, तो मैं भी साथ भोजन कर लूँगा ।'

कुछ दिनों बाद नायला कुँवर ने कार से पहले ठाकुर रामसिंहजी को साथ लिया और फिर अपने गुरू श्रीधरजी चौबेजी महाराज के निवास पहुँचे और दोनों महापुरुषों को साथ ले 'नायला हाऊस' आगये। वे दोनों महापुरुष पहली बार मिले थे, साथ-साथ बिठाकर भोजन परोसा गया। भोजन में खीर, पूरी और एक सब्जी थी। नायला कुँवर उनसे भोजन शुरू करने की प्रार्थना करने लगे। दोनों महापुरुष एक-दूसरे की ओर देख तो रहे थे, लेकिन भोजन प्रारम्भ नहीं किया । अचानक नायला कुँवर ने कहा-'भोग क्यों नहीं लगा रहे ? तुरंत पर्दा करो।' तुरन्त सभी सरदारों ने मिलकर अपने और सन्तों के बीच एक बड़ी चादर का पर्दा तान लिया। पर्दा लगाने के साथ ही नायला कुँवर हारमोनियम ले आये, पर्दे के आगे बैठ 'करमाबाई रो खिचड़लों' गाने लगे। पद गाते-गाते उनकी आँखें भर आई-गला रूँध सा गया। इसी क्षण ठाकुर रामसिंहजी ने अपने हाथ से पर्दा हटाकर एक ओर कर दिया। दोनों सन्तों ने एक साथ भोग लगाया। ठाकुर साहब ने सिर्फ एक बाटी खीर-जो हाथ में उठा ली थी-ही स्वीकार की । इस घटना के उपरान्त नायला कुँवर रामसिंह समय-समय पर ठाकुर रामसिंहजी के दर्शनार्थ जाते रहे।

ठाकुर रामसिंहजी डॉ. चन्द्र गुप्ता और उनके समस्त परिवार यथा उनकी पत्नी और सात बच्चों पर अत्यन्त कृपाशील रहे। उन्हें अपने सांसारिक और अध्यात्मिक जीवन में ठाकुर रामसिंहजी का आशीर्वाद मिलता रहा। सन 1962 में डॉ. चन्द्र गुप्ता की बड़ी सुपुत्री का विवाह होने वाला था। ठाकुर रामसिंहजी ने फरमाया-'डॉ. साहब ! चाहो तो शादी के खर्चे के लिए आप मेरी जमीन बेच दो।' डॉ. चन्द्र गुप्ता ने कहा-'महाराज ! जब आप मेरे साथ है, तो मुझे किसी बात की कमी नहीं।' विवाह के कुछ माह बाद जब एक बार ठाकुर रामसिंहजी साहब डॉ. चन्द्र गुप्ता के घर आये तब डॉ. चन्द्र गुप्ता की बड़ी सुपुत्री पुष्पलता वहाँ आई हुई थी। ससुराल में उनका कुछ कठिन समय गुजर रहा था। डॉ. चन्द्र गुप्ता के घर में एक कैलेंडर टंगा था जिसमें ग्राह (मगरमच्छ) गज को पानी में खींच रहा था और भगवान उसे बचा रहे थे। आपने उसे देखते हुए बहुत ही मधुर स्वर में एक लाइन गायी-'सुने री मैंने निर्बल के बलराम।' श्रीमती पुष्पलता बताती थीं कि उसके बाद उन्हें ऐसा लगने लगा जैसे कोई अज्ञात शक्ति हर वक़्त उनके साथ रहती है और उनके हर काम में उनकी सहायता करती है।

सन 60 के दशक में ही जब डॉ. चन्द्र गुप्ता बाबा हरिश्चन्द्र मार्ग पर तिमंजिले मकान की तीसरी मंजिल पर रह रहे थे तो बारिश के मौसम में एक शाम उस मकान पर भयंकर वज्रपात हुआ। दूसरी मंजिल पर लौहे का जाल लगा हुआ था, बिजली बड़ी तेज गड़गड़ाहट के साथ उस जाल से टकराई। डॉ. चन्द्र गुप्ता की छोटी सुपुत्री, जो खुले दालान में खाना बना रही थी, तभी वहाँ से उठकर भीतर हॉल में आ ही रही थी। उन्होंने अपने सामने आग की एक बड़े से गोले को तेज, कानों को बहरा कर दे ऐसी आवाज के साथ नीचे गिरते देखा। बिजली का झटका इतना तेज था कि पूरे मकान के बिजली के बोर्ड और स्विच सॉकेट से निकलकर बाहर गिर गए, सारे तार जल गए थे लेकिन कोई जान-माल का नुक्सान नहीं हुआ, सब बच गए।

एक बार डॉ. चन्द्र गुप्ता अपनी धर्मपत्नी श्रीमती दर्शना देवी के साथ सिटी पैलेस पधारे। रास्ते में उन्होंने कुछ केले और दो संतरे ख़रीदे। वे रिक्शा में जा रहे थे। गर्मी के कारण प्यास लगने पर एक संतरा उन्होंने रास्ते में ही खा लिया। बाकी फल सिटी पैलेस पहुँचकर अन्दर कोठरी में रख दिए। थोड़ी देर बाद ठाकुर रामसिंहजी ने श्री चिरंजिलालजी से कहा कि वे केले बाँट दें। वे उठे और केले व संतरा बाँटने के लिये उठा लिए। डॉ. चन्द्र गुप्ता उन्हें टोकते हुए बोले-'चिरंजिलालजी महाराज ने केवल केले बाँटने के लिए हुक्म फ़रमाया है, संतरा नहीं।' ठाकुर रामसिंहजी यह सुनकर बोले-'मुझे तो इनका झूठा भी खाना पड़ेगा। मेरा तो सारा खून ही डॉक्टर साहब का है, यदि इन्होनें एक बूँद भी मांग लिया तो मैं कहाँ से दूँगा ?'

एक बार ठाकुर रामसिंहजी साहब के एक परिचित कर्नल केसरी सिंह जो एक जाने-माने शिकारी थे और बहुत से शेरों का शिकार कर चुके थे, जिनका वे बहुत आदर करते थे, गंभीर रूप से बीमार हो गए। आपको टी.बी. हो गयी थी, मालूम चलने पर आप बेहोश होगये और लकवा मार गया। उन्हें टी.बी. सनेटोरियम में डॉ. हंसकुमार को दिखाया कहने लगे कि इन्हें कैंसर हो गया है, घण्टे दो घण्टे जीवित रहेंगे। डॉ. हंसकुमार, डॉ. सिंघवी, डॉ. सरीन, कर्नल साहब के मित्र रहे हैं, सब ने मिलकर राय दी, डॉ. एस. आर. मेहता को दिखाओ। डॉ. मेहता ने बताया कि उन्हें लकवा हो गया है और पहले लकवे का इलाज करना जरूरी है कैंसर का इलाज तो बाद में होता रहेगा। उन्हें एस.एम.एस. अस्पताल में भर्ती करवा दिया गया, इलाज चलता रहा लेकिन हालत पूर्ववत ही रही।

नायला कुँवर रामसिंह ने ठाकुर रामसिंहजी से निवेदन किया कि कर्नल साहब की हालत वैसे ही है, आप देख आवें तो अच्छा है। ठाकुर रामसिंहजी ने डॉ. चन्द्र गुप्ता से कहा कि होम्योपैथी में कोई दवा हो तो ले लो, कर्नलसाहब को देखने चलेंगे वे अस्पताल में भर्ती हैं। उस दिन

जगदीशचन्द्रजी भार्गव भी साथ थे । डॉ. चन्द्र गुप्ता ने जो सामने दिखी वो दवा उठा ली और ठाकुर रामसिंहजी के साथ हो लिए ।

कल्याणसिंहजी पहले से ही अस्पताल में मौजूद थे, ठाकुर रामसिंहजी को आते देख उन्होंने कर्नलसाहब के पुत्र रघुनाथसिंहजी से कहा-'देखो ! ये ठाकुर रामसिंहजी आरहे हैं, ये बड़े सिद्ध महात्मा हैं, जो कुछ भी कहें, कोई बात बतावें, आज इनकी बात मान लेना ।'

कर्नल केसरीसिंहजी के हाल-चाल पूछ ठाकुर रामसिंहजी अस्पताल से लौटने लगे । कर्नलसाहब बोल नहीं पाते थे, रुक-रुक कर टूटे-फूटे-शब्दों में आपने रामसिंहजी से कहा-'मेरे सिर पर हाथ रख आशीर्वाद दीजिए ।' ठाकुर रामसिंहजी ने मना करते हुए कहा-'आप बुजुर्ग हैं, हर दृष्टि से बड़े हैं, मैं आपके सिर पर हाथ कैसे रखूँ ?' लेकिन कर्नलसाहब और परिजनों के आग्रह पर ठाकुर रामसिंहजी ने कर्नलसाहब के सिर पर वरदहस्त रख दिये, कुछ क्षण आँखे बन्द कर प्रार्थना की और जब कॉटेज से बाहर आने लगे, तब रघुनाथसिंहजी को एकान्त में, अपने हाथ से दवा की दो पुड़िया देते हुए कहा, किसी को मालूम ना हो, डॉक्टरों को भी नहीं, एक खुराक रात 8 बजे दे देना, दूसरी खुराक कल सुबह 8 बजे देना, इतना कह तीनों अस्पताल से लौट आये ।

कुँ. रघुनाथसिंहजी ने पिता ठाकुर केसरीसिंहजी को रात 8 बजे एक पुड़िया खुराक देदी । अगली सुबह केसरीसिंहजी ने स्वयं ही अपने हाथ से चाय लेली । वे पूरी तरह ठीक होगये, दूसरी पुड़िया देने की जरूरत ही नहीं पड़ी ।

ठाकुर रामसिंहजी साहब के सबसे छोटे सुपुत्र श्री विष्णुसिंहजी जो गृहस्थ थे, उन्होंने विवाह के कुछ वर्षों बाद अपनी पत्नी और बच्चों को छोड़ नाथ संप्रदाय[8] स्वीकार कर लिया । गेरुँआ वस्त्र पहन और कानों में

[8] नाथ सम्पद्राय-सन्यासियों का एक सम्पद्राय जो भगवान शिव की आराधना करते हैं और हठ योग की साधना करते हैं, कानों में बड़े-बड़े कुंडल पहनते हैं ।

नाथ संप्रदाय के प्रतीक कुंडल पहन वे अपने गुरूजी के साथ जंगल में रहने लगे। उनके परिवार की दुर्दशा देख, डॉ. चन्द्र गुप्ता को उनका यह आचरण अत्यन्त अनुचित लगा। एक दिन वे उनके आश्रम जा पहुँचे। उन्होंने विष्णुसिंहजी के गुरु महाराज से उन्हें (विष्णुसिंहजी) को वापस अपने परिवार के पास लौट जाने को कहने के लिए कहा लेकिन उनके गुरूजी इसके लिए नहीं माने। बहुत कहने-सुनने पर भी जब विष्णुसिंहजी वापस लौटने को तैयार नहीं हुए तो डॉ. चन्द्र गुप्ता ने उनके कानों के कुंडल तोड़ डाले और उन्हें जबरन अपने साथ ले आने लगे। यह सब देख विष्णुसिंहजी के गुरुजी बोले, 'डॉक्टर साहब, क्या आप जानते हैं आपने क्या पाप किया है ? कुंडल तोड़ना शिवलिंग को तोड़ने के समान है। आपको मालूम है शिवजी कौन हैं ? डॉ. चन्द्र गुप्ता ने कहा, 'हाँ, मुझे मालूम है शिवजी कौन हैं, मैं ही शिव हूँ।' विष्णुसिंहजी के गुरुजी ने पूछा क्या आपको मालूम है ब्रह्माजी कौन हैं ? डॉ. चन्द्र गुप्ता ने कहा, 'हाँ, मुझे मालूम है ब्रह्माजी कौन हैं, मैं ही ब्रह्मा हूँ।' यह क्रम इसी तरह चलता रहा। विष्णुसिंहजी के गुरुजी विभिन्न देवी-देवताओं के नाम लेते रहे और डॉ. चन्द्र गुप्ता कहते रहे कि वे सब देवी-देवता वे ही हैं। अंत में विष्णुसिंहजी के गुरुजी ने हाथ में जल लेकर श्राप दिया, 'डॉक्टर साहब, आप सात दिन में मर जायेंगे।' सब बातों से बेपरवाह डॉ. चन्द्र गुप्ता विष्णुसिंहजी को अपने साथ वापस लिवा लाये और शाम को हमेशा की तरह ठाकुर रामसिंहजी साहब के दरबार में हाज़िर हो सब घटना उन्हें कह सुनाइ। श्राप देने की बात सुनकर ठाकुर रामसिंहजी साहब ने फ़रमाया-'बस, इतनी सी बात पर श्राप दे दिया। यह भी नहीं देखा की ये तो मस्त हैं।' सात दिनों में डॉ. चन्द्र गुप्ता का तो कुछ नहीं बिगड़ा पर सातवें दिन विष्णुसिंहजी के गुरुजी स्वयं परलोक सिधार गए। कुछ वर्षों बाद विष्णुसिंहजी पुन: नाथ संप्रदाय में लौट गए।

एक बार ठाकुर रामसिंहजी साहब के पास सिटी पैलेस में एक सत्संगी साहब ने उनके द्वारा लिखी पुस्तक की एक प्रति भेजी। शाम को जब डॉ.

चन्द्र गुप्ता ठाकुर रामसिंहजी साहब के पास हाज़िर हुए तो डॉक्टर चन्द्र गुप्ता ने उस पुस्तक को उलट-पुलटकर देखा और वापस रख दिया। ठाकुर रामसिंहजी साहब ने पूछा डॉक्टर साहब क्या देखा? डॉ. चन्द्र गुप्ता ने उत्तर दिया 'लिखने वाला हराम की औलाद है।' कुछ और लोग भी सत्संग के लिए आये हुए थे। डॉ. चन्द्र गुप्ता का ऐसा कथन सुनकर वे लोग हैरान रह गए। ठाकुर रामसिंहजी साहब तो कुछ ना बोले, लेकिन एक सत्संगी ने पूछ लिया, डॉ. साहब, आप ऐसा कैसे कह सकते हैं। डॉ. साहब ने कहा, 'लिखने वाले ने किताब में कहीं भी अपने गुरु महाराज का ना नाम लिखा ना उनका जिक्र किया, इसलिए वो हराम की औलाद है। डॉ. चन्द्र गुप्ता के गुरु महाराज स्वयं ना कहकर अपनी बात उनके मुँह से कहलवा दिया करते थे। वह किताब इस सिलसिला-ऐ-आलिया में स्वीकृत नहीं हुई।

अपने अंतिम दिनों में ठाकुर रामसिंहजी ने डॉ. चन्द्र गुप्ता को फरमाया-'जो कुछ मुझे देना था, मैंने दे दिया, जो कुछ 'बड़े घर' से (महात्मा राधा मोहन लालजी साहब से) दिलवाना था, दिलवा दिया, अब इस मिशन का काम आगे बढाओ। मेरे बाद जो करना है, शुरू कर दो।'

ठाकुर रामसिंहजी किसी से भी अपना काम करवाने में बहुत संकोच करते थे लेकिन उम्र बढने के साथ और खराब सेहत के कारण उनके लिए खाना बनाना कठिन हो गया। कुछ सौभाग्यशाली सत्संगी जिन्हें उनकी सेवा करने का अवसर मिला वे थे श्री भागीरथसिंह, श्री गोवर्धन लाला गुप्ता, श्री रवीन्द्रसिंह और श्री चिरंजीलाल बोहरा।

श्री गोवर्धन लाला गुप्ता उन लोगों में से थे जिन्हें डॉ. चन्द्र गुप्ता ठाकुर रामसिंहजी की सेवा में लेकर गए थे। जब वे ठाकुर रामसिंहजी की सेवा में हाजिर हुए, उस समय वे क्लर्क के पद पर कार्य कर रहे थे लेकिन ठाकुर रामसिंहजी ने उन्हें 'अफसर साहब' कहकर सम्बोधित करना शुरू कर दिया। उन्होंने कुछ दिन ठाकुर रामसिंहजी के लिए खाना बनाया और कुछ दिन बाद ही वे जे. के. सिंथेटिक्स, कोटा में 'लेबर ऑफिसर'

नियुक्त हो गए। वे परिवार सहित जयपुर से कोटा चले गए लेकिन रविवार को जयपुर ठाकुर रामसिंहजी के पास हाजिर हो जाते। एक बार उन्होंने कोटा से रात में ट्रेन पकड़ी जो जयपुर सुबह जल्दी पहुँच जाती थी। हुआ ऐसा कि उनको नींद लग गयी और वे समय से उठ नहीं पाए। जब आँख खुली तो ट्रेन जयपुर स्टेशन से निकल रही थी। उन्होंने जल्दी से अपना सामान उठाया और चलती ट्रेन से प्लेटफार्म पर कूद पड़े। उन्हें तो कुछ नहीं हुआ लेकिन जब वे ठाकुर रामसिंहजी के पास हाजिर हुए तो मालूम चला कि उसी क्षण जब वे चलती ट्रेन से प्लेटफार्म पर कूदे थे, ठाकुर रामसिंहजी अपने बिस्तर से नीचे गिर पड़े थे और उनके शरीर पर सूजन आ गयी थी। श्री गोवर्धन लाला गुप्ता अपनी नौकरी में तरक्की करते रहे और 'जनरल मेनेजर' पद से सेवानिवृत हुए।

श्री गोवर्धन लाला गुप्ता के बाद श्री रवीन्द्रसिंह और फिर अप्रैल 1970 से श्री चिरंजीलाल बोहरा ठाकुर रामसिंहजी के लिए खाना बनाने और अन्य कामों में उनकी सेवा-सहायता करने लगे। श्री चिरंजीलाल बोहरा सर गोपीनाथ पुरोहित के परिवार से सम्बन्धित हैं। सर गोपीनाथ पुरोहित की पत्नी श्रीमती एनी बाई श्री चिरंजीलाल बोहरा के पिता की मौसी थीं। श्री भैरुबख्श पुरोहित उनके पिता के मामा थे। श्री चिरंजीलाल बोहरा ठाकुर रामसिंहजी की सेवा में श्री जगदीश चन्द्र भार्गव के माध्यम से आए। श्री जगदीश चन्द्र भार्गव महात्मा डॉ. चतुर्भुज सहायजी के सत्संग में जाया करते थे, जहाँ उनकी मुलाक़ात ठाकुर रामसिंहजी से हुई और इसके बाद वे ठाकुर रामसिंहजी के पास हाजिर होने लगे। हालाँकि श्री चिरंजीलाल बोहरा का ठाकुर रामसिंहजी से परिचय भार्गव साहब के द्वारा हुआ लेकिन उनकी सेवा में हाजिर होने का सौभाग्य उन्हें डॉ. चन्द्र गुप्ता के माध्यम से मिला जो उन्हें सिटी पैलेस ठाकुर रामसिंहजी के पास ले गए और कहा कि ये भजन अच्छा गाते हैं। ठाकुर रामसिंहजी के कहने पर उन्होंने एक स्वरचित भजन सुनाया, जिसे सुनकर वे बोले कि अपने यहाँ बैरागी भजन नहीं गाते। ठाकुर रामसिंहजी ने उन्हें वह भजन-

'भज मन सतगुरु, सतगुरु, गुरु भज मन गुरु दाता रे ....' जो उन्होंने फतेहगढ़ में सुना था, एक कागज पर लिखा हुआ दिया और बोले कि इसे यादकर रोजाना प्रार्थना के रूप में गाएँ।

तब से श्री चिरंजीलाल बोहरा ठाकुर रामसिंहजी साहब के पास नित्य हाजिर होने लगे और उनके लिए खाना बनाने और अन्य कामों में उनकी मदद करने लगे। ठाकुर रामसिंहजी तब 72 वर्ष के हो गए थे और शौच से निवृत होने के लिए उन्हें किसी की आवश्यकता पड़ने लगी थी। चिरंजीलालजी रोजाना सुबह-शाम ठाकुर रामसिंहजी के पास हाजिर होते और दिन में ऑफिस जाते। श्री चिरंजीलाल के परिवार वाले और रिश्तेदार चिंता करने लगे कि कहीं उन्हें भी टी.बी. ना हो जाए या साधु की संगत में घर-बार छोडकर साधु ना बन जाएँ ? धीरे-धीरे इस कारण परिवार में काफी कलह रहने लगा। इस बारे में श्री चिरंजीलाल लिखते हैं- "28-9-1970 की शाम को बात अधिक बढ़ गई, पत्नी का कहना था- 'ठाकुरसाहब के पास जाओ, या मुझे घर में रखलो, दुनियाँ में फिर मैं नहीं।' इस विषम परिस्थिति से, यह दास विचलित हो गया। 'पत्नी का मोह', 'ठाकुरसाहब का प्रेमाकर्षण', दास किस ओर जाए ? अन्त में निर्णय रहा, कल ठाकुरसाहब के पास नहीं जाना।'

वे अर्न्तयामी सब कुछ देख रहे थे, प्रातः 29-9-70 को दास ने, अपने घर की छत से देखा, डॉ. चन्द्रगुप्त आरहे हैं, डाक्टर साहब को घर से बाहर ही रोक लिया, उन्होंने बताया, ठाकुरसाहब निमटने (शौच के लिए) नहीं गये-कहलवाया है, जब तक आप अस्पताल नहीं पहूँचोगे, तब तक वे निमटने नहीं जायेंगे। दास के दिल की जो स्थिति रही, उसे शब्दों में वर्णन करना तो असम्भव है, केवल इतना ही-'ठाकुर' (ठाकुर रामसिंहजी के नाम का सूचक, साथ ही 'स्वामी' का सूचक भी) को सेवा करने वालों की क्या कमी थी ? लेकिन इस दास जैसा अविश्वासी, अकारण, अहैतुकी कृपा करने वाले दयालु को छोड़ बैठा, लेकिन उन्होंने इस दास को नहीं छोड़ा। यह दास साईकल ले, घर पर बिना कहे, चुपचाप

डाक्टर साहब के साथ हो लिया, कॉटेज में प्रवेश करते ही वे सरल हृदय, नम्रता की प्रतिमूर्ती महापुरूष, हाथ जोड़कर कहने लगे-'मैंने आपके किसी काम का हर्ज तो नहीं किया ? मुझे माफ़ करना, मेरी वजह से आपकी पत्नी..।' दिल कई दिनों से भरा हुआ था, इतना सुनते ही यह दास रो पड़ा, हम पति- पत्नी के बीच की गुप्त बातें भी आप जानते हैं, फिर ऐसा क्यों हो रहा है ? ठाकुरसाहब ने सिर्फ इतना कहा-'गुरुभगवान आपकी सहधर्मिणी को सद्‌बुद्‌धि देगें, सब ठीक हो जायेगा।' पता नहीं उसी क्षण मन को क्या हुआ, जैसे कोई बात हुई ही नहीं।

यह दास नित्य की भाँति सेवाकार्य से निवृत्त हो, अस्पताल परिसर से बाहर निकला, फिर घर की बात याद आ गई, मन बेचैन हो गया, पता नहीं आगे क्या स्थिति होगी ? दास डरते-डरते घर पहुँचा। पत्नी दरवाजे के बीच बैठी मुस्करा रही थी। दास को बड़ा आश्चर्य हुआ। कहने लगी- 'जब तक आप ठाकुरसाहब के पास नहीं जाओगे, मैं तब तक खाना नहीं खाऊँगी। दास सोचता रहा, यह उनकी कैसी लीला है, जो पहले क्या कह रही थी, अब कुछ और कह रही है। दास ने बता दिया कि, ठाकुरसाहब के पास जाकर आरहा हूँ। जब नहीं मानी, तब कसम खाई, फिर विश्वास हुआ, पश्चात् आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही, जब पत्नी ने कहा- 'आपको ठाकुरसाहब से इतना प्रेम ही था, तो मेरी क्या फिक्र की, मैं मरती या जीती, आप तो चले जाते।' यह सुन दास बहुत पछताया, और अब भी - जब वह बात याद आती है, पश्चातापिय पीड़ा से यह दास बेचैन होजाता है। वास्तव में ठाकुरसाहब से प्रेम नहीं था। केवल मात्र प्रेम का भ्रम था, मन में अहंकार छिपा बैठा था कि यह दास उनकी सेवा और उनसे प्रेम करता है। इसलिए दास को नसीहत देने, पत्नी के मुख से उपयुक्त शब्द कहलवाये, अब तो केवल यही प्रार्थना है-'हे प्रभू! यह दास आपकी परीक्षा का पात्र नहीं-कृपा का पात्र है।'"

श्री चिरंजीलाल बोहरा उन दिनों अपने चाचा श्री हरीनारायणजी पुरोहित के घर में रह रहे थे। कुछ देर बाद ही उन्हें श्री हरीनारायणजी

पुरोहित ने अपने कक्ष में बुलाकर, पहली बार पूछा-'चिरंजी! मुझे ये तो बता, तू आखिर जाता कहाँ है, जिस कारण घर में कलह है ? श्री चिरंजीलालजी के शब्दों में-"दास ने सहज भाव से बता दिया- 'टी.बी. अस्पताल में एक महात्मा है 'ठाकुररामसिंहजी भाटी' उनके पास जाता हूँ । ठाकुरसाहब का नाम सुनते ही चाचाजी ने कहा-'अरे! रामसिंहजी हाल जीवै है? तू बार ही लेर चाल मन्हें।' दास उस क्षण चाचाजी की भाव- मुद्रा देख चकित रह गया, जैसे कोई भूला हुआ खजाना मिल गया हो. अति उत्साहित हो शीघ्र ही कपड़े बदल, ज्येष्ठ पुत्र पवन (8 वर्ष) को साथ लिया, और इस दास के साथ टी.बी. अस्पताल पहुँचे, कॉटेज में सीधे ठाकुरसाहब के नज़दीक जाकर, उनकी दोनों हथेलियों के पौछे पकड़ लिये, अपना सर झुकाया और हथेलियों को आशीर्वाद स्वरूप, अपने सर पर रगड़ने लगे । दोनों की आँखे भर आई, दास ने ऐसा दृश्य जीवन में पहली बार देखा, 'जबरदस्ती अपना अधिकार समझ, आशीर्वाद प्राप्त करना ।' ठाकुर साहब के मुख मण्डल पर उस समय, जो भाव थे और चाचाजी उन्हें जिस भाव से निहार रहे थे, उसका वर्णन करना तो असम्भव ही है, अब तो जब भी वह मंजर याद आता है, महसूस होता है, उनकी कृपा बरस रही है । ठाकुरसाहब कुछ देर चाचाजी से, पारिवारिक हाल-चाल पूछते रहे, पुत्र पवनकुमार पास ही बैठा था, उसे ठाकुरसाहब के चरणों में ढोक दिलवाई, पश्चात ठाकुरसाहब ने, इस दास से कह कर 'पवन' के दोनों हाथों में एक-एक मौसमी रखवाई । उस क्षण चाचाजी ने, इस दास की पीठ पर हाथ रखते हुए कहा, ये भतीजा है, 'बालजी' दादो भाई से छोटे भाई चतुर्भुजजी का बेटा ।' ठाकुरसाहब मुस्करा दिये, केवल इतना कहा-'अरे आप तो हमारे सम्बन्धी निकले।' तत्पश्चात् चाचाजी ने बताया कि आप हमारे पितास्वरूप हैं, आपने पिताजी की 'एवजी' की थी, चर्चा में ठाकुरसाहब ने बताया-'मैं धाणक्या में ज्यादा बीमार हो गया, तब रामनारायणजी (हरीनारायणजी के बड़े भाई, भैरुबख्शजी के बेटे) वहाँ पर

सर गोपीनाथजी को लेकर आगये, साथ में हकीम साहब को भी ले आए थे।'"

उसी वर्ष 3 सितम्बर को, जो ठाकुर रामसिंहजी का जन्मदिवस भी है, श्री चिरंजीलाल बोहरा ने कल्याण पत्रिका से उर्दू की एक गजल 'मैं तुझे पाने की हरदम जुस्तजू करता रहूँ ..'को कागज पर उतार ठाकुर रामसिंहजी को सस्वर सुनाया। उस समय चिरंजीलालजी के अलावा कॉटेज में या बाहर ठाकुर रामसिंहजी के पास कोई और नहीं था। उसी सप्ताह एक पुराने सत्संगी श्री घीसालाल शर्मा अपने साथ एक पोस्ट-कार्ड लेकर आए। लेकिन ठाकुर रामसिंहजी ने बिना उसे देखे या छूए, श्री घीसालालजी को वह पत्र चिरंजीलालजी को देने के लिए कहा। 6 सितम्बर का यह पत्र एक विद्यार्थी श्री श्यामसिंह राठोड़ ने लिखा था जिसमें उन्होंने लिखा था-"मैं श्री चिरंजीलाल से जो 'दरबार साहब' के दरबारी और भजन-गायक हैं, निवेदन करता हूँ कि वे सुर के साथ सम्पूर्ण गजल 'मैं तुझे पाने की हरदम जुस्तजू करता रहूँ ..' मुझे भेज दें, मैं दोहराता हूँ कि वे बिना भूले मुझे सुजानगढ़ के इस पते पर लिख भेजें।"

श्री चिरंजीलाल आश्चर्यचकित थे कि कैसे मात्र दो दिन पहले एकान्त में ठाकुर रामसिंहजी साहब के सामने गाई गजल के बारे में कोई विद्यार्थी जयपुर से इतनी दूर, सुजानगढ़ में बैठा, लिख सकता है ? लगभग चार-पाँच दिन बाद एक शाम दो व्यक्ति कॉटेज में ठाकुर रामसिंहजी के सामने विराजमान थे। उनमें से उम्र में छोटा व्यक्ति कोई पद गा रहा था। जैसे ही चिरंजीलालजी ने कॉटेज की दहलीज में पाँव रखा ठाकुर रामसिंहजी ने उसे रोक दिया और पधारने (लौट जाने) को कहा। दोनों आज्ञा पाते ही तुरंत उठ खड़े हुए, ठाकुर रामसिंहजी को प्रणाम किया और जूते पहन बिना एक भी शब्द बोले कॉटेज से बाहर चले गए जबकि साधारणतय लोग कुछ देर और रुकने की या कुछ कहने-सुनने की चेष्टा करते हैं। 'गुरुमुख' और 'मनमुख' में यही अन्तर है। यह शायद ठाकुर रामसिंहजी की अनुकम्पा थी या प्रेरणा या मात्र संयोग कि अगले

दिन श्री घीसालाल शर्मा उन दोनों व्यक्तियों को लेकर चिरंजीलालजी के कार्यालय पहुँच गए और उनसे उनका परिचय करवाया। उनमें बड़ी उम्र वाले सज्जन श्री गुमानमल मेड़तिया थे और छोटे वाले श्री श्यामसिंह राठोड़, जिन्होंने चिरंजीलालजी से पुन: उस गजल को लिखकर देने का अनुरोध किया। चिरंजीलालजी के पूछने पर कि उन्हें इतनी दूर बैठे कैसे उस गजल के बारे में पता चला, तो पहले तो उन्होंने टालने का प्रयत्न किया लेकिन आग्रह करने पर बोले-'मुझे ध्यानावस्था में ठाकुर रामसिंहजी के दरबार के दर्शन होते हैं और इसीलिए उस दिन ध्यानावस्था में ही मैंने वह गजल सुनी थी और पत्र लिख दिया था। ठाकुर रामसिंहजी ने मुझे यहाँ लोगों के बीच अपनेआप को अज्ञात रखने का हुक्म दिया है।'

श्री श्यामसिंह राठोड़ का जन्म सन 1945 में पश्चिमी राजस्थान के नागौर जिले के एक गाँव में हुआ था। बालक जन्मजात योगी था। 15 वर्ष की आयु में सन 1960 में बालक श्यामसिह गाँव 'मीठड़ी' उच्च प्राथमिक विद्यालय में अध्ययन हेतु जाने लगा। उन दिनों मीठड़ी गाँव में श्री गुमानसिंह मेड़तिया ग्राम सेवक पद पर सेवारत थे, स्कूल अध्यापक के अनुरोध पर मेड़तियाजी कभी-कभी विद्यालय में पढ़ाने चले जाते। एक दिन जब वे विद्यार्थियों को पढ़ा रहे थे और सभी छात्र इनकी बातें ध्यान से सुन रहे थे, सबसे पीछे बैठे एक छात्र का ध्यान उन्हें सुनने के बजाय पुस्तक पढ़ने में था। मेड़तियाजी ने पास जाकर देखा तो वह छात्र पाठयक्रम की पुस्तक के भीतर गीताप्रेस की 'भगवद्चर्चा' नामक पुस्तक छुपाकर पढ़ रहा था। पूछने पर छात्र का सटिक जवाब था-'इस पढ़ाई से क्या मिलेगा ? केवल पेट भरने के लिये रोजी-नौकरी बस ?' उत्तर सुन गुमानसिंह स्तब्ध रह गये, समझ गये कि यह छात्र पूर्व संस्कार युक्त कोई दिव्यात्मा है।

श्री गुमानसिंह मेड़तिया अध्यात्मिक रुझान वाले व्यक्ति थे और सतगुरू श्री पूर्णानन्दजी जी महाराज से 30 मार्च 1960 को दीक्षा प्राप्त

कर चुके थे। पूर्णानन्दजी महाराज ने उसी वर्ष शरीर से पर्दा कर लिया था । मेड़तियाजी छात्र श्यामसिंह राठौड़ की बात चीत से काफी प्रभावित थे। छात्र श्यामसिंह से आपका यह प्रथम परिचय था जो धीरे-धीरे प्रगाढ़ होता गया । एक दिन श्यामसिंहजी मेड़तियाजी के निवास पर जब वे पूजा में बैठे थे चुपचाप पहुँच गये। वहाँ पूर्णानन्दजी महाराज की तस्वीर देखते-देखते ही ध्यानस्थ हो गये। इसके बाद उन्होंने गुमानसिंहजी मेड़तिया से इस परम्परा की जानकारी प्राप्त कर, शिक्षा के साथ-साथ, उनके सानिध्य में साधन-भजन प्रारम्भ कर दिया। सन 1962 में एक दिन उनके मन में वैराग्य का भाव दृढ़ हो गया और अगली सुबह विद्यालय जाते समय गाँव की सीमा के पास, पुस्तकों का बस्ता फेंक, सहपाठियों से कहा- 'मैनें घर त्याग दिया, मेरा बस्ता घर पहुँचा देना और इतना कह गाँव 'गनेड़ी' होते हुये सतगुरू की खोज में, लोहार्गल तीर्थ की पहाड़ियों पर जा पहुँचे। वे थके हुये भूखे-प्यासे थे और शाम का अँधेरा भी घिर आया था । शान्त भाव से बैठने पर धीरे धीरे ध्यानस्थ हो गये । ध्यानावस्था में ही ब्रह्मलीन सतगुरू स्वामी पूर्णानन्द जी महाराज ने प्रकट हो उन्हें आशीर्वाद दिया और बोले-'तुम्हे कहीं जाने की जरूरत नहीं, तुम्हारा गुरू में हूँ, घर बैठे ही ज्ञान मिल जायेगा, वापस घर लौट जाओ और पहले अपनी शिक्षा पूरी करो।'

श्री श्यामसिंह राठोड़ वापस घर लौट आए और सन 1965 में 20 वर्ष की आयु में उन्होंने फिर से 'संस्कृत विद्यालय', नेछवा, जो उनके घर से 6 किलोमीटर दूर था, में अध्ययन शुरू कर दिया। उन दिनों उन्हें ध्यान में पहले पूर्णानन्दजी महाराज और फिर महात्मा रामचन्द्रजी महाराज (फतेहगढ़) के दर्शन होने लगे । उस समय उन्हें महात्मा रामचन्द्रजी महाराज के विषय में कोई जानकारी नहीं थी। विद्यालय से लौटकर और आवश्यक जरूरतों को पूरी कर वे अपने घर से करीब पचास गज दूर पुराने रघुनाथ मन्दिर में चले जाते और रात के दो बजे तक मन्दिर के गर्भगृह के पीछे बैठ ध्यान करते। वह मन्दिर रात में भी खुला रहता था।

उनकी इस साधना के बारे में माँ के सिवाय किसी और को मालूम नहीं था, जो उनकी प्रतीक्षा में जागी रहती और लौटने पर खाना परोसतीं। लगभग एक वर्ष की कठिन साधना के बाद उन्हें तीन महापुरुषों के दर्शन हुए। महात्मा पूर्णानन्दजी बीच में, ठाकुर रामसिंहजी उनकी दायीं ओर और महात्मा डॉ. चतुर्भुज सहायजी उनकी बायीं ओर। महात्मा पूर्णानन्दजी ने अपनी दायीं ओर इंगित कर बताया कि ये ठाकुर रामसिंहजी हैं, अबसे इनका सत्संग और बायीं ओर इंगित कर बताया कि ये महात्मा डॉ. चतुर्भुज सहायजी हैं, इनका साहित्य पढना। यह निर्देश मिलने के बाद उन्हें ध्यान में महात्मा पूर्णानन्दजी की जगह ठाकुर रामसिंहजी के दर्शन होने लगे।

युवावस्था में श्यामसिंहजी को परमार्थ पथ पर अग्रसर देख, घरवालों को चिन्ता हो गई कि कहीं साधू-सन्यासी ना हो जाए अत: 22 वर्ष की अवस्था में उनका विवाह कर दिया गया। इसके कुछ दिनों बाद सन 1968 में, श्री श्यामसिंह राठोड़ ने सुजानगढ़ से जहाँ वो पढाई कर रहे थे, मेड़तियाजी को जो उन दिनों जोबनेर कृषि महाविद्यालय में कोई प्रशिक्षण ले रहे थे, सूचित किया कि ठाकुर रामसिंहजी के पुलिस वर्दी में दर्शन हुए हैं लेकिन उनका पता मालूम नहीं है। फिर एक दिन वे अचानक ही जोबनेर पहुँच गए और मेड़तियाजी से कहा कि कल ठाकुर रामसिंहजी से मिलने जयपुर चलना है। शाम को पैदल घूमकर जब वे लौट रहे थे तो कॉलेज के कुछ छात्र उनके आगे-आगे चल रहे थे जिनमें से एक की तरफ इंगित करते हुए मेड़तियाजी से पूछा कि क्या वे उसे जानते हैं और उससे ठाकुर रामसिंहजी के बारे में पूछने को कहा। मेड़तियाजी ने उस युवक से पूछा कि क्या ठाकुर रामसिंहजी नाम के कोई संत हैं जो पुलिस में थानेदार थे ? यह युवक श्री हरीसिंह कविया थे, जिन्होंने कहा-'हाँ, हैं, मैं उनसे मिला तो नहीं हूँ लेकिन जयपुर में मेरे बड़े भाई श्री शार्दूलसिंह कविया उनके पास सिटी पैलेस में जाते हैं।

अगले दिन वे दोनों श्री हरीसिंह कविया और कुछ अन्य छात्रों के साथ ठाकुर रामसिंहजी से मिलने जयपुर पहुँच गए। इस पहली मुलाक़ात में परिचय हुआ, ठाकुर रामसिंहजी ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा- 'अच्छा हुआ आप आगए। अब कुछ गुरु-कृपा की चर्चा हो जाए।' और इसके बाद कुछ भजन हुए और वे सब लोग लौट आए।

अगले दिन सुबह 8 बजे श्री श्यामसिंह राठोड़ मेड़तियाजी को लेकर सिटी पैलेस आगए और मेड़तियाजी को वहीँ नजदीक स्थित यंत्रालय (जंतर-मंतर) देखने भेज दिया और स्वयं अकेले ठाकुर रामसिंहजी से मिलने चले गए। उस दिन ठाकुर रामसिंहजी से वे थोड़ी-थोड़ी देर रूककर तीन बार करीब दो-दो घण्टों के लिए मिले। दिन में तीन बजे के लगभग वे मेड़तियाजी के साथ जोबनेर के लिए वापस लौट गए।

सुजानगढ़ वापस पहुँचकर श्री श्यामसिंह शैक्षणिक पढाई के साथ-साथ अध्यात्मिक पथ पर उत्तरोत्तर प्रगति करते रहे। यह उन्हीं दिनों की घटना है, जोबनेर में मेड़तियाजी के पाँव में बहुत तकलीफदायक 'बाला' (नारू) रोग हो गया। इलाज से कोई फायदा नहीं हो रहा था। श्यामसिंहजी ने जयपुर आकर ठाकुरसाहब से निवेदन किया और जिस समय ठाकुरसाहब से निवेदन किया, ठीक उसी समय जोबनेर में, मेड़तियाजी के पाँव से पूरा 'बाला', बाहर निकलकर गिर गया।

महात्मा पूर्णानन्दजी और ठाकुर रामसिंहजी के घनिष्ठ आत्मिक सम्बन्ध थे। सन 1960 में पर्दा करने से पहले महात्मा पूर्णानन्दजी ने ठाकुर रामसिंहजी को श्यामसिंहजी के बारे में इंगित कर दिया था। ठाकुर रामसिंहजी के शरीर छोड़ने के ठीक तीन माह पूर्व, 14 अक्टूबर 1970 की सुबह श्यामसिंहजी मेड़तियाजी और श्री घीसालाल शर्मा के साथ उनके पास कुछ प्रसाद साथ में लेकर जयपुर हाजिर हुए। उस दिन सत्संग अधिक दिव्य रहा, ठाकुर रामसिंहजी गहरे ध्यान में उतर गए और ध्यान के पश्चात श्यामसिंहजी को आशीर्वाद स्वरूप वह प्रसाद देते हुए बोले-

'आज हमने आपकी अमानत आपको लौटा दी है, अब आप इसे सम्भालिये।' श्यामसिंहजी ने उन्हें झुककर प्रणाम किया।

अपनी जिज्ञासा को शांत करने के लिए गुमानसिंहजी के पूछने पर श्यामसिंहजी ने समझाया, "गुरू महाराजजी (स्वामी पूर्णानन्दजी) ने शरीर छोड़ा, तब बरेली 'सत्याश्रम' पर कोई योग्य उत्तराधिकारी नहीं था, अपनी आध्यत्मिक पूंजी, ठाकुरसाहब के पास रख, गुरू महाराज ने योग्य, उत्तराधिकारी को देने को कहा । 20 अगस्त 1960 को गुरू महाराज ने शरीर छोड़ा, तब से अब 14-10-1970 तक, उसे अमानत रूप में ठाकुरसाहब ने, अपने पास सुरक्षित रखा हुआ था । इसलिए ध्यानावस्था में गुरु महाराज ने ठाकुरसाहब की सोहबत करने का आदेश दिया था, अब ठाकुरसाहब ने उसी अमानत को लौटाने की बात कही है।"

इस घटना के बाद श्यामसिंहजी बहुत बदल गए, बहुत शांत, गम्भीर और चिंतनशील और 'परमहंस' की तरह रहने लगे। बाद में उन्होंने श्री अमरचन्दजी मेहता और ठाकुर रामसिंहजी के कई अन्य सत्संगियों पर अपने प्रेम और कृपा की वर्षा की।

इसी वर्ष 1970 में डॉक्टर चन्द्र गुप्ता ने ठाकुर रामसिंहजी साहब से साधिकार 6 लोगों के नाम सत्संग कराने की लिखित इज़ाज़त ली थी जिन में उन्होंने अपना नाम भी शामिल किया था। उनका नाम देखकर ठाकुर रामसिंहजी साहब ने स्वयं अपने श्रीमुख से फ़रमाया था-'डॉक्टर साहब आपने अपना नाम भी लिख लिया, आपको क्या जरुरत थी इज़ाज़त की ?' डॉ. चन्द्र गुप्ताजी ने कहा कि महाराज आपके पर्दा कर जाने के बाद लोग कहने लगेगें कि मेरा आपसे कोई सम्बन्ध नहीं था, इसलिए यह जरुरी था (डॉ. चन्द्र गुप्ता को महात्मा श्री राधा मोहन लालजी द्वार बैत किया गया था, लेकिन ठाकुर रामसिंहजी साहब ने उन्हें तकमील तक पहुँचाया)। इस इज़ाज़तनामे की प्रति यहाँ दी जा रही है।

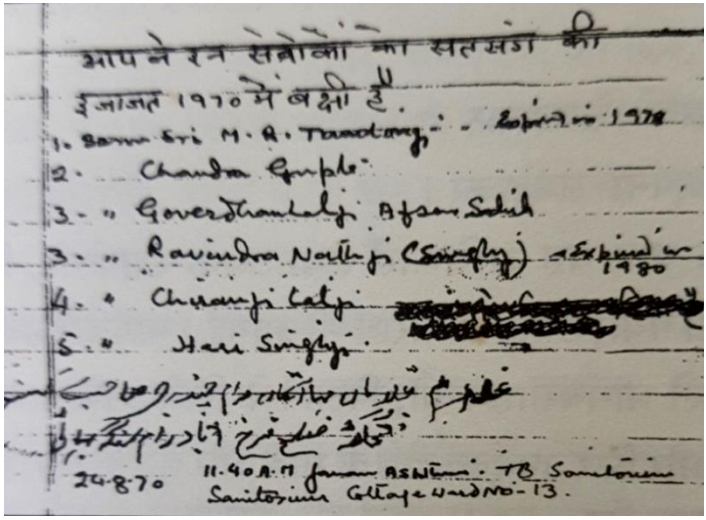

आपने इन सेवकों का सतसंग की
इजाजत 1970 में बक्शी है।
1. Sarva Sri M. R. Tandonji - - Expired in 1978
2. Chandra Gupta
3. " Goverdhanlalji Afsar Sahib
3. " Ravindra Nathji (Singhji) Expired in 1980
4. " Chiranjilalji [redacted]
5. " Hari Singhji
24.8.70 11.40 A.M. ASN TB Sanatorium Sanitorium Cottage Ward No-13.

ठाकुर रामसिंहजी के कई समकालीन महापुरुषों से बहुत आत्मिक सम्बन्ध थे। सूफ़ी-संत बाबा अल्लाह जिलाय और हाजीबाबा बगदादी ऐसे ही महापुरुष थे और हाजी-भाई अब्दुल्ला शाह एवम् अहमद शाह तो उम्र में बड़े होने पर भी ठाकुर रामसिंहजी का आगे बढकर स्वागत किया करते थे और अपने साथ ही उन्हें बैठाया करते थे।

ठाकुर रामसिंहजी का औरो के प्रति व्यवहार बहुत ही स्नेहसिक्त और सम्मानपूर्ण होता था, यहाँ तक कि छोटे बच्चों को भी वे आप कहकर सम्बोधित करते थे और उन्हें खाली हाथ ना भेजते। किसी ने उन्हें किसीसे नाराज होते या ऊँची आवाज़ में कुछ कहते नहीं सुना। वे कभी स्वयं अपने बारे में कोई बात ना करते बल्कि उनकी जुबान पर हमेशा अपने गुरु-भगवान का ही जिक्र रहता था। फिर भी नवम्बर 1970 में एक ऐसा अवसर आ उपस्थित हुआ कि उन्हें अपने श्रीमुख से अपनी अध्यात्मिक महिमा का बखान करना पड़ा।

नवम्बर 1970 में रविवारीय सत्संग समाप्ति के बाद श्री चिरंजीलालजी को पुराने सत्संगी, श्री आर.एल. मैनी ने बताया कि 'दाता

महाराज' (श्री गिरधरसिंहजी', भीलवाड़ा) आये हुए हैं और साथ दर्शन करने के लिए चलने को कहा । डॉ. चन्द्र गुप्ता भी जो वहाँ मौजूद थे, ठाकुर रामसिंहजी की इजाजत लेकर साथ होगए । दाता महाराज बनीपार्क में किसी व्यापारी के मकान पर अगले हिस्से में ठहरे हुए थे और पिछले हिस्से में बिधाणी के दो महात्मा जो सगे भाई थे ठहरे हुए थे । दाता महाराज के दर्शनार्थ आने वाले दर्शनार्थी, उनके आसन के आगे नारियल आदि रख कक्ष में तीन ओर की दीवार के सहारे पंक्तिबद्ध बैठे हुए थे और दाता महाराज के बाहर आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। क्योंकि दाता महाराज को आने में देर लग रही थी, ये लोग उन महात्मा-भाइयों के दर्शन के लिए मकान के पीछे वाले हिस्से में चले गए। उनके दर्शन करने के बाद डॉ. चन्द्र गुप्ता ने वापस चलने को कहा लेकिन श्री चिरंजीलालजी दाता महाराज की प्रतीक्षा करते हॉल में रुक गए, लेकिन डॉ. चन्द्र गुप्ता हॉल के भीतर नही गए। दाता महाराज के आने पर श्री चिरंजीलालजी ने उनका अभिवादन किया और डॉ. चन्द्र गुप्ता के साथ लौट आए।

लौटते समय रास्ते में श्री चिरंजीलालजी को कुछ हल्के चक्कर से आने लगे और हल्की सी बेचैनी भी महसूस होने लगी। मन उचाट सा हो रहा था। शाम को वे टी.बी. सेनेटोरियम भी अनिच्छा से ही गए। कॉटेज की सीढ़ियाँ चढ़ते हो ठाकुर साहब ने, मुस्कराते हुए पूछ लिया-'कहाँ गये थे आज ?' श्री चिरंजीलालजी ने कोई उत्तर नहीं दिया, मौन रहे। ठाकुर साहब ने फिर कुछ नहीं कहा। कुछ देर बाद ही डॉ. चन्द्र गुप्ता भी आगये और उन्होंने श्री चिरंजीलालजी से पूछा, आपकी तबीयत ठीक नहीं है क्या ? श्री चिरंजीलालजी अपनी मनोस्थिति शब्दों में बयाँ नहीं कर पाये और चुप ही रहे । ठाकुर साहब सब कुछ जान गये थे, कुछ क्षणों पश्चात् वे अक्समात वज्द में आगये, आपके चेहरे पर एक अद्भुत तेज छागया और फिर दाहिना हाथ सीधा ऊपर उठाते हुए फरमाया-'और तो फ़नाफिलशेख हैं, मैं तो फ़नाफ़िलमुरीद' हूँ, उसकी ओर से क्या कमी है ?'

कुछ क्षण रूक कर उन्होंने सहज भाव से एक घटना सुनाई, जिसका सारांश इस प्रकार है: "गुरू भगवान (महात्मा रामचन्द्र जी महाराज) कहीं जा रहे थे, रास्ते में एक मौलवी मिल गये, गुरू भगवान से गले मिलकर उनकी रूहानी पूँजी खीचनी चाही, लेकिन उलटा हो गया, खुद मौलवी साहब रूहानी पूँजी से खाली हो गये, उनकी तबीयत बहुत ज्यादा खराब हो छटपटाने लगे। बाद में मौलवी साहब अपने मुरीदों के साथ, दादागुरू महाराज (पू. फज्ल अहमद खाँ साहब) के पास आये, और गुरू भगवान की शिकायत की कि आपके शिष्य ने मेरे साथ ऐसा किया, दादागुरू महाराज ने लालाजी महाराज को उनके सामने बुलवाकर पूछा, लालाजी महाराज ने अनभिज्ञता प्रकट की, तब दादा गुरू महाराज ने कहा-"इन्होंने नहीं यह मैंने किया है।"

फिर कुछ क्षण रुककर ठाकुर रामसिंहजी बोले-'आपकी अमानत मेरे पास है, लो और इसे हिफाजत से रखो।' दाता महाराज के दर्शनार्थ जुटी भीड़ और शानो-शौकत देखकर श्री चिरंजीलालजी के मन में शायद कोई तुलनात्मक विचार आगए थे, जो अपने गुरु के प्रति अशिष्टता है और दाता महाराज ने उनके मन की बात जानकर उनकी निस्बत सल्ब कर (गुरु द्वारा शिष्य को सम्प्रेषित आत्मिक धार को रोक देना) ली थी और ठाकुर रामसिंहजी को लौटा दी थी।

सुमेरपुर के श्री दयाराम नागर, जो श्री चिरंजीलालजी के मित्र थे, का ठाकुर रामसिंहजी से सम्पर्क उनके माध्यम से हुआ। एक बार श्री नागर सुमेरपुर से आए हुए थे और श्री चिरंजीलालजी टी.बी. सेनेटोरियम गए हुए थे। जब वे लौटे तो श्री नागर के पूछने पर बतलाया कि वे ठाकुर रामसिंहजी के पास गए थे। यह 7 सितम्बर की देर रात्रि की बात है, श्री नागर तुरंत ठाकुर रामसिंहजी के दर्शन के लिए जाने की जिद करने लगे। श्री चिरंजीलालजी उन्हें अपने साथ लिवा ले गए। दयारामजी पहली बार ठाकुर साहब के रूबरू हुए थे, उन्हें देखते ही ठाकर साहब ने कहा-"अच्छा तो आज आप आ ही गये। देखिए ! यह प्रेम की धारा तो ऐसी है, जिसके

पास भेजोगे, उससे टकराकर फिर आपके पास ही लौट आयेगी, आप तो वहीँ से याद कर लिया करो ।"

सन् 1970 के प्रारम्भ में दयारामजी ने, नागौर में तगारी बनाने की फैक्ट्री लगायी थी । एक बार जब वे नागौर से बाहर गए हुए थे, उनके छोटे भाई घनश्याम तीन चार कारीगरों के साथ फैक्ट्री में ही सोते थे । एक दिन भोजन से निवृत्त हो, सब लोग विश्राम कक्ष में पहुँच गये । तभी देर रात रसोई घर में बर्तनों के टकराने की आवाज सुन एक कारीगर देखने गया । रसोई तक पहुँच वह जोर से चिल्लाकर वापस भागा और डरते- हाँफते हुये बताया कि एक औरत बुर्का पहने खाना बना रही है । सभी लोग मिलकर देखने गये लेकिन उन्हें वह औरत वहाँ नहीं दिखी । फैक्ट्री के सारे दरवाजे भीतर से बन्द थे, लेकिन अंगीठी जल रही थी और एक रोटी तवे पर और दूसरी चकले पर थी । इस सत्य को वे लोग नकार नहीं पाये और रात भर सो नहीं सके । दूसरे दिन दयारामजी नागौर पहुँच गये । इस घटना को सुन, मौन भाव से सोचते रहे कि अब क्या किया जाय । एक अधसिकी और एक कच्ची दोनों रोटियाँ देखी जो उनके सामने थीं । उन्होंने अधसिकी रोटी का एक टुकड़ा तोड़कर खा लिया और सबको धैर्य से समझाया कि देखो ! ये रोटी मैंने खा ली, मुझे कुछ नहीं हुआ, लेकिन वे भय मुक्त नहीं हुए।

दिन का भोजन करने के बाद विश्राम हेतु दयारामजी अपने कक्ष में गये और भीतर से दरवाजा बन्द कर लेट गये । कुछ देर बाद देखा कि एक महिला बुर्का पहने दरवाजे की ओर से, उनके पलंग के पायताने आकर खड़ी हो गई । दयारामजी भय मिश्रित आश्चर्य भाव से देख रहे थे । उन्होंने निर्भयता पूर्वक पूछ लिया, तुम कौन हो ? बुर्का उठाते हुए उस महिला ने कहा–पहचानिये, आपकी बेगम हूँ, आप पिछले जन्म में, अमरसिंह राठौड़ की फौज में सिपहसालार थे, नमाज़ पढ़ते समय आपकी हत्या कर दी गयी थी । मैं आपकी मजार पर दुआ करने गई, उस वक्त मुझे भी मार डाला । आपका फिर से जन्म हो गया लेकिन मैं आपको

देखने की लालसा लिये इस शरीर में मौजूद हूँ, विश्वास ना हो तो, आपके हाथों जमीन में गाड़ी हुई दौलत बतला दूँ, निकाल लो इसी जमीन के नीचे दबी है। दयारामजी ने स्पष्ट मना कर दिया, वह लूट का धन अब नहीं चाहिए, मैं अपने हाथों से कमाये धन का ही उपयोग करूँगा।

दयारामजी नागर जब दुबारा जयपुर आये, तब दिन में श्री चिरंजीलाल के साथ ठाकुरसाहब के दर्शनार्थ गये। वे देसी गुलाब के पुष्पों की माला साथ लेगये थे, जिसे ठाकुरसाहब ने सहर्ष स्वीकार कर, उसी क्षण आपको वापस लौटा दी। दयारामजी ने तब उपरोक्त घटना के बारे में ठाकुरसाहब से निवेदन किया। डॉ. चन्द्र गुप्ताजी भी वहीं बैठे थे, उन्होंने ठाकुरसाहब से निवेदन किया कि उस स्त्री की मुक्ति के लिए नागौर जाकर, उस स्थान पर सत्संग किया जाय। ठाकुर साहब ने सिर्फ इतना कहा-'अब जरूरत नहीं।' ठाकुर साहब के संकेत से दयारामजी को विश्वास हो गया कि वह स्त्री मुक्त हो गई है । बाद में दयारामजी ने बताया कि वह गुलाब की माला तीन दिन बाद घर पहुँच कर जब अटैची से निकाली, सारा घर खुशबू से महक गया और माला ऐसे लग रही थी जैसे अभी ताजा फूलों से बनाई गई है, उसकी एक भी पत्ती बिखरी नहीं थी जबकि देसी गुलाब के फूलों की पत्तियाँ तुरंत बिखरने लगती हैं।

श्री चिरंजीलाल बोहरा ने राजकीय सिंचाई विभाग में 'खलासी' के पद से अपनी नौकरी प्रारम्भ की थी। सन 1964 में 'जूनियर ड्राफ्ट्समैन' के पद पर पदोन्नति होने पर वे जयपुर शहर आ गए और बाद में तरक्की पाकर वे सीनियर ड्राफ्ट्समैन पद पर नियुक्त होगए । वे ठाकुर रामसिंहजी के विशेष कृपापात्र रहे और उन्हें एक नई कला 'हार्ड बोर्ड स्क्रैच पेंटिंग' को विकसित करने के लिए राज्य एवम् राष्ट्रीय स्तर पर सम्मानित किया गया।

एक सत्संगी जो ठाकुर रामसिंहजी के दर्शन के लिए आते रहते थे, मन में अभिलाषा लिए थे कि कभी उन्हें भी ठाकुर रामसिंहजी की सेवा का कोई अवसर मिले लेकिन उनकी यह अभिलाषा पूर्ण नहीं हो रही थी।

एक दिन, कुछ उदास जब वे उनके दर्शन कर टी.बी. सेनेटोरियम से जा रहे थे, विश्राम कर रहे ठाकुर रामसिंहजी ने उनकी ओर करवट बदल उनसे कहा कि क्या वे पंखा बंद कर देंगे ? उन सत्संगी भाई को बड़ी ख़ुशी हुई कि उन्हें कुछ तो सेवा का सौभाग्य मिला।

टी.बी. सेनेटोरियम की कॉटेज न. 13 से जहाँ वे भर्ती थे, ठाकुर रामसिंहजी 5 दिसम्बर 1970 को सिटी पैलेस लौट आए। उन दिनों उनकी छोटी सुपुत्री बाईसा लक्ष्मण कँवर और माताजी (ठाकुर रामसिंहजी की धर्मपत्नी), वे दोनों भी वहीं सिटी पैलेस में रुके हुए थे। उनके ठहरने की व्यवस्था उसी तल पर दूसरी ओर की गई थी। बाईसा लक्ष्मण कँवर किसी गम्भीर बिमारी से ग्रस्त हो गयी थीं, पाचन शक्ति एकदम कमजोर पड़ गयी थी, खाया-पीया कुछ हजम ना होता, यहाँ तक की दूध भी नहीं। दिसम्बर के अंतिम सप्ताह में तो उनकी हालत और भी बिगड़ गयी। दवा का कोई असर नहीं हो रहा था और उनके बचने की आशा क्षीण होती जा रही थी। यह देख माताजी ठाकुर रामसिंहजी के पास जाकर बोलीं-'हमारी बेटी मृत्यु के कगार पर है। अगर आप उसे देखना चाहो तो आकर देख लो।' ठाकुर रामसिंहजी तुरंत उठ खड़े हुए और बाईसा लक्ष्मण कँवर को देखने पहुँच गए। कुछ देर उनके बिस्तर की एक तरफ खड़े रहे और फिर उनका तकिया बदलवा दूसरा तकिया रखवाया। इसके बाद वे उनके बिस्तर के साथ रखे स्टूल पर उनके सिर को अपने हाथ में ले शांत भाव से बैठे रहे। कुछ ही क्षणों में बाईसा लक्ष्मण कँवर कुछ सचेत हुई तो ठाकुर रामसिंहजी ने बहुत मृदु और स्नेहिल शब्दों में कहा-'म्हारे बनुड़े ने भगवान अबार क्यूँ बुलारिया हैं ? म्हारे बना की तो अस्सी साल उमर है। आप बिराजो, सुखी रेवो-अब तो म्हाने जाणू है (मेरी बेटी को भगवान इतनी जल्दी अपने पास क्यों बुलाना चाह रहे हैं ? मेरी बेटी को तो अस्सी वर्ष जीना है। आप यहीं रहो, सुखी रहो, जाना तो मुझे है)।

लौटकर ठाकुर रामसिंहजी दीवान पर इस तरह निढाल हो गिर पड़े मानों उनकी सारी जीवन-शक्ति क्षीण हो गयी हो। उन्होंने अपना शेष जीवन बाईसा लक्ष्मण कँवर को दे दिया था। उस दिन से ठाकुर रामसिंहजी ने कुछ भी खाना छोड़ दिया और पानी भी कभी-कभार ज़रा सा पीते। निकट सत्संगियों को उन्होंने अपने महाप्रयाण का संकेत दे दिया था, कहने लगे थे कि मेरे चले जाने पर रोना मत। मुझे गाजे-बाजे के साथ ले जाना जैसे कुछ सम्प्रदायों में शिष्य अपने गुरु को दुल्हे (परमात्मा) के लिए दुल्हन की तरह सजा-धजाकर नाचते-गाते ले जाते हैं। एक दिन उन्होंने मीराबाई के भजन की एक पंक्ति गाई-'हेली म्हारी उन बिन रह्यो ना जाय।'

उसी सप्ताह उनकी सेहत ज्यादा बिगड़ गयी और उन्हें टी.बी. सेनेटोरियम ले जाने का निर्णय लिया गया। डॉ. चन्द्र गुप्ता और श्री गोवर्धनलाल गुप्ता ने एक-दूसरे के दोनों हाथ आपस में बाँध बीच में ठाकुर रामसिंहजी को बैठाया। ठाकुर रामसिंहजी बहुत उल्लासित लग रहे थे, गाने लगे-'राजा, राजा पालकी, जय कन्हैया लाल की।' टी.बी. सेनेटोरियम में भर्ती होने पर उन्हें कॉटेज न.19 में रखा गया।

जब वे पहली बार टी.बी. सेनेटोरियम में भर्ती हुए तो उन्हें कॉटेज न.13 मिली और दूसरी बार कॉटेज न.19 मिली। कुछ मरीजों और उनके परिचितों ने जो उन्हें जब वे पहली दफा टी.बी. सेनेटोरियम में भर्ती हुए तब से जानते थे, कहा कि ठाकुर रामसिंहजी कॉटेज न.19 ना लें क्योंकि वह कॉटेज किसी बाधा से ग्रसित थी और उनकी जानकारी में कोई भी व्यक्ति उस कॉटेज से जीवित नहीं लौटा। लेकिन ठाकुर रामसिंहजी दिसम्बर 1970 से करीब जनवरी 1971 के मध्य तक उस कॉटेज में रहे और इसके बाद लोगों का डर जाता रहा।

जनवरी 1971 के प्रथम सप्ताह में ठाकुर रामसिंहजी को अपनी आखिरी पेंशन के पचास रूपये मिले। उन्होंने वह राशि श्री चिरंजीलाल को देकर कहा कि वे उसे हकीम मातुरामजी को दे आएँ ताकि वे उससे

अपने लिए 'खरल' खरीद लें। मातुरामजी लोगों को मुफ्त दवा दिया करते थे और ठाकुर रामसिंहजी के पास आते रहते थे। उन दिनों ठाकुर रामसिंहजी का स्वयं का हाथ बहुत तंग था, वे स्वयं टी.बी. सेनेटोरियम में भर्ती थे, बाईसा लक्ष्मण कँवर का डॉक्टर और दवाइयों का खर्चा था, जो सब उसी पेंशन से निपटाया जाता था। शाम को श्रीमातुरामजी ठाकुर रामसिंहजी से मिलने आए और यह कहते कि खरल के लिए वे पैसों का इंतजाम कर लेंगे, उनसे रूपये वापस लेने की विनती करने लगे। उन्होंने बहुत आग्रह किया तो ठाकुर रामसिंहजी ने बहुत कोमलता से फरमाया- 'लालाजी साहब ! इस गरीब का पैसा भी किसी अच्छे काम में लग जाने दीजिए' और यह कहते उनकी आँखें नम हो आई और लग रहा था जैसे वो साक्षात् विनम्रता की मूर्ती हों। विवश हो लाला मातुरामजी को पैसे रखने पड़े।

ठाकुर रामसिंहजी के महाप्रयाण के एक दिन पहले उनके सुपुत्र श्री नारायणसिंहजी, पूज्य माताजी साहिबा का संदेश लेकर आये। ठाकुर साहब से निवेदन किया-'भामूसा (माताजी) ने कहलवाया है-'आप इस नश्वर शरीर को त्याग, परमात्मा के धाम जाने वाले हैं, कृपा करके, जो लोग आपकी सेवा-चाकरी में लगे हुए हैं, जाते समय उनको, परमात्मा की भक्ति और शक्ति प्रदान करने का आशीर्वाद अवश्य देते जावें।' ठाकुर साहब ने फरमाया-'नारायण ! उनसे कहना, मुझसे अधिक तो यह शक्ति आप में है, आप ही यह सब-कुछ कर सकती हैं।' यह संदेश भिजवाने के पश्चात् माताजी साहिबा उसी दिन सिटी पैलेस से घर गाँव मनोहरपुरा पधार गई, दिव्य दृष्टा माताजी को ठाकुर साहब के निर्वाण का पूर्वाभास था।

अगले दिन 14 जनवरी 1971 मकर संक्रान्तिपर्व था। ठाकुर साहब के थूक में हर बार खून आने लगा था, कभी कभी जमें हुए
खून के कतरे से भी आने लगे। ठाकुर साहब तकलीफ सहन कर रहे थे, लेकिन उनके चेहरे पर अखण्ड शांति और मात्र दृष्टा भाव था। शाम

ठाकुर साहब के ज्येष्ठ पुत्र श्री हरीसिंहजी आये। वे पिता से कुछ कहना चाहते थे, लेकिन उनकी हालत देख बेचैन हो गये, आँखे भर आई । वे उनका अंतिम संस्कार उनकी बगीची में करने के बारे में पूछना चाहते थे, लेकिन पूछने का उनका साहस नहीं हुआ । उन्होंने अपने बहनोई नाहरसिंहजी से ठाकुर रामसिंहजी से इसकी आज्ञा लेने को कहा। उन्होंने ठाकुर साहब से करबद्ध निवेदन किया-'हम आपकी सेवा करने लायक तो है नहीं, हमारी यह इच्छा है कि आपका दाह संस्कार बगीची में करें।' ठाकुर साहब ने इशारे से सहर्ष मौन स्वीकृति प्रदान कर दी।

ठाकुर रामसिंहजी और साध्वी गोपाल कँवरजी

उस रात श्रीनाहरसिंहजी, डॉ. चन्द्र गुप्ता, श्री गोवर्धनलालजी और श्री चिरंजीलालजी, ये चारों ठाकुर रामसिंहजी के पास कॉटेज में ही रुके। कॉटेज में ऐसी दिव्य शांति और कृपा बरस रही थी कि वे सब उसमें डूबते चले गए। 14-15 जनवरी की रात्रि 2.20 पर मकर महासंक्रान्ति के दिन ठाकुर रामसिंहजी की दिव्य आत्मा अपने प्रियतम के आगोश में समा गयी।

ठाकुर रामसिंहजी की कृपा से डॉ. चन्द्र गुप्ताजी के बच्चों को भी इसका पूर्वाभास हो गया था। जनवरी 1971 के प्रथम सप्ताह में डॉ. चन्द्र गुप्ताजी के बड़े भाई के निधन के कारण वे गाज़ियाबाद गए हुए थे। जैसे ही वे वहाँ से लौटे उनके पुत्र एवम् पुत्री ने उनसे अपने पूर्वाभास के बारे में कहा और उन्हें तुरंत ठाकुर रामसिंहजी के दर्शन के लिए जाने के लिए आग्रह किया । डॉ. चन्द्र गुप्ता ने अपनी डायरी में लिखा है: "10.01.1971-उन्होंने (ठाकुर रामसिंहजी) ने आदेश दिया कि अब मैं उनकी नजरों से दूर ना जाऊँ। 14.01.1971 की शाम उन्हें बहुत जोर से खाँसी आई। मैंने कहा-'महाराज ! मैं आपकी तकलीफ बरदाश्त नहीं कर सकता। या तो इसे रोकें, या शरीर त्याग देवें।' वे बोले-'कर्मों का फल तो भुगतना ही पड़ता है।' इसके बाद उन्हें खाँसी नहीं आई। तभी मेरी आँखें बंद हो गईं। देखा हंसों का एक जोड़ा, जिनकी गर्दन पर काली धारियाँ थी, मोती चुग रहे हैं। आसमान से सफेद, चमकता एक तारा उतरकर ठाकुर रामसिंहजी के सीने में समा गया। मुझे विश्वास हो गया कि महाराज अपना शरीर त्याग रहे हैं।"

समाधि मन्दिर परमसंत ठाकुर रामसिंहजी (जगतपुरा)

6
अनवरत कृपा-वृष्टि

अपने जीवनकाल में ही नहीं अपितु उसके बाद भी ठाकुर रामसिंहजी अपने सत्संगियों और उनके परिवार वालों पर अपनी अनवरत कृपा-वृष्टि कर रहे हैं। यह घटना डॉ. चन्द्र गुप्ताजी की छोटी सुपुत्री श्रीमती सुषमा मित्तल से सम्बन्धित है। उन्हीं के शब्दों में: "सितम्बर, 1972 की घटना है। तब तक गुरु भगवान (ठाकुर रामसिंहजी साहब) समाधि ले चुके थे। मेरे दूसरे पुत्र का जन्म हुआ था और मैं हॉस्पिटल से घर वापस आ गयी थी। उसी दिन शाम को दोनों वक़्त मिलने के समय मुझे बहुत अजीब अहसास हुआ। मेरा कमरा पीछे की तरफ था और उसी के दरवाज़े के सामने मकान मालिक के कमरे का दरवाज़ा था, जो बाहर बरामदे से होकर आता था। मुझे लगा कि उनके कमरे से निकलकर, एक वृद्ध व्यक्ति, जिसकी लम्बी सफ़ेद दाढ़ी थी और एक दम सफ़ेद कपडे पहने हुआ था और बहुत गोरा था, वो मेरे कमरे में मेरी चारपाई के पास आकर खड़ा हो गया और बोला कि या तो अपने बच्चे को दो या पति को। मैं सब कुछ देखती-सुनती पर मेरी अवस्था जड़ हो जाती और मैं कुछ नहीं कर पाती थी। उसके जाने के बाद मैं फिर सामान्य अवस्था में आ जाती। यह सिलसिला कई रोज चला, मैं कुछ नहीं कर पाती, कोई जवाब ना दे पाती और सोचती यह एक ही सपना, एक ही समय में मैं रोजाना क्यों देखती हूँ, मेरी हालत ऐसी क्यों हो जाती है ? मेरे पास इसका कोई जवाब नहीं था। मैं बहुत परेशान रहने लगी। तभी एक शाम मैंने देखा कि जब वह बूढा व्यक्ति मेरे पास आया और उसने अपना सवाल दोहराया तो उसी वक़्त मेरे और उसके बीच गुरु भगवान (ठाकुर रामसिंहजी) स्वयं साक्षात् खड़े थे। उन्होंने उससे कहा-'जा यहाँ से, तुझे कुछ नहीं मिलेगा।' यह सुनते ही वो वहाँ से चला गया। उसके बाद वो मुझे कभी नहीं दिखा। बस

उसी क्षण से गुरु भगवान मेरे जीवन में आ गए, उनके प्रति अटूट आस्था दिल में पैदा हो गई । उस बूढ़े व्यक्ति का जिक्र मैंने अपनी मकान मालकिन से किया तो वो तुरंत बोली, मैंने तो इसे मन्त्रों से बंधवाया था, शायद उसका असर समाप्त हो गया है । इसी ने इस घर में आते ही मेरे बेटे की बलि ले ली थी, ना जाने तुम कैसे बच गयी ? अब मैं फिर मंत्रोपचार करवाउंगी और उन्होंने करवाया । तब मैंने उन्हें गुरु भगवान के बारे में बताया ।"

श्री सम्बन्ध भूषण मित्तल जो ठाकुर रामसिहजी के कृपापात्र हैं, उन दिनों जयपुर में शास्त्री नगर में निवास करते थे । एक बार वे बाल कटवाने पास में ही एक छोटी सी दुकान पर चले गए । वहाँ ठाकुर रामसिंजी की फोटो देखकर उन्हें सुखद आश्चर्य हुआ और उन्होंने उस वृद्ध नाई से इस विषय में पूछा तो पता लगा कि वह वृद्ध नाई ठाकुर रामसिंहजी से परिचित था एवम् ठाकुर साहब कभी-कभी उसकी सेवा का लाभ उठाया करते थे । उस वृद्ध नाई ने जिसे ठाकुर रामसिंहजी परतापा के नाम से बुलाया करते थे, उन्हें अपना गुरु मान लिया था और उन्हें गुरु महाराज कहकर सम्बोधित करता था । पहले उसकी दुकान शहर में ही थी जिसे बाद में वह शास्त्री नगर ले आया था । शास्त्री नगर उन दिनों पूरी तरह विकसित नहीं हुआ था । परतापा वहीं एक झोपड़ी डालकर रहने लगा था । समय के साथ शास्त्री नगर विकसित होता गया और जयपुर की एक मुख्य कालोनी के रूप में बस गया । परतापा की झोपड़ी के पास ही एक बड़ी सड़क बन गई । एक दिन दो सरकारी अधिकारी वहाँ आये और उनमें से एक ने परतापा को बुलाकर कहा कि ऊपर पहाड़ी से एक छोटी सड़क आकर बड़ी सड़क से मिलेगी । उसकी झोपड़ी इस सड़क के मार्ग में आ रही है । उसे तीन दिन का समय दिया जाता है कि वह अपनी झोपड़ी वहाँ से हटा ले । परतापा ने हाथ जोड़कर अधिकारी से निवेदन किया-"हाकिम साहब, गरीब मार हो जासी ।" लेकिन अधिकारी ने उसे सड़क का नक्शा खोलकर दिखा दिया जिसमें वह झोपड़ी सड़क के बीच

आ रही थी । घर जाकर परतापा ने यह बात अपनी पत्नी को बतलाई तो वह रोने लगी । परतापा ने उसे रोते देख कहा, "गुरु महाराज समर्थ हैं । तुम रोना बन्द करो ।" और उसके बाद वह ठाकुर रामसिंहजी की फोटो के समक्ष प्रार्थना में बैठ गया । इधर उस रात उस अधिकारी को नींद नहीं आई, परतापा के शब्द-'हाकिम साहब, गरीब मार हो जासी' रह-रहकर उसके कानों में गूंजने लगते । वह कमरे में इधर-उधर चक्कर काटने लगा । थोड़ी देर में ही उसके दिमाग में एक नक्शा उभरने लगा । उसने सड़क का नक्शा निकाला और उसमें थोड़ा फेर बदल किया जिससे परतापा की झोपड़ी बच गयी ।

यह सितम्बर सन 1970 की बात है जब ठाकुर रामसिहजी टी.बी. सेनेटोरियम में भर्ती थे और श्री चिरंजीलाल उनकी सेवा में थे । एक दिन यकायक उनके मन में खयाल आया कि ठाकुर साहब की आयु 72 वर्ष की हो चली है और अत्यधिक बीमार रहते हैं सो शायद उन्हें अब कभी भी उनके साथ, फतेहगढ़ जाने का सौभाग्य नहीं मिल पायेगा ? वे अभी यह सोच ही रहे थे कि ठाकुर साहब ने अंगुली से दाँत साफ करते-करते, दायें हाथ में अपना एक दाँत लेलिया, हाथ सीघा ऊपर उठाते हुए, अति आनन्दित भावमुद्रा में उन्हें आशीर्वादात्मक आदेश प्रदान किया, "ये दाँत' फतेहगढ़ में गंगा में डाल देना ।"

सन 1973 में ठाकुर रामसिहजी के गुरु-भगवान महात्मा श्री रामचन्द्रजी महाराज के सौवें अवतरण दिवस पर श्री चिरंजीलाल को फतेहगढ़ जाने का अवसर मिला । पूज्य माताजी ने प्रतिनिधि के तौर पर उन्हें फतेहगढ़ जाने की आज्ञा दी और बोलीं कि वे ठाकुर रामसिहजी का दाँत जो उनके पास रखा है ले आएँ । माताजी ने वह दाँत और ठाकुर रामसिहजी की जन्मपत्री अपने हाथों से बनाए लाल रंग के एक छोटे से बटुए में रखकर उनके गले में पहनाकर कहा-'बना ! आज ठाकुर साहब थांके साथ जारिया हैं ।' श्री चिरंजीलालजी को तुरंत वह बात स्मरण हो आई कि ठाकुर रामसिहजी ने वह दाँत उन्हें गंगाजी में विसर्जित करने

को कहा था। 8 फरवरी 1973 (बसंत पंचमी) को श्री चिरंजीलालजी ने वह दाँत और जन्मपत्री निकाल बटुए सहित फतेहगढ़ गंगाजी में विसर्जित किए। जैसे ही नदी के पानी से बटुए का स्पर्श हुआ एकदम से तेज हवा चलने लगी, जिससे अब तक शांत बहती गंगाजी के जल में भी तेज तरंगे उठने लगीं। जन्मपत्री जल पर तैरती हुई कुछ ही क्षणों में बहुत दूर निकल गई। ऐसा लगा जैसे गंगा माँ हिलोरें लेकर, स्वयं ठाकुर मंगलसिंहजी भाटी के सन्त सुपुत्र श्री रामसिंहजी भाटी के अवशेषों को स्वीकार कर रही है।

स्वामी मुक्तानन्दजी गणेशपुरी (थाणे, महाराष्ट्र) के एक जाने-माने संत हुए हैं। यह घटना उनके आश्रम से प्रकाशित एक पत्रिका में छपी थी। उनके परलोकगमन के पश्चात, उनके एक अनुयायी की, जिसने कभी उनके दर्शन नहीं किए थे, यह उत्कठ इच्छा हुई कि वह उनके दर्शन प्राप्त करे और उनके दर्शन ना होने के कारण वह बहुत उदास रहने लगा। एक रात उसे एक दिव्य पुरुष की झलक दिखलाई दी और जैसे ही वह उनके चरणों में झुकने वाला था, उनहोंने कहा-'मैं स्वामी मुक्तानन्द नहीं हूँ, मेरा नाम रामसिंह है और मैं फतेहगढ़ के महात्मा श्री रामचन्द्रजी का शिष्य हूँ। मुझसे आपकी उदासी देखी नहीं गयी, इसलिए मैं यह कहने आया हूँ कि यदि आपको स्वामी मुक्तानन्दजी के दर्शन करने हैं तो मेरे गुरु-भगवान महात्मा श्री रामचन्द्रजी महाराज के सालाना भण्डारे में उपस्थित हो जाएँ। उस अवसर पर सभी संत वहाँ पधारते हैं और आपको अवश्य ही अपने गुरुदेव के भी दर्शन हो जाएँगे।' वह व्यक्ति फतेहगढ़ भण्डारे की तिथि आदि की जरूरी जानकारी एकत्र कर ईस्टर छुट्टियों में (यह भण्डारा गुड फ्राइडे से ईस्टर रविवार के दौरान आयोजित होता है) फतेहगढ़ भण्डारे में हाजिर होने जा पहुँचा। पहले दो दिन तो उसे स्वामी मुक्तानन्दजी के दर्शन नहीं हुए लेकिन आखिरी दिन ईस्टर रविवार को कुछ निराशा लिए, आखिरी सत्र में शामिल हो मन-ही-मन प्रार्थना करने लगा। तभी उसे लगा जैसे मोर-पँखों से उसकी पीठ छूकर स्वामी

मुक्तानन्दजी ने उसे आशीर्वाद दिया है, जैसा कि स्वामी मुक्तानन्दजी किया करते थे। उसने आँखें खोलकर देखा तो सामने की पंक्ति में स्वामी मुक्तानन्दजी मुस्कुराते हुए उसकी ओर देख रहे थे।

यह सन 1981 की घटना है, उस साल जयपुर शहर में बहुत अधिक वर्षा हुई थी, जो लगातार 30 घण्टे होती रही। परिणामतः रास्ते और बाज़ार मिट्टी और कीचड़ से पट गए और लोग बीमार पड़ने लगे, आँखों की बीमारी फ़ैल गयी। हर दूसरा व्यक्ति बीमार था और अस्पताल मरीजों से भर रहे थे। श्री श्रवणसिंह जो श्री हरीसिंहजी के जानकार थे और ठाकुर रामसिहजी के सत्संगी, भी बीमार होकर जयपुर के एस.एम.एस. अस्पताल में भर्ती होगए। सात-आठ दिन डॉ. इंदु अरोड़ा का ईलाज चलता रहा। दवा और अच्छी देखभाल के बावजूद भी उनकी स्थिति में कोई सुधार नहीं हो रहा था। डॉक्टर आपस में चर्चा करने लगे कि दूसरी आँख को बचाने के लिए ज्यादा खराब आँख को निकालना पड़ेगा। श्री हरीसिंहजी रोजाना उनका हालचाल जानने अस्पताल जाते थे और श्री सम्बन्ध भूषण मित्तल भी चार-पाँच बार उनसे मिलने गए। हरीसिंहजी श्रवणसिंहजी को गुरु महाराज (ठाकुर रामसिहजी) से प्रार्थना करने को कहते लेकिन श्रवणसिंहजी का जवाब होता-'मैं प्रार्थना क्यों करूँ ? क्या उनको दीखता नहीं है कि मेरी हालत क्या हो रही है ?' डॉक्टर्स ने जिस दिन आँख निकालना निश्चित किया था, उसकी पूर्ववर्ती शाम हरीसिंहजी उनसे मिलने गए और वही गुरु महाराज से प्रार्थना करने वाली बात दोहराई और बोले मान लो कोई चपरासी है जिसकी बेटी की शादी अगले दिन होने वाली है, उसका बॉस उसे अच्छी तरह जानता है और यह भी जानता है कि अगले दिन उसकी बेटी की शादी है लेकिन क्या उसका बॉस उसे उसके बिना माँगे छुट्टी पर जाने को कह सकता है ? बॉस छुट्टी देने को तैयार है लेकिन चपरासी को अर्जी लिखकर छुट्टी तो माँगनी ही होगी ताकि बॉस छुट्टी स्वीकार कर सके। यह उदाहरण एकदम सटीक बैठा। श्रवणसिंहजी ने उस रात दिल से गुरु महाराज से

प्रार्थना करी कि एक आँख निकलवाकर वो जीवित नहीं रह पाएँगे और इससे तो मरना बेहतर है। पूरी रात वो करवटें बदलते रहे, आँखों से नींद उड़ गयी थी। रात के अंतिम प्रहर में उन्हें लगा जैसे गुरु महाराज सिरहाने खड़े हैं और उन्होंने उनकी वह आँख खोलकर उसमे फूँक मारी जिससे आँख में से रुई जैसा कुछ निकलकर उड़ गया। उन्हें बड़ी तसल्ली हुई और उनकी आँख लग गई। सुबह 10 बजे करीब जब डॉक्टर उन्हें देखने आया तो वो भ्रमित हो गया कि कौन सी आँख निकालनी है, दोनों ही आँखें ठीक दिख रही थीं। डॉ. इंदु अरोड़ा भी देखने आयीं और अचम्भित हो गयी और श्रवणसिंहजी को उसी दिन अस्पताल से छुट्टी मिल गयी।

श्री सम्बन्ध भूषण मित्तल जब नौकरी कर रहे थे उस दौरान एक बार उनकी चुनावों में ड्यूटी लगी। चुनाव समाप्त होने पर बैलट बॉक्स जमाकर उन्होंने रसीद ले ली और अपने साथी के साथ अपने स्कूटर पर सवार हो रसीद को दूसरे ऑफिस में जमा कराने चल पड़े लेकिन रसीद रास्ते में ही कहीं गिर गयी। इस गम्भीर चूक पर दोनों बहुत परेशान थे, बात नौकरी पर बन आने की थी। गुरु महाराज को यादकर वे उसी रास्ते लौट पड़े। चार-पाँच किलोमीटर का व्यस्त रास्ता था जिस पर कागज के एक छोटे से टुकड़े का मिलना लगभग असम्भव था लेकिन तभी उनका स्कूटर एक जगह बंद पड़ गया। नीचे कागज का एक टुकड़ा पड़ा था, उठाकर देखा तो वह वही रसीद थी।

यह घटना अभी कुछ वर्ष पूर्व की ही है। श्री सम्बन्ध भूषण मित्तल ने रिटायरमेंट के बाद स्टेट बैंक की सोडाला ब्राँच में पेंशन अकाउंट खुलवाकर डेबिट कार्ड ले लिया। एक बार एटीएम से पैसा निकालने गए तो वहाँ धोखे से किसी ने उनके कार्ड को बदल दिया और उनके अकाउंट से चार लाख रूपये निकाल लिए। जब उन्हें मालूम चला तो वे तीन-चार दिन परेशान रहे फिर क्योंकि रकम बड़ी थी, पुलिस में रिपोर्ट लिखवा दी। करीब एक सप्ताह बाद वे समाधि मन्दिर (ठाकुर रामसिंहजी की

जगतपुरा स्थित समाधि) गए और गुरु महाराज से मानसिक शांति देने की प्रार्थना की। लगभग चार महीने बाद एक पुलिस इंस्पेक्टर उनके घर आया और बोला कि वो बदमाश तो रिपोर्ट लिखाने के कुछ दिन बाद ही पकड़ा गया था और सारा पैसा भी मिल गया था जिसका आधा दो लाख पुलिस विभाग ने कोर्ट में जमा करवा दिया जो श्री मित्तल को कोर्ट से मिल जाएगा लेकिन उसके साथ जिन्दगी में यह पहली बार हो रहा था कि शेष दो लाख रूपये की वजह से उसे चैन नहीं आ रहा था। कोई अदृश्य शक्ति उसे अपनी जेब से वह पैसा लौटाने को मजबूर कर रही थी जो पुलिस वालों ने आपस में बाँट लिया था। वो पुलिस इंस्पेक्टर वे दो लाख रूपये लौटाकर मानसिक शांति प्राप्त करना चाहता था। इस प्रकार श्री मित्तल को घर बैठे गुरु महाराज की कृपा से अपनी पूरी रकम वापस मिल गयी।

7
उनके श्रीमुख से

अध्यात्म का अथाह सागर होते हुए भी ठाकुर रामसिंहजी अपनी रूहानी हस्ती को छिपाए रहते, किसी पर जाहिर ना करते थे। कुछ गिने-चुने लोग जिन्हें उन्हें निकट से जानने और उनके सम्मुख उपस्थित होने का अवसर मिला, वे इस बात पर गर्व कर सकते हैं कि उन्हें श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित स्थितप्रज्ञ महापुरुष के दर्शन करने का अनुपम सौभाग्य मिला।

ठाकुर रामसिंहजी अत्यन्त मितभाषी थे । उपदेश देना, व्याख्यान करना उनके स्वभाव में नहीं था, लेकिन साधारण बातचीत में ही वे अध्यात्म सम्बन्धी गूढ़ बाते इतनी सरलता से कह जाते थे जो सुनने वाले के हृदय में सहजता से उतर जाती । उनके पास आने वाले सत्संगी बन्धुओं ने उनके श्रीमुख से निकली बहुत सी बातें व किस्से अपने पास सहेजकर रखे हुए हैं । श्री चिरंजीलाल बोहरा ने बहुत सी सामग्री को लिपिबद्ध भी किया जो बाद में श्री नन्दलाल पारीक द्वारा राजस्थान पत्रिका में क्रमश: प्रकाशित भी की गई ।

ठाकुर रामसिंहजी को उर्दू, हिन्दी, मारवाड़ी व फारसी भाषाओं में बहुत सी कहावतें, मुहावरे दोहे व किस्से याद थे जो वे अवसर के अनुसार अपनी बातचीत में लोगों को विषय को सरलता से समझाने के लिये प्रयोग करते थे । उनकी निगाह में सच्चरित्रता व सद्व्यवहार की कीमत उपनिषदों को पढ़ने से कहीं अधिक थी । उनके गुरु भगवान महात्मा रामचन्द्रजी महाराज फरमाया करते थे:

कुतुब महज सूखी हुई हड्डियाँ हैं,
चबाए इनको कौन ये सख्त जां हैं,
बहुत कम मिली मुझको जिन्दा किताबें
नसीबों से मिलती हैं खालिस शराबें।

अर्थात्, शास्त्रों का असली तात्पर्य समझना आसान नहीं है, उन्हें समझने के लिये बहुत अधिक प्रयास की आवश्यकता होती है, लेकिन संतजन स्वयं जीवित शास्त्र होते हैं। और उनका सतसंग केवल सौभाग्यवश ही प्राप्त होता है।

ठाकुर रामसिंहजी फरमाया करते थे कि जो कुछ भी ज्ञान शास्त्रों में उल्लेखित है वह संतों के हृदय में विद्यमान रहता है लेकिन जो ज्ञान संतों के हृदय में होता है उसको अन्यत्र कहीं मिलना कठिन है । संतों की वाणी से ही शास्त्रों की प्रमाणिकता सिद्ध होती है । उन्हीं के रूप में परमात्मा की दया कृपा प्रवाहित होती है ।

संतजन चमत्कार नहीं करते लेकिन कभी-कभी उनकी इच्छा को कार्यरूप देने के लिये प्रकृति में चमत्कार हो जाते हैं । महाभारत युद्ध के समय श्रीकृष्ण भगवान की इच्छानुसार सूर्यदेव का अस्त होने के बाद पुनः प्रकट होना और आचार्य निम्बार्क के आदेश पर सूर्य का नीम वृक्ष पर एक जगह स्थिर होना इसके उदाहरण हैं । आदिगुरु शंकराचार्य ने भी प्रार्थना कर अपनी पूज्य माता के लिये गंगा नदी को अपने घर के निकट प्रकट कर लिया था ।

ठाकुर रामसिंहजी कहा करते थे कि सतगुरु अपनी इच्छा शक्ति से शिष्य के हृदय में दिव्य प्रेम का बीजारोपण कर देता है जो अभ्यास द्वारा समय आने पर एक विशाल वृक्ष के रूप में विकसित हो जाता है । इसके लिये शिष्य द्वारा अपने अहं का त्याग आवश्यक है क्योंकि बीज मिट्टी में ही अंकुरित होता है । समय-समय पर ठाकुर रामसिंहजी ने कहानी-किस्सों आदि के माध्यम से जो संदेश दिये उन्हें विषयवार प्रस्तुत करने का यह एक प्रयास है।

ईमानदारी की कमाई

ठाकुर रामसिंहजी कहा करते थे तसव्वुफ (सूफीवाद, अध्यात्म, ब्रह्मवाद) ना तो कोई फलसफा है ना ही कोई कर्मकाण्ड । तसव्वुफ का ताल्लुक आचरण से है एवम् यह व्यवहारगत है । सूफ़ी साधना के

व्यवहारिक आचरण से सम्बन्धित होने के बारे में हजरत अबु-हफ्स का कहना था, सूफ़ी साधना आचरण से सम्बन्धित है, प्रत्येक काल में सूफ़ी साधना का सम्बन्ध आचरण से ही है; प्रत्येक लोक में यह आचारणगत है एवम् प्रत्येक स्थिति में यह आचरण से ही सम्बन्धित है। वह जो समयानुकूल आचरण करता है वह सच्चे मानव की तरह है, लेकिन जो समय के अनुसार व्यवहार नहीं करता वह परमात्मा के सानिध्य से बहुत दूर है।

व्यवहारिक जीवन के विषय में ठाकुर रामसिंहजी का कहना था कि मनुष्य को नेक कमाई और ईमानदारी से अपना जीवनयापन करना चाहिये । आराम से जीने के लिये बेइमानी की कमाई पर रहना उचित नहीं है । जिसने अपनी बिसात (साधन) में रहना सीख लिया उसने चिन्ताओं से मुक्ति पा ली । संख्या (आर्सेनिक) विष होती है, लेकिन शुद्धिकरण के बाद अल्प मात्रा में वही संख्या औषधि का कार्य करती है । इसी प्रकार ईमानदारी से अर्जित थोड़ी सी कमाई मनुष्य को आनंद देने व उसे प्रसन्नचित्त रखने में सक्षम है । परमात्मा को जो देना है वह हर हालत में देगा, फिर उसे पाने के लिये सच्चाई का साथ क्यों छोड़ा जाए ? वे कहा करते थे कि दूसरे को ठगने से स्वयं को ठगाना बेहतर है । मितव्यता से रहना एक सदगुण है जो जीवन में प्रसन्नता भर देता है । ईमानदारी की कमाई में बरकत होती है । ना ही तो किसी को प्रलोभन देना चाहिए ना ही स्वयं प्रलोभन में फँसना चाहिए । यदि तुम किसी का कोई कार्य कर भी दो तो इस तरह की उसे मालूम भी ना चले कि किसने उसका कार्य कर दिया ।

कर्म और भाग्य

भाग्यवादी होने के विषय में ठाकुर रामसिंहजी का कहना था कि भाग्य हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहने वालों का साथ नहीं देता । भाग्य और पुरुषार्थ दोनों साथ चलने चाहिएँ । परमात्मा पर पूर्ण विश्वास रखकर कोई भी न्यायसम्मत कार्य करना ठीक है । इस विषय में उन्होंने

एक साधु और बाज का किस्सा सुनाया । एक साधु ने चिड़िया के एक छोटे से बच्चे को देखा, जिसे एक बाज ने आकर दाना चुगाया और उड़ गया । साधु ने सोचा परमात्मा का विधान कितना विचित्र है, बाज चिड़िया का दुश्मन है लेकिन फिर भी उसने चिड़िया के इस नन्हें से बच्चे को दाना चुगाया, फिर परमात्मा मेरा ख्याल क्यों नहीं करेगा ? वह मेरे खाने का भी कुछ ना कुछ प्रबन्ध अवश्य करेगा । साधु अभी यह सोच ही रहा था कि उसे आकाशवाणी सुनाई दी, ओ साधु, यह तो एक चिड़िया थी, उस पर भी एक नन्हा सा बच्चा, इसलिये परमात्मा ने इसके भोजन का प्रबन्ध एक दुश्मन के हाथों भी करवा दिया । तुम तो मनुष्य हो और परमात्मा ने कृपा कर तुम्हें स्वस्थ हाथ-पैर दिये हैं, दिमाग दिया है और सोचने समझने की शक्ति दी है जिससे ना केवल अपना बल्कि दूसरों का भी भरण-पोषण कर सको । तुम बच्चे नहीं हो, बहादुरों की तरह काम करो । यदि भाग्य भरोसे बैठे रहे तो कही के नहीं रहोगे ।

भाग्य के भरोसे बैठे रहने वालों के लिये उन्होंने एक और किस्सा सुनाया-एक बार एक पंडित जी की एक अंगुली में विष्ठा लग गई । घृणा के साथ पण्डित जी उस अंगुली को अपने कपड़ों से दूर रखते हुए एक बढ़ई के पास पहुँचे और उसे उस अंगुली काट देने के लिए कहने लगे । बढ़ई ने उन्हें कहा कि अंगुली काटने में तो बहुत दर्द होगा, लेकिन पंडित जी जिद करने लगे । बढ़ई ने उन्हें फिर समझाया कि अपनी ही विष्ठा से इतनी घिन ठीक नहीं और वह स्वयं उस गंदगी से हाथ साफकर छुटकारा पा सकते हैं । पंडित जी बढ़ई को सुनने के लिये कतई तैयार नहीं थे और कहने लगे भाग्य में जो होगा देखा जाएगा। बढ़ई समझदार व्यक्ति था । उसने पण्डितजी की अंगुली पर उल्टे बसौले से चोट की । चोट का दर्द असहनीय होने से पण्डित जी के मुँह से चीख निकल गई और उन्होंने बिना आव-ताव देखे झट से वह अंगुली अपने मुँह में रख ली । बढ़ई ने ठहाका लगाया और पण्डित जी से पूछा कि अब उनकी पण्डिताई कहाँ गई ?

कर्म और भाग्य के संदर्भ में ठाकुर रामसिंहजी का कहना था कि मनुष्य को परमात्मा की कृपा पर पूर्ण विश्वास रख अपना कर्म करना चाहिए, भाग्य के भरोसे बैठने को वे उचित नहीं मानते थे । उनका कहना था कि यदि परमात्मा कि यही इच्छा होती कि मनुष्य भाग्य के भरोसे बैठा रहे तो फिर उसे बुद्धि और विचार की शक्ति देने की क्या आवश्यकता थी ? अपने स्वयं के आचारण के द्वारा भी ठाकुर रामसिंहजी ने यही संदेश दिया कि मानव जीवन एक अमूल्य धरोहर है जिसे व्यर्थ ना गँवाकर असली उद्देश्य की प्राप्ति में लगाना चाहिये । सच्चा मनुष्य वही है जो तन-मन और धन से दूसरों की सेवा करे व अपने मन से सबके भले की सोचे । सभी लोग अपने सगे-सम्बन्धियों के विषय में सोचते हैं और चिन्तित रहते हैं, लेकिन उस पमात्मा के विषय में सोचना विचार करना जिसने सभी को पैदा किया है, वास्तव में महान है । अपनी कमजोरियों को इसी जीवन में दूर किया जा सकता है । जो भी परिस्थिति हो उसमें खुश रहना और इच्छाओं पर विजय प्राप्त करना मनुष्य का धर्म है । मनुष्य जीवन सर्वोत्तम है और यह शरीर परमात्मा का मन्दिर है । लेकिन वास्तविक ज्ञान केवल सतपुरुषों की संगत से ही प्राप्त होता है वरना यह मानव जीवन यों ही व्यर्थ चला जाता है ।

उनका यह भी कहना था कि यह मनुष्य के हाथ में है कि वह बिल्ली के बच्चे की तरह व्यवहार करे या बन्दर के बच्चे की तरह । बन्दर का बच्चा अपनी माँ से बुरी तरह चिपटा रहता है । माँ जितनी भी उछल-कूद करे, बच्चा उसे छोड़ता नहीं । दूसरी तरफ बिल्ली का बच्चा निर्भय होकर इधर-उधर घूमता है, इस विश्वास के साथ कि आवाज करते ही उसकी माँ चाहे कितनी भी दूर हो तुरंत उसकी रक्षा हेतु दौड़ी चली आएगी और उसकी जरूरत पूरा करेगी । इस उदाहरण से वे कर्म और भाग्य में फर्क को समझाया करते थे । बिल्ली का बच्चा भाग्य के भरोसे नहीं बैठा रहता । परमात्मा ने उसे भाग्य में भरोसा रखने लायक बुद्धि ही नहीं दी । वह तो भाग्य नाम की चीज ही नहीं जानता । उसे तो अपनी माँ पर पक्का

भरोसा होता है कि वह उसकी आवश्यकताओं को पूरा करेगी । इसी तरह जो लोग अपने आप को बिल्ली के बच्चे की तरह समझते हैं, परमात्मा पर पूर्ण विश्वास रख कर्म में उद्धत होते हैं । ऐसे व्यक्तियों के लिये किस्मत नाम की कोई चीज नहीं होती । यह भावना, यह विश्वास परमात्मा के प्रति समर्पण का सूचक है । भक्त भगवान के भरोसे रहता है ना कि भाग्य के । वे कहा करते थे:

'तेरा सांई तुझमें, ज्यों पत्थर में आग,
जो चाहे दीदार तो, चकमक होकर लाग,
दरिया सोता सकल जग, जागत ना ही कोय,
जागे में फिर जागना, जागा कहिए सोय'

प्रत्येक व्यक्ति को अपना जीवन व्यतीत करना होता है लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि आप जीत रहे हैं या हार रहे हैं । विजयी वही होता है जो इस जीवन के परम उद्देश्य को इसी जीवन में मृत्यु से पूर्व प्राप्त कर लेता है । जीवन का वास्तविक उद्देश्य पूर्ण आत्म-साक्षात्कार है । जब दूरी ज्यादा तय करनी हो तो रफ्तार बढ़ाना जरूरी होता है ताकि गंतव्य तक समय रहते ही पहुँचा जा सके । हिम्मत और दृढ़ता काँटों को फूलों में बदल देती है । अन्तिम घड़ी कब आ जाए किसी को मालूम नहीं, अतः परमात्मा को अपने साथ देखते रहना चाहिए और अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहना चाहिए ।

नसीम जागो, कमर बांधो, उठाओ बिस्तर की रात कम है ।

भोजन और निद्रा

भोजन मनुष्य के विचारों पर विशेष प्रभाव डालता है । सादा और पवित्र सात्विक भोजन अल्प मात्रा में लेने पर सद्विचार को जन्म देता है, लेकिन वही भोजन जरूरत से ज्यादा लेने पर कुविचारों को जन्म देता है । ठाकुर रामसिंहजी आवश्यकता से कुछ कम खाने पर जोर दिया करते थे और कहा करते थे जिसने भोजन को भजन बना लिया उसने सहज में ही परमात्मा को प्राप्त करने का मार्ग पा लिया । वे कहा करते थे कि

इसका सरल साधन है यह ख्याल करना कि स्वयं की जगह परमात्मा ही भोजन ग्रहण कर रहे हैं और यदि यह ख्याल करना संभव ना हो तो खाना खाते समय परमात्मा से प्रार्थना करते रहना चाहिये । इसी तरह सोते समय परमात्मा की याद में सोने से वह निद्रा भी परमात्मा का भजन रूप बन जाती है । जो भी खाया या पीया जाए उसे परमात्मा को अर्पित कर ही खाना या पीना चाहिए । ऐसा करने से भोजन से जुड़े अपवित्र विचार समाप्त हो जाते हैं । परमात्मा की याद में और सफाई से बनाया गया भोजन भक्ति को दृढ़ करता है । बहुत से मुस्लिम संत हालाँकि मांस का भोजन करते थे लेकिन उसे भी परमात्मा की याद में खाने व भूख से थोड़ा कम ही खाने से वह उनकी भक्ति में बाधा नहीं बना ।

इस विषय में वे एक किस्सा सुनाया करते थे कि एक बार दो दोस्तों ने गलती से श्मशान में मांस पका लिया । जब वे उसे खाने बैठे तो उन्हें अहसास हुआ कि यह तो श्मशान है । उनमें से एक ने कहा कि यह तो अनर्थ हो गया । दूसरे ने कहा:

'जीव मारे, हत्या करे, खातां करे बखान,

राधो-चेतन यूँ कहे, थारे जीवतड़ा री थाली में श्मशान'

अर्थात श्मशान तो उनकी थाली में ही मौजूद है । इसका वास्तविक तात्पर्य यह है कि बाहरी या भौतिकी अशुद्धता से इतना नुकसान नहीं होता जितना कि पकाने वाले, परोसने वाले, देखने वाले, या खाने वाले की मन और विचारों की अशुद्धता से होता है । इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि भोजन में प्रयोग किया गया धन ईमानदारी से कमाया गया हो । बेइमानी से कमाये गये धन का प्रयोग करने से वह भोजन अन्ततः मन और विचारों को प्रभावित करता ही है और मनुष्य को बुराई की तरफ धकेलता है ।

मांसाहारी भोजन के विषय में ठाकुर रामसिंहजी का कहना था कि यदि मांसाहारी भोजन केवल स्वाद के लिये ही ग्रहण करना है तो उससे बेहतर इसका त्याग है । हाँ, यदि किसी को औरों की सेवा हेतु अपनी

शारीरिक ऊर्जा बनाये रखने के लिये मांसाहारी भोजन आवश्यक हो तो यह उसके लिये बुरा भी नहीं है ।

निद्रा के संदर्भ में ठाकुर रामसिंहजी, सहजो बाई का यह दोहा सुनाया करते थे:

'जागत में सुमिरन कर, सौवत में लौ लाय,

सहजो इक-रस हो रहे, तार टूट नहीं पाय'

उनका कहना था कि परमात्मा की याद में सोने वाले के लिये नींद भी परमात्मा के स्मरण में बदल जाती है और सुबह उठने पर उसे परमात्मा की ही याद रहती है । यह परमात्मा को रात भर याद रखने का सबसे सरल उपाय है । जिसने सोते वक्त और भोजन के दौरान परमात्मा को याद रखना सीख लिया, उसने सहज में ही बहुत मार्ग तय कर लिया । कोई नहीं जानता उसकी आखरी सांस कब खत्म हो जाये । अतः यही उचित है कि हर सांस में परमात्मा की याद बनाये रखी जाए । 'उसको' याद किये बिना नींद को अपने पर काबू ना करने दो । भूख से थोड़ा कम खाने से नींद भी कम आयेगी और परमात्मा को याद करने के लिये अधिक समय मिलेगा । ठाकुर रामसिंहजी जब दौरे पर जाते थे तो वे अक्सर किसी बैंच पर या कूए की मेड़ पर सो जाते ताकि गिरने के भय से वे गहरी नींद ना सोए और अपने गुरु भगवान की याद में चौकन्ने रहें ।

यात्रा की शुरुआत समाप्ति का पहला चरण है । कितनी भी लंबी यात्रा हो उसकी शुरुआत एक छोटे से कदम से ही होती है । इसी तरह अपने जीवन को सुधारने की शुरूआत परमात्मा की याद को निरंतर बनाये रखने से होती है । एक प्रयास कि 'उसकी' याद बनी रहे, हरदम चौकसी बनी रहे तो विचार स्वतः ही दूर चले जाएँगे । विचारों की शुद्धता का बड़ा महत्व है, अतः कोशिश कर बुरे विचारों का त्याग करते रहना चाहिए और इसका सबसे सीधा और सरल उपाय है परमात्मा की याद बनाए रखना ।

सत्संग, सतगुरु और सतनाम

ठाकुर रामसिंहजी की निगाह में सही शिक्षा व अभ्यास किसी भी मनुष्य को एक अच्छा इंसान बनाने में बहतु महत्व रखते हैं । हाँ, लेकिन यही शिक्षा मनुष्य में अहंकार उत्पन्न करे तो फिर इसका कोई महत्व नहीं रहता । अति शिक्षित होने पर भी लोगों में भली और बुरी दोनों तरह की आदतें पायी जाती हैं । शिक्षा का असल उद्देश्य है उसे आत्मसात कर अपने जीवन का अंग बना लेना । सिपाहियों को रोजाना इसलिये परेड करायी जाती है जिससे कि वे अच्छे सिपाही बन सकें । क्या केवल किताबी निर्देश उन्हें अच्छा सिपाही बना सकते हैं ? वे कहा करते थे कि ज्यादा किताबी ज्ञान वाले लोगों की तुलना एक ऐसे लदे हुए बैल से की जा सकती है, जिसने ज्ञान का बोझ तो उठा रखा है परन्तु उस पर अमल नहीं करता ।

'ना हो जिसमें अदब और जो किताबों से लदा फिरता,
जफर ! उस आदमी को हम तसव्वुर बैल करते हैं'

रामायण प्रेम से परिपूर्ण ग्रन्थ है एवम् गीता और वेदान्तों में ज्ञान का सार वर्णित है । उनके अनुसार प्रेम अपने आप में सम्पूर्ण है एवम् सभी कुछ उसमें समाहित है ।

ठाकुर रामसिंहजी का कहना था कि शास्त्रों का सार है-'सतसंग, सतगुरु एवम् सतनाम ।' जिस तरह के लोगों के साथ कोई रहता है उनका प्रभाव उस पर अवश्य पड़ता है एवम् उसी रंग में वह रंग जाता है । वे कहा करते थे कि संसार में सभी-चीजें अपना भला-बुरा प्रभाव छोड़ती ही हैं । अग्नि के समक्ष उष्णता स्वतः ही महसूस होती है और एक जलता दिया दूसरे को रोशन कर देता है, इसी प्रकार सदपुरुषों का साथ मनुष्य को सद्गुण ग्रहण करने को प्रेरित करता है एवम् दुर्जनों के साथ रहने से बुरी प्रवृत्तियों घर कर जाती हैं । बुरी संगत अच्छे-अच्छे को भी खराब कर देती है । वे कहा करते थे कि औरों की तो बात ही क्या है यदि कोई परिजन भी ऐसा काम करने को कहे जिससे आत्मिक उन्नति में

बाधा पहुँचती हो तो उसका अनुसरण नहीं करना चाहिए । असली सतसंग वही है जिसमें मनुष्य को सतगुण का साथ मिल जाए । ऐसे सतसंग का प्रभाव अमिट और दीर्घगामी होता है । धीरे-धीरे आचरण से कमियाँ दूर होने लगती । सतगुरु के साथ बिताया एक क्षण भी वर्षों की तपस्या से कहीं अधिक उत्तम है । ऐसे सौभाग्य का प्रभाव ताउम्र रहता है और सैंकड़ों वर्षों की तपस्या से अधिक फलदायी:

'यक जमाना सौहबते बा औलिया,

बेहतर अज सद साला ता-अत बेरिया'

सतगुरु क्या करता है, इस बारे में वे कहते थे:

'गुरु एक मुख्तसर सा रास्ता शिष्य को बताता है,

गुरु संसार चक्र का जुदा मरकज बताता है,

इशारे से क़तर को काटकर मंजिल दिखाता है,

वो जाये इब्तिदा को इन्तिहा से मिलाता है'

(सतगुरु परमात्मा को पाने का सबसे छोटा रास्ता बताता है, इस संसार में आने का असली उद्देश्य बताता है और वृत को बीच से काटकर शुरूआती और आखिरी सिरे को जोड़कर मंजिल तक पहुँचाता है)

और:

'गुरु कुम्हार शिष्य कुम्भ पियारा, घड़-घड़ खोट मिटाता रे,

अंतर हाथ सहारा देकर, बाहर चोट लगाता रे'

उनका कहना था कि मटका बनाने में समय लगता है, उसे भरने में नहीं । परमात्मा ने जगह-जगह अपने सेवक उसके हुक्म को तामील करने के लिए बैठाए हुए हैं लेकिन वास्तव में इंसान की यह अपनी कमी है वो उन्हें पहचानता नहीं। वे कहते थे:

'संगत सार अनेक फल, भूंड भँवर के संग,

शंकर के मस्तक चढ़यो, चरण पखारे गंग'

ठाकुर रामसिंहजी कहा करते थे कि सतगुरु ठाकुर रामसिंहजी इस दोहे का भावानुवाद इस प्रकार बताते थे: एक भूंड (विष्ठा की गोली

बनाकर अपने बिल में ले जाने वाला जीव, जो भँवरे जैसा ही दिखाई देता है) ने भँवरे को दावत दी और चारों ओर विष्ठा-ही-विष्ठा फैला दी। भँवरा दावत पर आया लेकिन बदबू के कारण घबराकर तुरंत भूंड को दावत के लिये साथ ले, वहाँ से लौट गया । भँवरे ने भूंड को लेजाकर एक कमल पुष्प पर बिठा दिया, भूंड वहीं बैठा मस्त हो गया शाम पड़ते-पड़ते कमल पुष्प बन्द हो गया । प्रातः ही किसी ने कमल पुष्प तोड़ कर शिवजी पर चढ़ा दिया-पश्चात पुजारी ने पुष्पों के साथ कमल पुष्प को भी गंगाजी में बहा दिया । तब तक दिन चढ़ आया, धूप से कमल पुष्प फिर खिल गया । भूंड उसी पर बैठा आनंद से गंगा की लहरों पर बहा जा रहा था, भँवरा भी वहीं आ गया, हाल पूछा तो भूंड ने कहा-"धन्य है मेरे भाग जो तुम जैसा मित्र पाया, जिसकी संगत से मुझे आज यह उत्तम गति मिली ।"

सतगुरु के चरणों की शरण मिल जाना जीवन के असली उद्देश्य को प्राप्त करने की पहली और सबसे महत्वपूर्ण मंजिल है । जिसे सतगुरु की शरण मिल गयी, उसके लिए कुछ भी पाना असम्भव नहीं।

'गुरु समर्थ सिर पर खड़े, कहाँ कमी तोहे दास,
रिद्धि-सिद्धि सेवा करें, मुक्ति ना छोड़े आस'

रूहानी तरक्की का मार्ग सतगुरु से निस्बत हासिल होते ही खुल जाता है। गुरु-कृपा के साथ ही ईश्वर-कृपा का स्वत: संचार प्रारम्भ हो जाता है। उनका कहना था:

'गुरु से कुछ न छिपाइये, गुरु से झूँठ न बोल,
बुरी-भली, खोटी-खरी, गुरु आगे सब बोल'

गुरु से मन का भेद छिपाने वाला वास्तव में विश्वास की कमी रखता है जिसकी तुलना ऐसे मरीज से की जा सकती है जो डॉक्टर से अपना रोग छिपाए। भला उसका इलाज कैसे सम्भव है ? अत: शिष्य को अपने गुरु से खुलकर सत्य बता देना चाहिए। उनका कहना था कि सतगुरु का कार्य तो वास्तव में धोबी और भंगी का है, जो सारे मैल को हटा, शिष्य के मन को साफ़ कर देता है।

इस संदर्भ में वे एक किस्सा सुनाया करते थे-एक बार एक साधु घूमता हुआ एक वेश्या के द्वार पर जा पहुँचा । इस स्त्री की वेशभूषा देखकर वह लौटने लगा । उस स्त्री ने साधू से एक क्षण रुकने के लिये प्रार्थना की और भीतर जाकर अपने हाथों में एक मैला और एक स्वच्छ वस्त्र लेकर लौटी । उन्हें साधू को दिखाकर उसने पूछा कि 'महाराज बताइये इनमें से कौन से वस्त्र को सफाई की आवश्यकता है ?' साधू के मैले वस्त्र की तरफ इशारा करने पर वह बोली, महाराज जब मुझ जैसे पतित पर आप ही कृपा नहीं करोगे, तो फिर कौन करेगा ?'

वे कहा करते थे कि सतगुरु साधक को विस्मृति के गर्त से निकालकर उसे परमार्थ की राह दिखाता है। मनुष्य की कमजोरियाँ उसके सद्गुणों को ढक देती हैं । सतगुरु उस छुपी हुई अध्यात्मिक उर्जा को पुनः प्रकट कर लक्षित कर देता है । लेकिन सतगुरु की शरण हासिल करने के लिये सच्चे प्रयास की आवश्यकता होती है अतः साधक को अपने में ही सच्ची जिज्ञासा जगाना आवश्यक है । परमात्मा की प्राप्ति दुलर्भ नहीं है, वरन् सतगुरु की शरण प्राप्त करना कठिन है। जो अपने स्वयं से ज्यादा सतगुरु से प्रेम करता है उसने 'फना' (लय) अवस्था प्राप्त कर ली क्योंकि वह अपने सतगुरु की छवि बन जाता है । यह सतगुरु के साथ एकात्मता प्राप्त करने का सबसे सरल उपाय है । उनका यह भी कहना था कि जो अपने लक्ष्य को पाना चाहता है उसे यथासम्भव सतगुरु के सत्संग का लाभ उठाना चाहिए और सतगुरु की आज्ञा का पालन करना चाहिए और इस संदर्भ में वे कहते थे:

'मन मुरीद संसार है, गुरु मुरीद कोई साध,
जो माने गुरु वचन को, तांका मता अगाध'

उपासना के संदर्भ में ठाकर रामसिंहजी यह दोहा फरमाते थे:

'बेखुदी छा जाए ऐसी, दिल से मिट जाए खुदी,
उसके मिलने का तरीका, अपने खो जाने में है'

अर्थात् अपने को इस कदर 'उस' में लय कर दो कि अपने होने का आभास ही ना रहे । 'उसे' पाने का तरीका स्वयं के अस्तित्व को पूरी तरह भुला देने में हैं ।

महाराज जनक और महर्षि अष्टावक्र की कहानी संदर्भित है । महाराज जनक आत्मज्ञानी थे, विदेह थे । फिर भी उन्होंने अपने मन की उत्तम सतोगुणी अवस्था में मनमत का अत्यन्त सूक्ष्म रूप अनुभव किया । श्री जनकजी ने यह अनुभव किया कि सतगुरु की शरण गए बिना उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती । आत्मोन्नति कितनी भी क्यों ना हो जाए किन्तु सतगुरु-अभाव में मन-मत का दोष रहेगा ही । उन्होंने सतगुरु धारण करने का संकल्प किया और घोषणा करवा दी कि जो व्यक्ति उनको घोड़े पर सवार होते समय एक रकाब से दूसरे रकाब तक पैर ले जाने के समय के अन्तराल में यथार्थ तत्व का ज्ञान बोध करा सकेगा उसको वह अपना सतगुरु मानेंगे वरना उसका वध कर दिया जाएगा ।

एक निश्चित तिथि पर समस्त ऋषि-मुनि पधार कर राजदरबार में एकत्रित हुए । प्रातःकाल से ही गुरु-धारण के लक्ष्य हेतु श्री जनकजी एक सजे हुए घोड़े सहित उपस्थित रहे । आप का प्रण एवम् प्रतिज्ञा बड़ी ही कठिन थी । किसी का भी साहस श्री जनक महाराज को उनकी प्रतिज्ञानुसार ज्ञान देने का नहीं होता था बल्कि सब आश्चर्य में थे कि इतने महान ज्ञानी होते हुए भी जनकजी ऐसी प्रतिज्ञा क्यों कर रहे हैं ?

जब सूर्यास्त निकट प्रतीत हुआ तो महान् ऋषि अष्टावक्रजी महाराज की परम ज्ञानमयी पूजनीया माँ ने अपने पुत्र को आदेश दिया-"बेटा ! क्या देखते हो ? महाराज जनकजी की दुस्तर प्रतिज्ञा ने समस्त उपस्थित समाज को अत्यन्त अनमनी अवस्था में डाल दिया है, जिसे देख कर हृदय को बड़ा ही दुःख होता है । वे अपनी प्रतिज्ञा-पूर्ति हेतु कहीं कोई घोर अनर्थ ना कर बैठें अतः तुम्हारा परम धर्म है कि अपने जीवन को दाँव पर लगा कर सब महान् पुरुषों एवम् गुरुजनों के उपस्थित संकट का

निवारण करो । जाओ और महाराज को सत्य ज्ञानानुभव का उपदेश देकर उनकी प्रतिज्ञा को पूर्ण करके विजय प्राप्त करो ।"

अष्टावक्रजी की आयु अभी लगभग नौ-दस वर्ष की थी । शरीर के आठ स्थानों पर टेढे होने के कारण आप 'अष्टावक्र' के नाम से जाने जाते थे । 'अष्ट' से तात्पर्य है आठ का, और 'वक्र' से टेढ़ा । अध्यात्म भाव में यह भी अर्थ हो सकता है कि अष्टावक्रजी जन्मतः ऋषि (वली) थे- अर्थात् इस शरीर में आत्मा के अष्टांग चक्रों को जन्मतः ही पार एवम् सिद्ध किए हुए थे ।

माँ की आज्ञानुसार वे सभा में पहुँच गए । अष्टावक्रजी ने महाराज जनक को तेजस्वी शब्दों में प्रण-अनुसार रकाब में पैर रखकर घोड़े पर चढ़ने का आदेश दिया । जनकजी भी उस ऋषि-बालक के अलौकिक तेज से प्रभावित हुए बिना ना रहे । उन्होंने बड़ी अधीनता एवम् नम्रता से निवेदन किया कि-"हे ऋषि-बालक ! आप को देखकर ही प्रतीत होता है कि ज्ञान का अनुभव प्रकाश कर रहा है, परन्तु मेरी प्रतिज्ञा पूरी होना आवश्यक है । मैं बालक, स्त्री, अपाहिज आदि पर अपने प्राण का भार या दण्ड नहीं रखना चाहता । अत: मैं आपको नमस्कार करके प्रार्थना करता हूँ कि आप अपने स्थान पर पधार कर अपने माता-पिता की सेवा में जीवन सफल करें, क्योंकि मेरी प्रतिज्ञा यह भी है कि यदि प्रण के अनुसार उस अल्प समय में ही ज्ञान प्राप्त ना हुआ तो उसका दण्ड वध है । आप ऋषि-बालक हैं । अत: आप की आयु एवम् ज्ञान-गरिमा को देखकर मैं अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध भी आप को अपने स्थान पर लौटने का अवसर देता हूँ ।"

जनकजी के वचनों को सुनकर तेजपुंज रूप-जलाली सूरत में अष्टावक्रजी ने उन्हें ललकार कर कहा-“हे जनक ! तू सत्य ही अपने प्रण एवम् प्रतिज्ञा से गिर रहा है । 'बालक', 'बालक' कहकर अपना व सब का समय नष्ट नहीं कर रहा है बल्कि अपनी असमर्थता एवम् कायरता का भी प्रदर्शन कर रहा है । साथ ही साथ प्रतिज्ञा-भ्रष्ट होने का पाप अपने

सर पर ले रहा है । मैंने तो सुना था कि जनकजी केवल पूर्ण ज्ञानी ही नहीं, बल्कि अध्यात्मिक रहस्य व राजनीति के पूर्ण ज्ञानी एवम् प्रकाण्ड पण्डित हैं किन्तु आज इस विशाल विद्वत समाज में तू प्रतिज्ञा भ्रष्ट हो रहा है । भला इसी में है कि बस अब देर ना कर और अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर, अन्यथा सूर्यास्त हो जाएगा और तेरी प्रतिज्ञा समाप्त हो जाएगी ।"

महाराज जनक ऋषि-बालक की तेजस्वी ललकार से चकित एवम् विमूढ़ से हो रहे थे। विवश हो सभा को सम्बोधित करते हुए कहा- "हमने अष्टावक्रजी को ऋषि बालक समझ कर ही इस बीच में ना पड़ने की प्रार्थना की थी किन्तु अब प्रण-भ्रष्ट होने के दोष से बचने के लिए ही मुझे विवशतः अपनी प्रतिज्ञा धारण करनी पड़ रही है । अब आप समस्त ऋषिवृन्द जानें या यह बालक ।"

श्री जनकजी ने अभी अपना कथन समाप्त ही किया था कि ऋषि-बालक ने फिर ललकारा कि "हे राजन् ! समय समाप्त हो रहा है; इसके साथ ही प्रण का भी अन्त हो जाएगा । शीघ्रता कीजिए।"

महाराज जनक ने ज्यों ही एक पैर रकाब में रक्खा और चाहते थे कि दूसरा पैर घोड़े की पीठ पर से ले जाकर दूसरी रकाब में ले जावें कि महर्षि अष्टावक्र ने कहा, "ऐ जनक ! प्रतिज्ञा तो इतनी बड़ी व कड़ी है कि जिस पर ऋषिवृन्द के प्राणों की बाजी लगाई गई है, परन्तु यह तो बता कि गुरु-दक्षिणा क्या दे रहा है ? प्रथम दक्षिणा का संकल्प कर, फिर घोड़े पर सवार हो । तेरी मनमानी प्रतिज्ञा के अनुरूप ही गुरु की इच्छानुसार ही गुरु-दक्षिणा होनी चाहिए जिससे कि सभा-मण्डप स्थित ऋषि-समाज साक्षी रहे और हर बात सच पर कायम रहे ।"

बात सत्य थी । महाराज जनक रकाब में पैर रक्खे हुए लज्जा में डूब गए । उन्होंने ऋषि-बालक से पूछा कि, "महाराज ! बताइए, आप क्या गुरु-दक्षिणा चाहते हैं ? मैं इसी क्षण संकल्प कर दूँ, अन्यथा मेरी प्रतिज्ञा दूषित रहेगी ।" ऋषि-बालक ने बड़ी शांति एवम् गम्भीरता से जवाब दिया कि "हे जनक ! जिस वस्तु को तू 'अपनी' जानता व मानता है, गुरु-

दक्षिणा में संकल्प कर दे । ऋषि-बालक इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता ।" जनक राज ने यह स्वीकार कर लिया और अपना समस्त राज-पाट, धन-सम्पत्ति, स्त्री-पुत्र, घर-बार एवम् सब वस्तुएँ जिन्हें वह 'अपनी' समझते थे, गुरु-चरणों में अर्पित कर दीं । महर्षि अष्टावक्रजी ने हँस कर श्री जनकराज से पूछा कि, "हे जनक ! क्या तू गुरु से ठिठोली व हँसी-खेल तो नहीं कर रहा है ? क्या सत्यत: ये सब वस्तुएँ तेरी ही हैं और इन्हें तू अपनी ही समझता है और जानता है ? क्या उपर्युक्त वस्तुएँ तेरी थीं, और अब भी तेरी हैं ? क्या राज-पाट, धन-दौलत आदि चीजें तुझ से पूर्व दूसरों के पास नहीं थीं, और अब तेरा साथ कर दूसरों के अधिकार में नहीं जा सकतीं ? क्या स्त्री, पुत्र, मित्र, सम्बन्धी आदि सब तेरे हैं ? क्या माताएँ, बहू-बेटियाँ आदि किसी विशेष व्यक्ति के ही हैं और वे अन्य व्यक्तियों से भिन्न-भिन्न रूपों में सम्बन्धित नहीं हैं ? क्या दूसरों के अधिकारों को छीन कर अहंकार के वशीभूत होकर गुरु को धोखा देना व झगड़े तथा अशांति व झूठी मर्यादा के वातावरण में गिराना चाहता है ?

श्री जनकराज के ज्ञान के होश उड़ गए और लज्जा-भरे नेत्रों से गुरुदेव के पवित्र चरणों में टकटकी लगा कर मूक एवम् मौन हो रहे । यह प्रतीत होता था मानो उपर्युक्त गंभीर भावना में डुबकी लगा कर श्री जनकजी कोई निज की वस्तु दक्षिणा-स्वरूप गुरु के पाद-पद्मों में संकल्प हेतु खोज कर रहे हों । महर्षि अष्टावक्र ने जनकराज की इस अवस्था पर तरस खाकर, प्रिय एवम् मधुर शब्दों में अचानक ज्ञानी जनक से पूछा कि “तू इतनी छोटी बात पर क्यों इतना विवश हो रहा है ? भला गूढ़ रहस्य को गुरु-परमेश्वर से प्राप्त करना क्या मजाक समझता है ? अच्छा, दु:खी और निराश मत हो । यह तो बता कि आखिर यह सब जीवन के पदार्थ कैसे और किस के द्वारा प्राप्त करता है जिससे तू इनको 'अपना' समझने लगता है ? धन, लोक, पुत्र, स्त्री एवम् तृष्णाओं का कारण कौन वस्तु है जो तुझमें अहं भाव एवम् अपनत्व कायम रखती है ?"

जनकजी ने गुरुदेव की अपार कृपा-दृष्टि से निज के अन्तःकरण में दिव्य प्रकाश अनुभव किया और कर-बद्ध निवेदन किया कि "महाराज! यह वास्तव में इस सेवक का मन ही है जिसके द्वारा यह जीवन एवम् समस्त पदार्थों को अपनाता तथा 'अपना' समझता है । हे गुरुदेव ! यदि यह सेवक की अपनी वस्तु है तो वह उसको गुरुपाद-पद्मों में संकल्प कर रहा है । भगवन्! कृपया इसे स्वीकार करके दास का कल्याण कीजिए ।"

महर्षि अष्टावक्रजी बोले कि "वास्तव में 'मन' भी पूर्ण रूप से तेरी वस्तु नहीं है, परन्तु मैं तेरी इस वस्तु (अर्थात् मन) को संकल्प-रूप में स्वीकार करता हूँ । अब मेरा आदेश है कि तू मेरे इस 'मन' से मेरी इच्छा एवम् आज्ञा के बिना या विरुद्ध कोई काम ना कर । यदि तू अपने संकल्प एवम् आज्ञा-पालन में सच्चा है तो तेरी प्रतिज्ञा के अनुसार तुझे ज्ञान भी गुरु द्वारा भगवान् अवश्य ही प्रदान करेंगे । ऐ ज्ञानी जनक ! इसमें तनिक भी संशय और शंका ना कर। गुरु-वाक्य व आदेश को एक गुरुमुख शिष्य सदा ही प्रमाण-ज्ञान, अनुमान-ज्ञान आदि सब से ऊँचा और सत्य ही मानता है ।"

इस बीच में ज्यों ही जनकजी महाराज के मन में कोई विचार-विमर्श, ख्याल व खतरा (गैर भाव) उठता था त्यों ही गुरुदेव जनकजी को आगाह करते थे कि-"देख अब तेरा मन तेरा नहीं है । सावधान ! कोई भी कार्य बिना मेरी इच्छा व आज्ञा के कदापि 'मेरे मन' से ना करना चाहिए ।" इस प्रकार कुछ समय तक राजा जनक निरासक्त भाव-बेचारगी से अपने मन को शून्य (संकल्प विकल्प से रिक्त) करने हेतु पूर्ण लीन अवस्था में निरंतर प्रयत्न करते रहे, यहाँ तक कि वह अपना आपा भी खो बैठे, और उनको अपनी प्रतिज्ञा का ज्ञान भी नहीं रहा । एक रकाब में एक पैर रक्खे हुए, मनोगति के शून्य हो जाने पर जब श्री जनकजी निरासक्त होकर बेसुधी में गिरने लगे तब गुरुदेव ने अपने परम प्रिय गुरु-मुख गुरु-परायण शिष्य, श्री जनकजी को अपनी गोद में थाम लिया । उनके मन का पात्र मन-मत के स्वभाव से शून्य और शुद्ध हो चुका था । अतः

आत्मा और परमात्मा के निर्मल सत्य ज्ञान प्रकाश ने प्रवेश कर उन्हें परिपूर्ण कर दिया । इसके बाद महर्षि अष्टावक्रजी ने जनकजी के मस्तक को अपने कर-कमल से स्पर्श करके उनको चैतन्य एवम् सचेत किया और आदेश दिया कि "हे जनक ! अब मेरी आज्ञा से जो तेरे मन में उतरे उसे कह ।"

श्री जनकजी ने नेत्र खोले और गुरु-दर्शन करके महर्षि अष्टावक्र के पाद-पद्मों में नत-मस्तक होकर गुरु-परमेश्वर की निष्कपट निर्मल मन से वन्दना की तथा निवेदन किया-"भगवन् ! इसी ज्ञान हेतु इस सेवक ने यह दुस्तर प्रतिज्ञा की थी । अब चाहने या ना चाहने का कोई प्रश्न ही नहीं रहा ।"

ठाकुर रामसिंहजी का कहना था कि परमात्मा हमसे दूर नहीं है बल्कि वह तो निकट से भी निकटतम है । उपासना का शाब्दिक अर्थ ही निकट बैठना है । आवश्यकता स्वयं को 'उस' से जोड़ने की है, जिस तरह लाईट का बटन दबाते ही विद्युत प्रवाह शुरू हो जाता है और बल्ब रोशन हो जाता है, बल्ब का सम्बन्ध पावर हाऊस से जुड़ जाता है, उसी तरह साधक को चाहिए कि अपने हृदय के बटन को दबाकर परमात्मा से जुड़ जाए ।

परमात्मा की पूजा उपासना करने से परमात्मा को कोई फर्क नहीं पड़ता, लेकिन यह व्यक्ति का कर्तव्य है । किसी भक्त पर निगाह पड़ने मात्र से ही मनुष्य के मन में सद्विचारों का प्रवाह होने लगता है । स्मरण मनुष्य को परिपूर्णता की ओर ले जाता है । लेकिन सतत स्मरण के लिये प्रयास कर बारम्बार अपने ध्यान को 'उस' की ओर ले जाना आवश्यक है । पूजा-उपासना के लिये तो फिर भी किसी विधि विधान की आवश्यकता हो सकती है लेकिन परमात्मा की याद के लिये किसी आडम्बर की आवश्यकता नहीं होती, उसकी याद में कोई वस्तु रुकावट नहीं डाल सकती । परमात्मा की याद से प्राप्त होने वाला आनंद वर्णनातीत होता है जो पूजा-उपासना से प्राप्त नहीं हो सकता । परमात्मा को अपने हृदय में

ही खोजा और पाया जा सकता है । 'वह' कहीं खो थोड़े ही गया है कि उसे ढूँढने की आवश्यकता पड़े, ना ही 'वह' रूठा हुआ है कि उसे मनाना-रिझाना पड़े । यह सब तो केवल अपने स्वयं के चंचल मन को समझाने भर को है । पूजा से मन नियंत्रित होने लगता है, लेकिन मन को जबरन काबू करना उचित नहीं है । इसे तो प्यार से बहला-फुसलाकर परमात्मा की तरफ ले जाना चाहिए । जबरदस्ती करने से मन विद्रोह करने पर उतारू हो जाता है या निस्तेज हो जाता है, लेकिन प्रेम से यह स्वतः सही राह पर आ जाता है । पूजा उपासना से शरीर भले ही सध जाए लेकिन मन का सधना कठिन है । मन अश्व की तरह है, जो यदि निस्तेज हो जाए तो जीवन की गाड़ी को अपने गन्तव्य तक पहुँचा नहीं पाएगा । अतः मन को बहलाने-फुसलाने व सही मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित करने के लिये कुछ ना कुछ अभ्यास आवश्यक है ।

एक बार किसी सत्संगी ने ठाकुर रामसिंहजी से पूछा कि क्या कारण है कि वर्षों पूजा-उपासना करने के बावजूद वह निरंतर परेशानियों से घिरा रहता है ? कोई फायदा ना होकर केवल नुकसान ही होता रहता है ? ठाकुर रामसिंहजी ने समझाया यदि कोई किसी पशु को बाँधकर रखे तो वह रस्सी तोड़कर भागने को बेताब रहता है । यदि सामान्य पशु की यह स्थिति है तो फिर कैसे कोई उस परम सत्ता को जो समस्त चराचर का स्वामी है, अपनी थोड़ी सी पूजा-उपासना के बल पर बाँधकर रख सकता है ? क्या यह 'उस' पर कोई अहसान है ? वास्तव में तो कभी यह सोचना भी नहीं चाहिए कि पूजा-उपासना के फलस्वरूप कुछ दुनियावी लाभ मिलेगा । परमात्मा का सरोकार केवल प्रेम से है, ना कि कर्मकाण्ड से । 'वह' इसलिये नहीं सुनता कि 'उसकी' पूजा-उपासना की जा रही हैं, वरन् इसलिये सुनता है कि उससे प्रार्थना और अपनी करनी पर पश्चाताप किया जाता है । जब तक हृदय की गहराई से पुकार नहीं होती, 'वह' नहीं सुनता ।

इसी तरह एक बार किसी और ने पूछा-क्या कारण है कि मनुष्य का रुझान परमात्मा की तरफ आसानी से नहीं होता ? उन्होंने उत्तर दिया- 'यदि खजान्ची खजाने की चाबी को तिजोरी में लगी छोड़कर भूल जाए, तो वह कहीं भी जाए, कुछ भी करे, उसका ध्यान उस चाबी में ही अटका रहता है । इसी तरह जब ध्यान परमात्मा की तरफ लगा रहे तभी सफलता संभव है। वह यह भी कहा करते थे कि यदि किसी ने अपनी जेब में कोई कीमती वस्तु रखी हो तो उसका हाथ स्वत: ही उसे टटोलत रहता है। परमात्मा सर्वव्यापी है । कुछ भी करो, जो उचित हो, बस 'उसे' अपने हृदय में टटोलते रहो, यही सबसे आसान उपाय है ।

इस संदर्भ में उन्होंने एक किस्सा सुनाया: एक बादशाह नमाज अदा करने के लिये मस्जिद गया । यह मालूम चलने पर कि एक फकीर ने नमाज अदा करने में हिस्सा नहीं लिया था वह बहुत क्रोधित हुआ और उसे बुलवा भेजा । बादशाह ने फकीर से पूछा कि वह नमाज में शामिल क्यों नहीं हुआ और अब उसे इस बात की सजा भुगतनी पड़ेगी । वह फकीर एक सच्चा संत था । उसने उत्तर दिया-"तुम्हारी नमाज और मेरी नमाज में थोड़ा फर्क है । तुम बादशाह हो और बादशाही नमाज अदा करते हो । मैं फकीर हूँ और फकीरी नमाज अदा करता हूँ और इसलिये शाही नमाज से दूर रहता हूँ ताकि तुम्हारे अरबी घोड़े की दुलत्ती से बचा रहूँ । तुम नमाज के वक्त भी बादशाह बने रहते हो और शाही घोड़े की सवारी का ख्याल करते हुए नमाज अदा करते हो ।"

बादशाह वास्तव में ही नमाज के वक्त ख्यालों में अपने अरबी घोड़े पर सवारी कर रहा था । नमाज अदा करना तो केवल दिखावा मात्र था । उसे अपनी गलती समझ में आ गयी और वह फकीर के कदमों में झुक गया । ठाकुर रामसिंहजी कहा करते थे कि नुक्स तो स्वयं अपने में है कि हम अपने मन का तार दुनियावी चीजों से जोड़ लेते हैं, बजाय परमात्मा के । यह सबसे बड़ा भटकाव है । यदि पूजा में मन ही नहीं है तो फिर पूजा किसी काम की नहीं ।

समय और बुद्धि का सदुपयोग

ठाकुर रामसिंहजी समय के सही प्रयोग पर बहुत जोर दिया करते थे । वे सहजो बाई की निम्न पक्तियों के कायल थे:

'एक घड़ी का मोल ना, दिन का कहाँ बखान,

सहजो ताहीं ना खोइये, बिना भजन भगवान'

व्यर्थ में गंवाया समय हर तरह से अहितकारी है । उपस्थित समय को उसी क्षण भलीभांति काम में ले लेने में ही बुद्धिमत्ता है क्योंकि गुजरा हुआ क्षण फिर किसी कीमत पर वापस नहीं पाया जा सकता ।

हम अपने दुनियावी कार्यों को बहुत ध्यान व प्रयास सहित करते हैं लेकिन परमार्थ सम्बन्धी कार्यों को ना करने के लिये तरह-तरह के बहाने ढूंढने लगते हैं । यह सही तरीका नहीं है । अध्यात्मिक तरक्की के लिये सभी समय उचित है, उसके लिये किसी शुभ घड़ी की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है ।

ठाकुर रामसिंहजी कहा करते थे कि समस्त कार्य को समयबद्ध तरीके से करना चाहिए ताकि कोई भी क्षण व्यर्थ ना जाए । अज्ञान रूपी घड़े को इसी जन्म में फोड़ना होगा । मन में यह विश्वास होना चाहिए कि उपलब्ध क्षण ही आत्मिक उन्नति का सर्वोत्तम क्षण है । किसी कंजूस की तरह जो अपनी पाई-पाई का हिसाब रखता है, प्रत्येक क्षण का हिसाब रखना आवश्यक है अर्थात् समय का बहुत सतर्कता से प्रयोग करना चाहिए क्योंकि बीता हुआ समय कभी पुनः नहीं लौटता ।

इस संदर्भ में वे संत कबीर व रैदासजी का एक किस्सा सुनाया करते थे । एक बार कबीरदासजी संत रैदासजी के पास गये । बातचीत के दौरान उन्हें प्यास लगी व उन्होंने रैदासजी से पानी माँगा । रैदासजी जूते गाँठा करते थे और इस प्रक्रिया में चमड़ा भिगोने के लिये उन्होंने एक कठौती रखी हुई थी । रैदासजी ने उसी कठौती का पानी कबीरदासजी को पिलाना चाहा । कबीरदासजी यह पानी नहीं पीना चाह रहे थे लेकिन वे रैदासजी को मना भी नहीं करना चाहते थे अतः उन्होंने ओक से (मुँह से

हाथ लगाकर) पानी पिया लेकिन मुह में पानी ले जाने के बजाए उसे कोहनी की तरफ से गिरा दिया । सर्दी के दिन थे, कबीरदासजी ने रुई की बँडी पहन रखी थी । चमड़े के पानी का निशान कोहनी पर पड़ गया । घर लौटकर कबीरदासजी ने बँडी को धोने के लिये अपनी पुत्री कमाली को दे दिया । कमाली ने बहुत कोशिश की, परन्तु वह दाग नहीं छूटा, इस कोशिश में उसने कोहनी की उस दाग वाली जगह को अपने दातों से भी कुचला । इस प्रयास के दौरान कुछ पानी कमाली के पेट में भी चला गया । कालान्तर में कमाली का विवाह होने पर वह अपने ससुराल मुलतान चली गयी । एक दिन कबीरदासजी अपने गुरु संत रामानन्दजी के साथ सूक्ष्म शरीर से मुलतान के ऊपर से कहीं जा रहे थे कि सहसा वे अपने आप को किसी और खींचता हुआ पाने लगे । उन्होंने अपने आप को कमाली के घर में पाया जिसने इन दोनों के लिये दो आसन बिछाए हुए थे और भोजन परोस रखा था । आश्चर्यचकित हो उन्होंने कमाली से इस शक्ति के बारे में पूछा । कमाली ने बँडी को साफ करने वाली घटना बतलायी और कहा कि सारी करामात पानी की उन कुछ बूदों की थी जो अनजाने में ही उसके उदर में चली गयी थीं । कबीरदासजी को रैदासजी द्वारा दिया गया पानी ना पीने का बहुत अफसोस हुआ । कुछ समय बाद पुनः रैदासजी के पास गये और उनसे पीने के लिये पानी माँगा । रैदासजी सारी बात जान चुके थे, उन्होंने कहा:

'पाया था तब पिया नहीं, मन में अभिमान किया,

अब माँगे होत क्या, वो पानी मुलतान गया'

ठाकुर रामसिंहजी कहा करते थे कि खोये हुए मौके की भारी कीमत चुकानी पड़ती है । अतः मनुष्य को हमेशा चौकन्ना रहना चाहिए और अवसर का समुचित उपयोग करना चाहिए । कोई भी क्षण परमात्मा की याद से खाली ना बीते । यदि किसी ने स्वयं को सुधार लिया तो समझ लो उसने दुनिया को सुधार दिया । वे स्वयं के सुधार को आत्मिक उन्नति का प्रथम चरण मानते थे । जो स्वयं अपनी कमियों को दूर नहीं

कर सकता वह भला दूसरों को क्या फायदा पहुँचा सकता है ? दूसरों की कमियाँ गिनने से अपनी कमियाँ दूर नहीं होती । अपना बस अपनी ही कमियाँ दूर करने पर है । अपने मन को काबू में रखने से व उसे सही मार्ग पर चलने को प्रेरित करने से अपने जीवन को सार्थक बनाया जा सकता है । जो दूसरो के व्यवहार को सह जाता है, एक तरह से उनका कुछ भला ही करता है ।

साधारणतया सभी लोग अपनी संसारिक तरक्की के बारे में ही चिन्तित रहते हैं, कोई विरला ही अपनी आत्मिक उन्नति के बारे में सोचता है । यह जीवन ही वह सुनहरी अवसर है जबकि मनुष्य को अपने असली ध्येय को प्राप्त कर लेना चाहिए । हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि यह मन कोई अनुचित घड़न्त तो नहीं रच रहा और परमात्मा द्वारा बख्शी विभुतियों (एन्द्रिय शक्तियों) का दुरुपयोग तो नहीं हो रहा, वरना 'सौ जूतों की मार' वाली बात हो जाएगी । इस विषय में उन्होंने यह किस्सा सुनाया:

एक बादशाह के पास कहीं से एक बड़ा हीरा खरीदने हेतु आया । जगह-जगह से जौहरियों को उस हीरे की कीमत आँकने के लिये बुलाया गया और जो उसकी सही कीमत लगा पाये उसके लिये समुचित ईनाम की घोषणा भी की गई । सबने अपनी-अपनी समझ के अनुसार कीमतें लगाई लेकिन कोई भी आपस में सहमत नहीं हो पाया । इतने में एक बृद्ध व्यक्ति फटेहाल अवस्था में बादशाह के दरबार में आ उपस्थित हुआ । उसने भी हीरे को परखा और बादशाह से कहा कि यहाँ उपस्थित जौहरियों ने इस हीरे का मूल्य अपनी-अपनी समझ के अनुसार परखा लेकिन कोई भी इस हीरे की सही कीमत नहीं लगा पाया । यह हीरा करोड़ों का है क्योंकि इसमें दो खास बातें हैं- एक तो जिसके पास यह रहेगा वह कभी असंतुष्ट नहीं रहेगा और दूसरे यह अंधेरे में प्रकाश फैलायेगा । बादशाह ने कुछ दिनों के लिये हीरे को अपने पास रखा और पाया कि हीरे के बारे में कहीं गई दोनों ही बातें सत्य थीं । बादशाह ने उस

वृद्ध को पुनः बुलाया और अपने दरबारियों से उसके लिये उचित ईनाम के बारे में पूछा । लेकिन हीरे के मूल्य की तरह ही दरबारियों में ईनाम के बारे में भी एक राय ना बन पाई । इस पर बादशाह ने अपने एक पुराने एवम् बुद्धिमान मंत्री को बुलाया । मंत्री ने हीरे व उस वृद्ध व्यक्ति दोनों को गौर से देखा और फिर बादशाह से कहा कि इस व्यक्ति के लिये सही ईनाम यही होगा की इसे हुक्के का पानी पिलाया जाये और सौ जूते सर पर मारे जाएँ । मंत्री के इस कथन पर सारा दरबार भौचक्का रह गया । जब मंत्री को अपनी बात का खुलासा करने के लिये कहा गया तो उसने बताया कि इस व्यक्ति ने भगवान द्वारा बख्शी अपनी बुद्धि का सही रूप में इस्तेमाल नहीं किया । यदि पत्थरों की कीमत आँकने की जगह इसने अपनी विलक्षण बुद्धि का प्रयोग आत्म-साक्षात्कार के लिये किया होता तो समस्त संसार की दौलत भी इसे ईनाम के लिये कम पड़ती ।

इस किस्से को सुनाने के बाद ठाकुर रामसिंहजी ने कहा कि जैसे-जैसे शिष्य का प्रेम अपने गुरु के प्रति प्रगाढ़ होता जाता है वह आत्मिक उन्नति की राह पर आगे बढ़ता चला जाता है । यह सबसे सरल तरीका है । इस तरीके में साधक को अपना प्रारम्भिक उद्देश्य हमेशा सामने रखे रहना चाहिए । यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि उसे कोई विशेष उपलब्धि प्राप्त हो गयी है । वरना गिर जाने का डर हमेशा बना रहेगा । दूसरों से मान-सम्मान की कभी आशा नहीं रखनी चाहिए बल्कि अपनी ओर से जितना बन सके उनकी उन्नति में सहयोग करना चाहिए। अभिमान हमेशा ही पतन का कारण बनता है। जो दूसरों की कमियाँ ही देखता रहता है, स्वयं अपनी तरक्की में बाधा डालता है। जब कोई किसी बुरे व्यक्ति के बारे में सोचता है तो उसमें गुस्से व बदले की भावना स्वतः ही जाग्रत हो जाती है। और यदि कोई किसी भले व्यक्ति के बारे में सोचता है तो स्वतः ही उसके हृदय में प्रेम, भक्ति व सेवा की भावना जोर मारने लगती है। इस तरह जिसके बारे में सोचा जाए वह सोचने वाले

व्यक्ति पर अवश्य अपना प्रभाव छोड़ता है। मनुष्य को हमेशा सबके भले के लिये सोचना चाहिए क्योंकि सबके भले में ही अपना भला निहित है।

सबका सम्मान

ठाकुर रामसिंहजी औरों के प्रति अदब पर भी बहुत जोर देते थे। वे स्वयं बच्चों को भी आप कहकर सम्बोधित करते । वे कहा करते थे कि सही सम्मान मनुष्य के आचरण से झलकता है, ऐसा आचरण जो दूसरों की भावनाओं को ठेस ना पहुँचाए ।

टी.बी. सेनेटोरियम में ही एक बार ठाकुर रामसिंहजी के दो अनुयायियों में किसी बात पर बहस छिड़ गयी । बहस के दौरान उनमें से एक के मुँह से नेहरूजी के बारे में कुछ अपशब्द निकल गए । ठाकुर रामसिंहजी जो अब तक सारी बात खामोशी से सुन रहे थे, गम्भीर हो गये और कहने लगे कि उनका यह व्यवहार उचित नहीं था । परमात्मा सबके हृदय में निवास करता है, चाहे वह नेता हो या कोई अन्य । गलती करना मनुष्य के स्वभाव में है, अत: पीठ पीछे किसी की बुराई करना बुरी बात है । अपने आप को ज्यादा होशियार समझने से अक्सर मनुष्य दूसरों का अपमान कर बैठता है । आचरण में दूसरों के प्रति आदर, नम्रता व सादगी झलकनी चाहिए । अपने से बड़ों का सम्मान करना सभी का कर्त्तव्य है । केवल प्रेम एक ऐसी चीज है जिसमें सभी कुछ समाहित हो जाता है और अदब का ख्याल नहीं रहता । विदुरजी की पत्नी यह जानकर कि श्रीकृष्ण आये हैं प्रेमावेश में स्नान करते-करते बिना वस्त्रों के दौड़ पड़ीं । उस दिव्य प्रेम में वे अपने आपको पूर्ण रूप से भूल गई, लेकिन भगवान श्रीकृष्ण ने अपने दुपट्टे को उन पर फेंककर उनकी लाज रखी ।

'जहाँ प्रेम तहाँ नियम नहीं, वहाँ न विधि व्यवहार
प्रेम मगन जब मन भया, कौन गिने तिथि-वार'

जब तक आचरण में इस स्तर का प्रेम व अदब ना झलकने लगे तब तक उन्नति का मार्ग कठिन है। जनाब चच्चाजी साहब फरमाया करते

थे-बा-अदब, बा-नसीब; बे-अदब, बे-नसीब, अर्थात् विनम्रता से सौभाग्य की प्राप्ति होती है जबकि उद्दण्डता से दुर्भाग्य ही प्राप्त होता है । वास्तव में तो पूजा की शुरूआत ही अदब से होती है ।

एक बार उनके गुरु-परिवार के किसी बालक ने, संभवत: महात्मा रामचन्द्र जी महाराज के पौत्र ने ठाकुर रामसिंहजी के चरण छू लिये । उन्होंने तुरन्त अपने पाँवों को पीछे खींच लिया और उस बालक के पैरों में अपना सिर रखकर बोले-"आप यह क्या करते हो, मैं तो इस परिवार का गुलाम हूँ ।'

गुरु और उनके परिवारजनों के अदब के बारे में हजरत मोहम्मद उमर फारुकी से सम्बन्धित एक किस्सा प्रासंगिक है । हजरत मोहम्मद फारुकी पैगम्बर मोहम्मद के द्वितीय खलीफा (उत्तराधिकारी) थे और पैगम्बर मोहम्मद के चौथे खलीफा, उनके भतीजे हजरत अली थे जो उनके दामाद भी थे । एक बार हजरत मोहम्मद फारुकी व हजरत अली के सुपुत्र साथ-साथ खेल रहे थे । खेल में हजरत अली के सुपुत्र ने हजरत उमर फारुकी के पुत्र से कह दिया 'हालाँकि तुम एक गुलाम के गुलाम हो, लेकिन बात मुझसे बराबरी की करते हो ?' हजरत फारुकी के पुत्र को यह बात बुरी लगी व उसने जाकर अपने पिता से इसकी शिकायत की । हजरत फारुकी ने अपने पुत्र को यह बात एक कागज पर लिखवा कर लाने को कहा ताकि उसमें किसी तरह के शक की गुंजाइश ना रहे । वह तुरंत हजरत अली के सुपुत्र के पास गया और कहा, यदि तुममें हिम्मत हो तो जो तुमने कहा था मुझे लिख कर दे दो । उसने तुरंत बिना किसी भय या संकोच के एक कागज पर वे ही शब्द लिखकर उसे सौंप दिया ।

जब हजरत फारुकी के पुत्र ने वह कागज लाकर अपने पिता को दिया तो वे इतने प्रसन्न हुए मानों उन्हें कारू का खजाना मिल गया हो । हजरत फारुकी ने उस कागज के टुकड़े को अपने सर-आखों पर लगाया और अपने पुत्र को बाहों में भरकर बोले कि मैं दुआ करता हूँ कि खुदा सबको तुम जैसा होनहार बेटा दे । फिर वे कहने लगे-'बेटे हजरत अली के

पुत्र, मेरे शैख़ की बेटी के पुत्र हैं अतः वह मेरे मालिक हैं, मैं इस परिवार का एक गुलाम हूँ । मैं वसीयत करता हूँ कि मेरी मृत्यु होने पर इस कागज के टुकड़े को मेरे सीने पर रख दिया जाए ताकि फरिश्ते जान जाएँ कि मैं अपने मालिक का एक गुलाम हूँ और वे मुझे शांति से उनके कदमों में रहने दें ।'

सतगुरु के निरर्थक से लगने वाले शब्द भी शिष्य के लिए ईश्वर-आज्ञा से कम नहीं, चाहे वे शास्त्र-विरुद्ध ही क्यों ना हो । जैसा कि मौलाना रूमी ने कहा है-'अगर तुम्हारा शैख़ तुम्हें तुम्हारे प्रार्थना के नमदे (मुसल्ला) को शराब में भिगोकर लाने को कहे, तो भिगो लाओ, क्योंकि तुम अभी इश्क की राहों के अदब से अनजान हो ।'

सत्य (सच्चाई)

ठाकुर रामसिंहजी की नजरों में सत्य आचरणगत है । परमात्मा सच्चे व्यक्ति के हृदय में निवास करता है। लेकिन सत्य भी वही ठीक है जो औरों के लिये मुसीबत ना बन जाए । उनकी दृष्टि में मानवता सत्य से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है । वे कहते थे कि मान लो किसी स्त्री का चरित्र ठीक नहीं है और यह बात आपको मालूम है। यदि आप उसके पति को सत्य कहने पर ही उतारु हो जाएँ तो उसका नतीजा क्या होगा ? ऐसे सत्य से बेहतर चुप रहना है । इस विषय में वे शास्त्रों से भी एक किस्सा सुनाया करते थे जिसमें एक गाय किसी तरह एक कसाई के हाथ से छूटकर भाग निकली । कसाई गाय को इधर-उधर खोजने लगा और उसकी नजर एक राहगीर पर पड़ी । उसने राहगीर से गाय के बारे में पूछा कि उसने उधर से किसी गाय को गुजरते तो नहीं देखा ? कसाई राहगीर को बारम्बार पूछ रहा था । दूसरी तरफ राहगीर सोचने लगा कि यदि उसने सत्य बता दिया तो उसके बहुत दुष्परिणाम होंगे । एक तो वह गौहत्या के पाप में भागी होगा और दूसरे कसाई के पाप कर्मों में भी वृद्धि होगी । ऐसे सत्य के बोलने से किसी का भी लाभ नहीं होने वाला । राहगीर दुविधा में था लेकिन उसने अपनी बुद्धि का प्रयोग किया और

बोला-जिसने देखा है वह बोल नहीं सकती और जो बोल सकती है उसने देखा नहीं है । यह किस्सा सुनाकर ठाकुर रामसिंहजी ने कहा कि सत्य और झूठ में फर्क करने की क्षमता केवल महापुरुषों के वचनों के पालन करने से ही पायी जा सकती है ।

मन की पवित्रता और आत्म-साक्षात्कार

परिश्रम और लगन के साथ आत्म-साक्षात्कार के लिये विचारों की शुद्धता पर ठाकुर रामसिंहजी जोर दिया करते थे व वे कहा करते थे:

'दिल का हुजरा साफ कर जाना की आमद के लिये,
ख्याल गैरों का हटा, उसको बिठाने के लिये,
वो आए भला क्यों कर रास्ता ही नहीं दिल में,
अरमानों का मजमा है, और भीड़ है हसरतों की'

जब तक सांसारिक इच्छाओं की तृप्ति में आनंद प्राप्त होता रहता है, परमात्मा को पाने की इच्छा दृढ़ नहीं होती। किसी मेहमान को ठहराने के लिये भी घर में जगह बनानी पड़ती है। परमात्मा को आडंबर से कोई सरोकार नहीं, वह तो भावना का भूखा है, जो हृदय की शुद्धता व पवित्रता पर रीझ जाता है । ठाकुर रामसिंहजी कहा करते थे कि यदि कोई बुरा व्यक्ति या अपना शत्रु भी मुश्किल में हो तो, उसकी दूर से मदद कर एक तरफ हट जाना चाहिए । उसके प्रति नफरत की भावना नहीं होनी चाहिए । यदि वह आपको नुक्सान पहुँचाता है तब भी उसके प्रति दुर्भावना की जगह परमात्मा से उसके लिये प्रार्थना करनी चाहिए । इस संसार को चलाने की जिम्मेदारी परमात्मा की है ना कि तुम्हारी । हमें 'उसके' कामों में दखल देना उचित नहीं । 'वह' जानता है औरों के साथ भला या बुरा क्या व्यवहार करना है ? यदि तुम्हारे हृदय में दुर्भावना आती है तो तुम निश्चय ही अपने मार्ग से भटक जाओगे । परमात्मा तुम्हारी भावना व कर्मों को देखता है ना कि तुम्हारे दिखावे को । तुम्हारी सारी पूजा-उपासना तुम्हारे स्वयं के लिये है, परमात्मा को उससे कोई फर्क नहीं पड़ता । आत्मा सदैव पवित्र रहती है, बुराई तो केवल मन में

होती है । मनुष्य को हमेशा अपने मन की चौकसी करते रहना चाहिए कि यह क्या सोच रहा है, क्या षडयन्त्र रच रहा है ? यदि यह बुराई की तरफ जा रहा है तो इसे प्रेम से सही मार्ग पर प्रेरित करना चाहिए । धार्मिक कर्मकाण्ड का उद्देश्य भी मात्र मन को सही मार्ग पर चलने को प्रेरित करना ही है । थोड़ी-सी असावधानी से यह अपने मार्ग से भटक सकता है । लेकिन मन को प्रेम से बहलाना-फुसलाना ही बेहतर है क्योंकि जबरदस्ती करने से यह किसी बिगड़ैल घोड़े की तरह दुलत्ती भी मार सकता है । जोर जबरदस्ती से मन सुस्त तो हो सकता है, शुद्ध नहीं । जैसे ही पुन: मौका मिलेगा, यह फिर से कूदने लगेगा । अत: एक भी क्षण के लिए मन को खाली नहीं छोड़ना चाहिए । भीतरी सफाई के लिए बाहरी आचरण की शुद्धता भी आवश्यक है । मन को मारना या जबरदस्ती करना ठीक नहीं । इसे तो प्रेम से परमात्मा की तरफ ले जाना चाहिए । यदि यह कार्य मुश्किल लगे तो परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए । परमात्मा प्रार्थना पर तुरंत दौड़े आते हैं ।

सूफ़ी साधना का सार है मन की पवित्रता, जिस पर वे सर्वोपरि जोर देते है । साधारण लोगों की तो बात ही क्या है, बड़े-बड़े ऋषि मुनि भी अपने मन की दुर्बलता के कारण अपने पथ से भटक जाते हैं। भूल करना मनुष्य का स्वभाव है और शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसने अपने जीवन में कभी कोई भूल ना की हो । अतः ऐसा व्यक्ति श्रेष्ठ है जिसे ना राग हो ना द्वेष । औरों को अपने से बेहतर समझना एवम् बुराई का बदला भलाई से देना सच्ची मानवता है । दूसरों की कमियाँ गिनना अच्छी बात नहीं । इससे मनुष्य की मुक्ति का रास्ता अवरुद्ध होता है । दूसरों की बुराइयाँ जाहिर ना करना अच्छी बात है । जब परमात्मा सर्वज्ञ होकर लोगों की बुराइयाँ प्रकट नहीं करता, हमें मनुष्य होकर ऐसा करने का क्या हक है ? दूसरों की बुराइयों पर नजर डालने से वही बुराइयाँ खुद में प्रवेश करने लग जाती हैं । इससे बेहतर है स्वयं अपनी कमियों पर निगाह करना, यदि उन्हें गिना जाए तो शायद औरों की कमियाँ देखने

का फिर वक्त ही ना मिले ? भले व्यक्ति को तो सभी प्रेम व सम्मान देते हैं लेकिन प्रश्न है बुरे व्यक्तियों के साथ व्यवहार का । उन्हें तिरस्कृत करने की बजाए उनसे सहानुभूति एवम् सहृदयता से व्यवहार करने की आवश्यकता होती है । अपनी सामर्थ्य भर उनकी मदद कर एक तरफ हो जाना चाहिए ।

वे कहते थे कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर जैसा सोचते हैं वैसा ही मिलता है अथवा हो जाता है; ऐसे ही किसी सत्पुरूष के पास बैठकर, जैसा अच्छा-बुरा ख्याल करोगे, वैसे ही बन जाओगे।

'जो मन नारी की ओर निहारत, तो मन होत है नारी को रूपा,
जो मन काहु पे क्रोध करे, तब क्रोध मयी हवै जाय तद्रूपा,
जो मन माया-ही-माया रटे नित, तो मन बूड़त माया के कूपा,
'सुन्दर' जो मन ब्रह्म विचारत, तो मन होत है ब्रह्म स्वरूपा'

फालतू विचारों से जीवन का बहुत बड़ा भाग व्यर्थ चला जाता है, विचार पुख्ता होने पर उनमें ऐसी ताकत आ जाती है कि इन विचारों से ही फिर बुरे कर्म बनते हैं । उनका कहना था-अशुद्ध विचारों में क्यों उलझते हो, सद्विचारों का नाश करने के साथ-साथ भविष्य को और बिगाड़ देते हैं इससे तो अच्छा है 'उसकी' याद करो हर वक्त 'उसका' खयाल बना रहे ।

सफर शुरू करने पर घर अपने आप छूट जाता है, ऐसे ही जब तक किसी शुभ विचार का हर समय अभ्यास नहीं करोगे तब तक बुरे विचारों से पीछा नहीं छूटने का, इसलिये हर वक्त उसकी याद बनाये रखो । किसी सत्संगी के पूछने पर उन्होंने फरमाया-"इन विचारों को उठने दो, यह बुरे विचार ही बदल कर आपको आगे ले जायेंगे; इसमें भी उसकी इच्छा ही देखो, इनसे झगड़ा करना ठीक नहीं इनको अपना काम करने दो, आप अपने काम में लगे रहो । जो संस्कार पहले के जमे पड़े हैं वे किसी-ना-किसी रूप में तो बाहर निकलेंगे ही । जैसे किसी ओबरी (गाँवों में मिटटी की कोठी-बड़ा बर्तन) में नीचे गुड़ की हाँडी रखी हो ऊपर दूसरा

सामान रखा हो, जब धीरे-धीरे ऊपर का सभी सामान हट जाएगा, तभी तो गुड़ हाथ लगेगा, ऐसे ही अन्तःकरण में संस्कार जमा रहते हैं ।

इस सन्दर्भ में वे एक गुरु एवम् शिष्य का किस्सा सुनाया करते थे: गुरु ने दक्षिणा में शिष्य से संसार की सबसे निकृष्ट वस्तु देने के लिये कहा । शिष्य ने सोचा कि गुरुदेव ने यह तो बहुत ही साधारण गुरु दक्षिणा माँगी । वह दक्षिणा में देने के लिये एक पत्थर को उठाने को हुआ कि उसके अन्तरमन में अहसास हुआ कि लोग पत्थर को गढ़ कर उससे मूर्तियाँ बनाते हैं एवम् पूजा करते हैं । पत्थर को मकान बनवाने के काम में भी लेते हैं, सड़क व पुल भी पत्थर से ही बनते हैं अतः पत्थर निकृष्ट नहीं हो सकता । शिष्य ने पत्थर को छोड़, गोबर उठाने की सोची तो उसे फिर लगा कि गोबर भी खाद और उपलों के लिये प्रयोग किया जाता है । इसी तरह उसने बहत सी चीजों के बारे में सोचा और पाया कि किसी ना किसी रूप में वे सब उपयोगी वस्तुएँ थीं । अन्त में उसने सोचा कि मनुष्य की विष्ठा तो सभी तरह से निकृष्ट है और वह उसे उठाने को उद्धृत हुआ कि उसके मन में एक विचार कौंधा कि कुछ ही समय पहले यह भी एक काम की वस्तु थी । खाने के रूप में जब यह थी तब लोग इसका सम्मान करते थे लेकिन कुछ ही घण्टे मनुष्य की संगत में रहने से उसकी यह दशा हो गयी । यदि मृत जानवर के चमड़े में भी घी रखा जाए तो वह कितने ही समय तक खराब नहीं होता, लेकिन मनुष्य के जीवित शरीर में अच्छे से अच्छा खाना भी विष्ठा के रूप में बदल जाता है । शिष्य को लगा कि परमात्मा की सृष्टि में कहीं कोई ऐसी वस्तु नहीं है, यह सब खोट तो मनुष्य के भीतर है जो सब बुराइयों की जड़ है । यह मन ही है जो सबसे बुरा है लेकिन औरों में बुराई ढूँढता फिरता है । शिष्य को आत्मज्ञान होने लगा । वह भागता हुआ अपने गुरुदेव के पास पहुँचा और उनके चरणों में गिरकर बोला, "मुझे क्षमा करें । मैं सबसे निकृष्ट वस्तु को ढूँढने बाहर गया, लेकिन सबसे निकृष्ट तो यह मेरा मन है जो सभी बेकार की बातें अपने अन्दर सहेजता रहता है, यह मेरे भीतर ही है । यह

ही सबसे निकृष्ट वस्तु है एवम् आपकी माँगी गुरु दक्षिणा के अनुरूप ।" गुरुदेव तो यही चाहते थे कि शिष्य की आँखे खुल जाएँ । उनका उद्देश्य पूरा हो गया था ।

मोह, आसक्ति

ठाकुर रामसिंहजी का फरमाना था कि भौतिक पदार्थों से मोह परमात्मा की निरंतर याद में बाधक होता है । भौतिक पदार्थों पर अधिपत्य की भावना के बजाए उनका यथायोग्य उपयोग कर दूसरों के लिये उपलब्ध कराना बेहतर है । अगर किसी चीज से आसक्ति रखनी ही है तो वह परमात्मा से होनी चाहिए । टी.बी. सेनेटोरियम में एक बार साबुन से हाथ धोते हुए उठते हुए झागों को देख वे बोले गौर से देखो ! इन झागों के छोटे-छोटे बिन्दुओं में आस-पास का पूरा दृश्य दिख रहा है, इसमें सबका चेहरा साफ-साफ नज़र आ रहा है; ऐसे ही परमात्मा संसार के कण-कण में ज़रें-जर्रे में अपनी पूर्ण सत्ता से विराजमान है । वह हर एक जड़-चेतन में समाया हुआ है और यह सब उसमें समाये हुए हैं, लेकिन बीच में ममता रूपी परदा पड़ा है । जब तक यह नहीं हट जाय, उसे देखना मुश्किल है ।

'हर चीज कि गैर अस्त सीनए तुस्त,

बिस यार हिजाबेस्त मियाने तो व यार'

अर्थार्थ जब तक तुम्हारे दिल में दूसरी चीज़े भरी हैं, तब तक यार (ईश्वर) से कैसे मिल सकोगे ? तेरे और उसके बीच में यही तो परदा है।

परमात्मा को भूल इस दुनिया को ही सब कुछ समझ लेना ही वास्तव में नास्तिकता है । अतः ठाकुर रामसिंहजी कहा करते थे कि खूब कमाओ, प्रसन्न रहो लेकिन हर हाल में परमात्मा की याद बनाए रखो । दुनिया मुक्ति की राह में बाधा नहीं है वरन् दुनियावी चीजों के प्रति अनावश्यक मोह ही बाधा है । भौतिक पदार्थों से केवल आवश्यकता अनुसार मतलब रखना ही उचित है । कमाना सब जानते हैं लेकिन खर्च करना नहीं । केवल आवश्यकता अनुसार खर्च करना ही उचित है वरना

यह फिजूलखर्ची होगी । मितव्ययी होना एक बड़ा सद्‌गुण है अतः खर्च हमेशा देख भाल कर करना चाहिए और इस प्रकार बचाए हुए पैसों से औरों की सहायता करनी चाहिए । जिसने मितव्ययता अपना ली हमेशा प्रसन्न रहने का गुर सीख लिया ।

सादगी से रहना जिससे औरों को भी सादगी से रहने की प्रेरणा मिले व आचरण की उत्कृष्टता को ठाकुर रामसिंहजी आत्मिक उन्नति का आधार मानते थे । आचरण के सम्बन्ध में उनका कहना था कि दुर्भावना से दूसरों को शारीरिक, मानसिक या वाणी द्‌वारा कभी कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए । सभी कुछ उसी परमात्मा का समझना चाहिए । भक्त सभी चीजों को परमात्मा की समझता है जबकि नास्तिक व्यक्ति उन पर अपना अधिकार जताता है । इस बारे में वे महात्मा शम्सतबरेज का एक किस्सा सुनाया करते थे: महात्मा शम्सतबरेज एक बार कहीं से जा रहे थे कि रास्ते में उन्होंने एक युवक की मृत देह पड़ी देखी जिसके पास उसकी माँ अत्यंत विलाप कर रही थी । कुछ लोग इकट्‌ठे हो गए थे और उनमें से कुछ महात्मा शम्सतबरेज को पहचानते थे । उन्होंने महात्मा शम्सतबरेज को देख लिया और उन्हें रोककर उनसे उस मृत युवक को फिर से जीवित कर देने को कहने लगे । युवक की माँ का असहनीय क्रन्दन देख उनका हृदय पिघल गया और उन्होंने मृत देह की तरफ देख कर कहा-"कुम-ब-इजानिल्लाह' (खुदा के हुक्म से उठ जा) लेकिन मृत देह में कोई हरकत नहीं हुई । महात्मा शम्सतबरेज ने तब मृत देह को एक ठोकर लगाते हुए कहा- 'कुम-ब-इजनी' (मेरे हुक्म से उठ जा) । युवक तुरन्त डरकर खड़ा हो गया, उसकी मृत देह में प्राण लौट आए । यह खबर उड़ते-उड़ते बादशाह के कानों में भी जा पहुँची । बादशाह ने महात्मा शम्सतबरेज को काफिर करार देते हुए जल्लादों को उनके शरीर से खाल खींच लेने का हुक्म दिया । बादशाह के नौकरों में इतनी हिम्मत नहीं थी कि वे महात्मा शम्सतबरेज के साथ बदसलूकी कर सकें । वे उनके पीछे-पीछे बादशाह का हुक्म बजा लाने के लिये घूम रहे थे । उनकी दशा पर

तरस खाकर महात्मा शम्सतबरेज ने स्वयं अपने सर पर से खाल को पकड़कर आदेश दिया 'छोड़ इस शरीर को।' इसके साथ ही सिर से लेकर ऐड़ी तक की खाल उनके हाथ में आ गयी जिसे उन्होंने बादशाह के कारिन्दों को सौंप दिया और स्वयं किसी ओर चले गए ।

इस घटना की खबर पाकर, एक और फकीर मुलतान पधारे । शहर में आकर उन्होंने एक सुनार को 'खुदा की अंगुली' के लिये एक अंगूठी बनाने को कहा । सुनार के पूछने पर उन्होंने स्वयं अपनी अंगुली आगे कर दी । सुनार भौचक्का रह गया । उसने फकीर से कहा कि क्या तुम्हें मालूम नहीं अभी कुछ दिन पहले ही एक और खुदा की खाल उतार ली गई है और अब तुम आ गए हो अपना वही हश्र करवाने ? सुनार की बात सुनकर फकीर ने और शोर मचाना शुरू कर दिया क्योंकि वह तो वहाँ आया ही इस उद्देश्य से था । यह वाद-विवाद सुनकर कुछ लोग वहाँ इकट्ठे हो गए, बात बादशाह तक जा पहुँची और उसने फकीर को अपने दरबार बुलावा भेजा । बादशाह ने फकीर से कहा-'देखो तुम जो चाहो मुझसे ले लो, लेकिन ये काफिराना शब्द मत दोहराओ ।' फकीर ने कहा कुछ माँगने से पहले मेरे कुछ प्रश्नों का जवाब देना होगा । बादशाह तुरन्त मान गया। फकीर ने पूछा, अच्छा बताओ तुम्हें क्या क्या चीजें मुझे देने का हक है ?

बादशाह- यह सब जमीन जायदाद, हाथी, घोड़े, महल, नौकर-चाकर, सब मेरा है जिसे मैं तुम्हें दे सकता हूँ।

फकीर- तुम्हारे पैदा होने से पहले ये चीजें किसके पास थीं ?

बादशाह- मेरे पैदा होने से पहले ये सब मेरे पिता और उनके पहले उनके पिता के पास थी । यही क्रम चलता आ रहा है।

फकीर-जब यह सब तुम्हारे पिता के पास थी, तब वह भी इन सबको अपना कहता होगा और इसी तरह तुम्हारा दादा भी इन्हें अपनी सम्पत्ति बताता होगा ?

बादशाह- इसमें क्या शक है ? वे इसे अपनी बताते होंगे और मेरे मरने पर यह सम्पत्ति मेरे पुत्र की होगी ।

फकीर-तो जरा सोचो और बताओ कि इस तरह यह सब कहाँ से आया और कहाँ जाएगा ?

बादशाह-इसमें सोचने की क्या बात है ? सभी चीजें, सारा संसार खुदा से पैदा होकर उसमें ही जा मिलेगा । मैं इस पर पूरा इतमिनान रखता हूँ । यही सत्य भी है ।

फकीर-तो फिर सावधान हो जाओ, और अपने शब्दों पर कायम रहो । यदि तुमने जो कहा वह सत्य है तो फिर तुमने किसकी खाल खिंचवाई थी और यह अंगुली किसकी है, जिसके लिये मैं सुनार से अंगूठी बनाने के लिये कह रहा था ?

बादशाह गहरे सोच में पड़ गया । सर झुकाकर वह फकीर की बातों पर मनन करने लगा । यदि वह हाँ कहता तो उस पर खुदा की खाल खिंचवाने का अपराध साबित होता है और उसके अलावा फकीर द्वारा अपनी अंगुली दिखाकर खुदा की अंगूठी बनवाने में भी कोई जुर्म साबित नहीं होता क्योंकि सभी चीजें तो खुदा की ही हैं । अंतत: बादशाह फकीर के पैरों में गिर पड़ा और उससे काफिर और मोमिन के बीच फर्क समझाने की विनती करने लगा । फकीर ने समझाया-'काफिर खुदा को भुलाकर हर वस्तु को मेरी या तेरी बताता है जबकि मोमिन प्रत्येक वस्तु को खुदा की ही मानता है और उसी अनुसार आचरण करता है ।' बादशाह को अपनी गलती का अहसास हो गया ।

सच्ची अनासक्ति के बारे में ठाकुर रामसिंहजी का कहना था कि यह मन की एक स्थिति है । अनासक्ति का अर्थ संसार से संन्यास कदापि नहीं है । चाहे कोई जंगल में रहे या घर में, जीवन का असली उद्देश्य तो आत्म-साक्षात्कार है । जब सभी ओर से ध्यान खींचकर परमात्मा की तरफ लगा दिया जाता है, तो अनासक्ति की सच्ची भावना प्रकट होती है । लेकिन कोई वस्तु या प्राणी यदि आप में प्रतिरोध की भावना पैदा करते

हैं तो उनसे निर्लिप्त होना या फिर उसमें परमात्मा की छवि देखना एक बेहतर साधन है । इस संदर्भ में ठाकुर रामसिंहजी एक कहानी सुनाया करते थे:

एक बार एक बादशाह एक सुन्दर युवती की तरफ आकृष्ट हो गया और उससे मिलने की जिद पर अड़ गया । युवती ने बादशाह से एक सप्ताह का समय माँगा । एक सप्ताह बाद जब बादशाह उसके घर पहुँचा तो उसने पाया कि वह युवती पहले की अपेक्षा काफी कमजोर हो गयी थी और उसके सौन्दर्य का आकर्षण भी कम हो गया था । बादशाह द्वारा इसका कारण पूछने पर युवती ने उसे बगल वाले कमरे में जाने का इशारा किया । बादशाह उस तरफ गया लेकिन कमरे में भीतर प्रवेश नहीं कर पाया क्योंकि अन्दर से विष्ठा की बदबू आ रही थी और मक्खियाँ भिनक रही थीं । जब बादशाह ने नाक और मुँह ढकने चाहे तो पास ही खड़ी एक नौकरानी ने कहा-"क्यों अपना मुँह ढक रहे हो ? तुम्हें यही सब तो चाहिए था, जिससे अब तुम्हें घिन आ रही है । शरीर की सुन्दरता तो सिर्फ बाहरी है भीतर तो यही सब भरा है जो त्वचा द्वारा ढके हुए होने के कारण ना ही तो दिखलायी पड़ता है, ना ही उसकी बदबू बाहर आती है, ना ही इस पर मक्खियाँ भिनकती हैं ।" यह सुनकर बादशाह बुरी तरह हिल गया । उसे बात समझ में आ गई और अपनी भूल भी । उसकी युवती पर आसक्ति जाती रही । यह कहानी सुनाकर ठाकुर रामसिंहजी ने कहा कि बादशाह ने ना ही तो अपना राजकाज छोड़ा ना ही उसने संन्यास लिया बल्कि अपने कुविचारों एवम् अनुचित वृत्ति पर विजय पाकर अपना धर्म निभाने लगा।

इच्छाएँ

इच्छाओं के विषय में ठाकुर रामसिंहजी फरमाते थे:

'चाह चमारी चूहड़ी, सब नीचन ते नीच,

तू तो पूरन ब्रह्म था, जो चाह ना होती बीच'

वे कहा करते थे कि चमारी की नजर हमेशा चमड़े पर रहती है । अर्थात् सांसारिक इच्छाओं में फँसा मनुष्य हमेशा भौतिक वस्तुओं के

बारे में ही चिन्तित रहता है । चूहे की तरह इच्छाएँ उसकी दिव्यता को कुतर-कुतर कर समाप्त कर देती है । यदि मनुष्य में इच्छाएँ ना होती तो वह पूर्णतया बन्धनमुक्त होता । इच्छाएँ ही परमात्मा की प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधक हैं । वे साधक को अपने असली उद्देश्य से भटका देती हैं अतः प्रेम व भक्ति की इच्छा के सिवाय अन्य इच्छाओं पर नियंत्रण पाना आवश्यक है । सांसारिक इच्छाएँ व मुक्ति की राह पर चलना दोनों एक साथ नहीं निभायी जा सकती क्योंकि वे परस्पर विरोधी हैं । लेकिन ठाकुर रामसिंहजी ने कर्म ना करने को उचित नहीं मानते थे । उनका कहना था कि अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये कर्तव्य का निर्वाह जरूरी है एवम् उसके लिये यथोचित प्रयास भी आवश्यक है । परमात्मा सबकी जरूरतें पूरी करने में सहायता करता है, लेकिन इच्छाओं का गुलाम बन जाना उचित नहीं है । इच्छाएँ ही संसार है । यही मोह और बंधन है जिससे बाहर आना आवश्यक है ।

वे कहा करते थे:

'भागती फिरती थी दुनिया, जब तलब करते थे हम,

अब जो नफरत हमने की, तो बेकरार आने को है'

और

'जब से हटी हैं ख्वाहिशें, फूलों को सूँघने की,

सारे जहाँ के गुलशन, मेरे ही हो गए'

केवल इतना ही नहीं कि भौतिक इच्छाओं को त्याग दिया जाए, वे कहा करते थे कि इस राह में सिद्धियों और चमत्कारों से भी बचना उतना ही जरूरी है ।

'चाह गयी चिन्ता मिटी, मनवा बेपरवाह,

जा को कुछ नहीं चाहिए, सो जग शहंशाह'

सिद्धियों व चमत्कार के सम्बन्ध में वे राजस्थान के प्रसिद्ध संत दादू दयाल के एक शिष्य का किस्सा सुनाया करते थे जिसे इसी कारण पुनः जन्म लेना पड़ा । संत दादू दयाल जयपुर के निकट एक गुफा में रहा

करते थे । उनके शिष्यगण आसपास के इलाके से भिक्षा माँग लाते । उनमें से एक शिष्य का नाम जग्गा था । वह एक दिन भिक्षा मांगने आमेर में एक बनिये की दुकान के सामने जा पहुँचा । वहाँ बनिये की बेटी चरखे पर सूत कात रही थी । जग्गा ने आवाज लगायी-"दे माई सूत, ले भाई पूत ।" लड़की ने कुछ सूत जग्गा को दे दिया । सूत लेते वक्त जग्गा ने कहा, 'ले माई पूत ।' आश्रम वापस लौटकर जग्गा ने सब बात संत दादू दयाल जी को बतलायी । संत दादू दयाल जी ने कुछ क्षण सोचा और फिर जग्गा से बोले कि तुमने गजब कर दिया । उस कन्या के भाग्य में पुत्रयोग नहीं है । जग्गा का वचन रखने का एक मात्र उपाय यही था कि जग्गा स्वयं उस कन्या के पुत्र रूप में जन्म ले । जग्गा ने संत दादू दयाल के आदेश को स्वीकार कर लिया लेकिन प्रार्थना की कि अगले जन्म में भी वे उसे अपनी शरण में ले लेवें । संत दादू दयाल मान गए । वे उस कन्या के घर गए व उसके पिता को उसका विवाह शीघ्र ही कर देने को कहा और साथ में यह भी कहा कि कन्या के ससुराल वालों को बता दिया जाए कि उसका होने वाला पुत्र संसार त्याग कर छह वर्ष की आयु में सन्यास ले लेगा । कन्या का विवाह दौसा के श्री परमानन्द से हुआ । जग्गा ने सुंदरदास के रूप में पुनः जन्म धारण किया, जिसे संत दादू दयाल ने विक्रम संवत 1659 में अपनी शरण में ले लिया ।

ठाकुर रामसिंहजी का कहना था कि दुनियावी चीजों से लगाव ही माया है । सरल शब्दों में माया का तात्पर्य है-'मैं और मेरा, तू और तेरा ।' अतः सावधान रहते हुए सभी के प्रति भ्रातृत्व की भावना रखनी चाहिए । कोई चला जाए तो दुःख नहीं और किसी के आने पर विशेष प्रसन्नता नही । और इसका सबसे सरल उपाय वे निरंतर परमात्मा की याद बनाए रखना बताते थे।

वे इस राह पर चलने वालों के लिये किसी भी प्रकार के नशे को सर्वथा निषिद्ध कहते थे । नशे से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और मनुष्य भले और

बुरे में फर्क करना भूल जाता है । शराब विशेष कर स्नायुओं को दुर्बल कर देती है और योगाभ्यास के लिये पात्रता समाप्त कर देती है ।

मुक्ति के मार्ग में दूसरी बाधा वे काम को बताया करते थे । यह भावना इतनी सूक्ष्म एवम् बलवती होती है कि सुनने मात्र से यह मन पर छा जाती है, देखना तो दूर की बात है । घी के बर्तन को पूरी तरह खाली करने के बाद भी आग पर रखने से उसमें कुछ घी इकट्ठा हो ही जाता है । इसी प्रकार वृद्धावस्था में भी कोई अपने आप को पूर्णतया काम के प्रभाव से मुक्त नहीं समझ सकता । आत्मिक उन्नति में यह सबसे बड़ी बाधा है । जिस प्रकार घोड़ा बेकाबू होने पर सवार को गिरा देता है, यदि मन में काम भावना जाग्रत हो जाए तो यह परमार्थ की राह से भटकन पैदा कर देती है । अतः हमेशा सावधान रहकर मन पर निगरानी रखना आवश्यक है ।

सच्चे व्यक्ति का कर्तव्य है कि यदि अनजाने में भी उसकी नजर किसी पर-स्त्री पर पड़ जाए तो उसे माँ की दृष्टि से देखें । उस पर से अपनी दृष्टि हटा ले । पहली नजर में कोई दोष नहीं होता, वह स्वाभाविक है, लेकिन यदि कोई पुनः निगाह डालता है तो संस्कार बने बिना नहीं रहता । यदि किसी स्त्री की तरफ देखना ही पड़े तो उसकी आखों में देखने के बजाए उसके ललाट की तरफ देखना चाहिए । स्त्रियों को भी कुंकुम लगाने को इसलिये कहा जाता है ताकि वे बुरी नजर से बच सकें ।

संस्कार के प्रभाव के बारे में एक दृष्टांत प्रासंगिक है: एक राजकुमार जो बड़ा सहृदय, सुशील और प्रजा का चहेता और उनकी सहायता करने वाला था अक्सर शहर में लोगों के सुख-दुःख का हाल जानने निकल जाता। ऐसे ही एक बार वह अपने कुछ सैनिकों को साथ लेकर शहर में निकला । कुछ समय बाद जब वह लौटकर आया तो उदास और चिंताग्रस्त। उसका किसी काम में मन ना लगता। धीरे-धीरे राजकुमार ने खटिया पकड़ ली। राजा ने कई वैद्य-हकीम बुलवाये लेकिन वे राजकुमार

की बीमारी का निदान नहीं कर पाए। थक-हारकर राजा ने ऐलान करवा दिया कि जो कोई राजकुमार की बीमारी को ठीक कर देगा, उसे भारी ईनाम दिया जाएगा। राजकुमार की बीमारी की बात सुनकर एक वृद्ध व्यक्ति आया। उसने राजकुमार के साथ उस दिन जो सैनिक गए थे, उन्हें बुलवाया और उनसे पूछताछ करने से उसे मालूम चला कि जब राजकुमार महल से निकला तो वह ठीक था लेकिन लौटकर आने के बाद से ही वह उदास और चिंताग्रस्त हो गया। उसने सैनिकों को कहा कि वे उसे उसी रास्ते से ले चलें जिससे उस दिन राजकुमार का गुजरना हुआ था। लौटकर आकर उस व्यक्ति ने सैनिकों को कुछ निर्देश दिये और अगले दिन अनुनय-विनय कर वह राजकुमार को अपने साथ फिर उसी रास्ते ले चला। एक जगह पहुँचकर राजकुमार कुछ ठिठका, और इधर-उधर देखने लगा। उस व्यक्ति ने पूछा, "राजकुमार, क्या खोज रहे हो ? रेशम का गट्ठा ? वह तो जलकर राख हो गया।" 'अच्छा', राजकुमार बोला और ऐसा लगा जैसे उसके सर से कोई बहुत बड़ा बोझ उतर गया हो। दरअसल हुआ यह था कि एक जगह रेशम के धागों का उलझा हुआ एक बहुत बड़ा गट्ठा देखकर राजकुमार के दिमाग में यह बात अटक गयी थी कि यह कैसे सुलझेगा और कौन इसे सुलझायेगा ? इसी उलझन ने राजकुमार की बीमारी का रूप ले लिया था। उस व्यक्ति ने यह अनुमान लगाकर कि राजकुमार की चिंता और बीमारी का यह कारण हो सकता है, सैनिकों से कहकर उस गट्ठे को जलवा दिया था और गट्ठे के जल जाने से बीमारी की जड़ ही जाती रही, राजकुमार ठीक हो गया।

आत्म नियंत्रण के अभाव में सिद्ध पुरुष भी अपने स्थान से गिर जाते हैं लेकिन इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि जब वे ही ना बच सके तो साधारण आदमी की क्या औकात है ? परमात्मा में दृढ़ विश्वास एवम् अभ्यास से साधारण आदमी को भी असीम क्षमता प्राप्त हो जाती है। ठाकुर रामसिंहजी पारिवारिक जीवन को साधारण लोगों के लिये सर्वाधिक उपयुक्त बताते थे, लेकिन गृहस्थ जीवन में भी आत्म-नियंत्रण

को वे जरूरी मानते थे । पत्नी पति को सद्मार्ग पर ले जाने में हर तरह से सहयोग करती है । इस संदर्भ में उन्हें यह भजन प्रिय लगता था:

'संतो सो ही सतगुरु मोहे भावे, जो आवागमन छुड़ावे,
कर्म करे रहे अकर्मी. ऐसी युक्ति बतावे,
जग आनंद फंद से न्यारा, भोग में योग सिखावे'

लेकिन 'भोग में योग' का तात्पर्य स्वछंद आचरण नहीं है जैसा कि कई लोग कहते व करते आये हैं बल्कि इसका असली तात्पर्य हर स्थिति में परमात्मा की याद बनाए रखना है । जो परमात्मा को भोग में भी याद रखता है वह उससे बनने वाले संस्कारों से बच जाता है ।

इच्छाओं से चिंता और चिंता से मन में अस्थिरता उत्पन्न होती है । क्या होगा यह परमात्मा की इच्छा पर निर्भर है । परमात्मा को भूलकर स्वयं को कर्त्ता-धर्ता समझना ही मुश्किलों की जड़ है । परमात्मा ही समस्त चराचर का मालिक है और 'उसने' हमें चीजों की सार-संभाल की जिम्मेदारी ही सौंपी है अतः हमें चिन्तित होने का कोई कारण नहीं है । जब तक कोई स्वयं अपने लिये चिन्तित होता है तब तक परमात्मा को उसके लिये चिन्ता की क्या आवश्यकता है ? जब तक बच्चा खेलता रहता है माँ उसके बारे में चिन्ता नहीं करती लेकिन ज्यों ही बच्चा क्रन्दन करता है, माँ दौड़कर उसके पास पहुँच जाती है । अतः हमेशा परमात्मा को स्मरण करते रहना चाहिए । 'वह' जो शत्रु की भी जरूरतों को पूरी करता है, किस प्रकार भला अपने मित्रों को भूल सकता है ? ठाकुर रामसिंहजी कहा करते थे कि चिन्ता करने से बेहतर भूखे रहना है । भक्त के लिये भगवान को छोड़ किसी और के सामने हाथ फैलाना शोभनीय नहीं है । सद्पत्नी अपने पति को छोड़ किसी और के समक्ष अपनी कठिनाइयों का जिक्र नहीं करती ना ही किसी चीज के लिये जिद करती है वह तो जिस हाल में पति रखे उसमें खुश रहती है । इसी तरह भक्त को भी जिस हाल में भगवान रखे खुश रहना चाहिए । हाँ फिर भी औरों के भले के लिये कर्ज लेना पड़े तो बुरा नहीं है । यदि चिन्ता किये बगैर ना

रहा जा सके तो केवल परमात्मा के प्रति चिन्ता करनी चाहिए जिससे शांति ही प्राप्त होगी ।

किल्लत, इल्लत और जिल्लत

ठाकुर रामसिंहजी का कहना था कि परमार्थ के राही को तीन चीजें किल्लत, इल्लत और जिल्लत घेरे रहती हैं जो कि सुनार के हथौड़े की तरह चोट मारकर सारे टेढ़ेपन को दूर कर मन को निर्मल कर देती है । इस चोट से अहंकार दूर हो जाता है और मनुष्य ईश-कृपा का पात्र बन जाता है । किल्लत का शाब्दिक अर्थ है गरीबी-तंग हाथ । लेकिन इस मार्ग में किल्लत का अर्थ घोर गरीबी ना होकर मन की उस अवस्था से है जिसमें धन के प्रति मोह की भावना समाप्त हो जाती है । गरीब और अमीर दोनों ही धन के विषय में चिंता करते रहते हैं । धनी व्यक्ति धन की रक्षा हेतु चिन्ता करता रहता है जबकि गरीब व्यक्ति सम्पत्ति कैसे अर्जित की जाए इसकी चिन्ता करता रहता है । किल्लत का असली तात्पर्य सन्तोष हासिल करने से है जिसमें धन-सम्पत्ति के प्रति मोह की भावना समाप्त हो जाती है और अधिकाधिक सम्पत्ति के संग्रह का भाव जाता रहता है । सम्पत्ति पर अधिकार की भावना समाप्त हो जाना और धनी व्यक्ति का दंभ दूर हो जाना, असली मायने में किल्लत है । इल्लत का शाब्दिक अर्थ बीमारी, शारीरिक पीड़ा, या भौतिकी परेशानियों से ह और जिल्लत का अर्थ है बदनामी । इनका असली तात्पर्य भौतिक सुखों की चाह व प्रशंसा प्राप्त करने की भावनाओं से ऊपर उठना है । ये दोनों भी आत्मिक उन्नति के लिए अत्यंत सहायक हैं । केवल परेशानी में ही परमात्मा की याद आती है । एक दिन जब वे टी.बी. सेनेटोरियम में भर्ती थे, ठाकुर रामसिंहजी ने अन्य रोगियों की तरफ इंगित करते हुए कहा कि देखो मनुष्य बीमारी और तकलीफ के साथ भी जीना चाहता है, कोई मरना नहीं चाहता । प्रत्येक सांस अनमोल है फिर भी सब विस्मृत रहते हैं और कोई परमात्मा का धन्यवाद नहीं करता । लोग तकलीफ से डरते हैं लेकिन जीना चाहते हैं । अपने कर्मों का फल स्वयं को भोगना ही पड़ता

है । कोई भी कर्मफल से बच नहीं सकता । कर्मफल की न्यूनता के लिये केवल परमात्मा से प्रार्थना की जा सकती है लेकिन इसमें भी जिद नहीं करनी चाहिए । जैसे-जैसे पहाड़ की चोटी के समीप कोई पहुँचने लगता है चढ़ाई कठिन होती जाती है और प्रत्येक कदम फूँक-फूँक कर रखने की जरूरत होती है वरना गिरने का भय बना रहता है । इसी तरह हमेशा परमात्मा में दृढ़ विश्वास बनाए रखना चाहिए और उसकी कृपा पर भरोसा । 'उसकी' बख्शी तकलीफों में भी 'उसी' की कृपा काम करती रहती है । वे कहते थे:

'सुख के माथे सिल पड़े, जो नाम हृदय से जाए,
बलिहारी वा दुःख की, जो पल-पल नाम रटाए'

जब फोड़े में पस पड़ जाती है तो चीरा लगाकर उसे बाहर निकालना आवश्यक हो जाता है । इसी प्रकार परमात्मा अपने भक्तों को ही दुख व तकलीफ देता है जिससे कि वे बाहरी संसार की चमक-दमक को छोड़, विस्मृति से निकल फिर परमात्मा की तरफ मुखातिब हो जाएँ ।

बीमारी और कठिनाइयों से घबराना उचित नहीं है । यदि 'उस' ने बीमारी दी है तो उसका इलाज भी दिया है । इनसे चिन्तित ना होकर हर हाल में परमात्मा की याद बनाए रखनी चाहिए । दर्द के कारण ही हम उसे दूर करने वाले को खोजते हैं । लेकिन संसार की तरफ राहत के लिये ताकना उचित नहीं । जैसा बोया जाएगा वैसा ही काटना पड़ेगा, इसके लिए किसी अन्य को जिम्मेदार ठहराना ठीक नहीं है । औरों की तरफ अंगुली उठाने से तो स्वयं का धैर्य भी जाता रहता है । अत: हर हाल में केवल परमात्मा पर ही भरोसा रखना चाहिए ।

विनम्रता और क्षमा

विनम्रता से रहने वाला औरों के हृदय में दया और सहानुभूति की भावना जगाता है । इसी तरह कुटिल लोग औरों के हृदय में गुस्से व बदले की भावना जगाते हैं और उन्हें सही मार्ग से भटका देते हैं । औरो को क्रोधित करना आसान है लेकिन उनमें प्रेम से व्यवहार करने की

भावना जागृत करना कठिन है । यदि औरों को कुछ देना ही है तो उन्हें अपना प्रेम दो । क्रोध तो विनाश का ही कारण बनता है जो कि मनुष्य के दिमाग से उसका विवेक छीन लेता है । हाँ, कभी-कभी औरों की भलाई के लिये क्रोध का प्रदर्शन आवश्यक हो जाता है जैसे कि माँ बच्चे को सही राह पर लाने के लिये गुस्सा दिखलाती रहती है । गृहस्थ जीवन में सभी तरह का व्यवहार करना पड़ता है लेकिन इसमें दुर्भावना का समावेश नहीं होना चाहिए । ठाकुर रामसिंहजी इस संदर्भ में कहा करते थे-"बसते रहो. बसाते रहो, हँसते रहो, हँसाते रहो ।" जो औरों से मोहब्बत से पेश आता है सदा खुश रहता है । हमेशा प्रसन्न रहना सफल जीवन की कुंजी है, इससे आत्मिक उन्नति में भी बहुत सहयोग मिलता है ।

ठाकुर रामसिंहजी की निगाह में क्षमा का भी बहुत महत्व था । वे कहा करते थे कि औरों को भूल जाने के लिये कहना कठिन हो सकता है लेकिन व्यक्ति स्वयं तो इसका पालन कर ही सकता है । वे इस सन्दर्भ में कहते थे:

'मुझे देखो बन्दा होकर की नाफरमानियाँ कैसीं,
उसे देखो कुछ नहीं कहता खुदा होकर'

उनका कहना था कि बदला लेने का कभी नहीं सोचना चाहिए । क्षमा एक विलक्षण गुण है जो ना केवल अपना भला करती है वरन् दुर्भावना को ही समाप्त कर देती है । जो क्षमा करता है उस पर परमात्मा की कृपा की वर्षा भी होती है । परमात्मा सबसे बड़ा क्षमाकर्ता है और गुलाम को अपने मालिक का अनुसरण करना चाहिए ।

'मैं तो गुनहगार हूँ, मगर तू बख्श दे,
क्या खता भी कोई चीज है, तेरी अता के सामने'

मृदुभाषण और दूसरों की भावनाओं को ठेस ना पहुँचाना परमात्मा से प्रार्थना करने के समान ही है । अतः औरों के साथ आदरपूर्ण व्यवहार करना चाहिए । परमात्मा ने कृपापूर्वक मनुष्य को वाणी बख्शी है जिसका दुरुपयोग कदापि नहीं करना चाहिए । व्यर्थ का वाद-विवाद

केवल बुद्धि-विलास ही होता है जो मनुष्य को बहिर्मुखी और विकल बना देता है । प्रत्येक शब्द सोच-समझकर ही मुख से निकालना चाहिए वरना चुप रहना बेहतर है । ठाकुर रामसिंहजी कहा करते थे कि कभी औरों की बुराई नहीं करनी चाहिए । दूसरों की बुराई करने से ना केवल अपनी आत्मिक उन्नति अवरुद्ध होती है वरन् उनके बुरे कर्मों का फल भी बुराई करने वाले को भोगना पड़ता है । इसे समझाने के लिये उन्होंने यह किस्सा सुनाया:

एक बार एक पहुँचा हुआ फकीर एक बादशाह के दरवाजे पर भिक्षा मांगने पहुँचा । एक सईस अस्तबल की सफाई कर रहा था । फकीर ने उससे कुछ भोजन की माँग की । सईस ने अस्तबल में पड़ी घोड़ों की लीद की तरफ ईशारा कर फकीर को उसे खाने के लिये कहा । फकीर ने उसकी तरफ देखा और बोला, तुम्हारे बादशाह के राज में यह लीद दिन-पर-दिन बढ़ती जाए, और एक तरफ को चल दिया । लीद का वह ढेर दिन-पर-दिन बढ़ने लगा और कुछ ही दिनों में एक पहाड़ के आकार का हो गया । जब बादशाह को इसका पता चला तो ढूंढते-ढूंढते वह उस फकीर के पास पहुँचा और उससे विनती की । फकीर ने उत्तर दिया, "क्या यह उचित है कि किसी भूखे फकीर को माँगने पर तुम्हारे राज्य में लीद खाने के लिये कहा जाए ? इसका उचित दण्ड यही है कि अब वह सारी लीद तुम्हें ही खानी पड़ेगी, यह तुम्हारे भाग्य का हिस्सा बन गया है ।' बादशाह फकीर के पैरों में गिर गया और उससे स्वयं को इस मुसीबत से छुटकारा दिलाने के लिये विनती करने लगा । फकीर को बादशाह पर दया आ गयी । उसने बादशाह से कहा कि इस मुसीबत से बचने का केवल यही तरीका है कि यदि लोग बादशाह की बुराई करें तो वह ढेर घट जाएगा । वापस लौटते वक्त बादशाह ने एक ब्राह्मण की युवा कन्या को जबरन उठा लिया और अपने साथ महल में ले आया । लोग बादशाह की निंदा करने लगे और नतीजतन लीद का वह ढेर घटने लगा । धीरे-धीरे घटते-घटते वह ढेर मात्र एक मुट्ठी भर रह गया और वहीं पर रुक गया । बादशाह पुनः

फकीर के पास हाजिर हुआ । फकीर ने बताया कि लोगों द्वारा बादशाह की बराई करने से वह ढेर कम हो गया है लेकिन एक भड़भूजे ने बादशाह की निंदा में हिस्सा नहीं लिया है ओर यह मुट्ठी भर लीद उसी का परिणाम है । यदि वह भड़भूजा भी बादशाह की बुराई करे तो यह बाकी बचा संकट भी टल जाएगा । वेष बदलकर बादशाह उस भड़भूजे के पास पहुँचा और बातों-बातों में ही अपनी यानि बादशाह की बुराई करने लगा इस आशा के साथ की भड़भूजा भी इसमें शामिल हो जाए तो वह मुट्ठी भर लीद भी समाप्त हो । लेकिन भड़भूजा स्वयं एक पहुँचा हुआ फकीर था । उसने बादशाह से कहा कि-"मै व्यर्थ में तुम्हारी निंदा कर तुम्हारे हिस्से की लीद नहीं खाने वाला । यह तो तुम्हारे हिस्से की है जिसे स्वयं तुम्हें ही समाप्त करनी पड़ेगी ।"

यह किस्सा सुनाने के बाद ठाकुर रामसिंहजी ने कहा कि यह नहीं सोचना चाहिए कि हरेक व्यक्ति आपके साथ प्रेमपूर्वक ही व्यवहार करेगा । यदि आप भले लोगों से प्रशंसा की आशा करते हैं तो बुरे लोगों से निदां भी सहनी पड़ेगी । प्रशंसा करने वालों से तो सभी खुश रहते हैं लेकिन आलोचना करने वाले से भी सहृदयता मुक्ति पथ पर अग्रसर होने के लिये आवश्यक है । हकीकत में तो निंदक हमारे साथ हमारे बुरे कर्मों के फल में हिस्सेदारी कर हमारी सहायता करता है । इसलिये उसके प्रति नाराजगी ठीक नहीं बल्कि उसके हक में परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए कि उसकी यह आदत छूट जाए ।

'सुन के निंदक मरि गया, पलटू दिया है रोय,
निंदक जीवे सौ बरस, काम हमारा होय'

ठाकुर रामसिंहजी का कहना था कि शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति में संयम के साथ-साथ व्यक्ति को अपनी वाणी पर भी संयम रखना चाहिए । जो अनावश्यक रूप से बोलते रहते हैं अपनी रुहानियत को कम करते रहते हैं । मौन से लाभ उठाना सीखना चाहिए । मौन रहकर अपने भीतर झांकना चाहिए और केवल आवश्यक होने पर सावधानीपूर्वक हरेक

शब्द को तोलकर बोलना चाहिए वरना मौन रहना बेहतर है । अपने कर्तव्य का पालन करते हुए परमात्मा की याद बनाए रखना एक तरह से मौन साधना है। वास्तव में तो हर क्षण परमात्मा की याद में डूबे रहना मौन ही है और यह सफल होने की कूँजी है।

ठाकुर रामसिंहजी का कहना था कि साधक को साधारण मनुष्यों की भांति रहना चाहिए जिसकी तरफ किसी का ध्यान नहीं जाता । यदि कोई उसकी प्रशंसा करे तो उस प्रशंसा को परमात्मा की प्रशंसा ही समझना चाहिए और प्रार्थना करनी चाहिए कि मन में अभिमान ना आ जाए । प्रशंसा सतगुरु की करनी चाहिए । यदि किसी व्यक्ति को राजा के साथ बैठने का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है तो वह औरों को पशु-तुल्य निगाह से देखने लगता है । यदि किसी को परमात्मा के साक्षात्कार का आभास होने लगे, जो सब बादशाहों का बादशाह है तो सोचो उसकी क्या दशा होगी ? अतः हमेशा सावधान रहने की आवश्यकता है और हमेशा अपने मन की निगरानी करते रहना चाहिए । ठाकुर रामसिंहजी कहा करते थे कि यदि किसी अनपढ़ व्यक्ति को कुछ साधन बताया जाए तो बहुत संभव है कि वह उसे ठीक से करेगा, लेकिन पढ़ा-लिखा व्यक्ति बहस करने लगेगा । जब तक आप दूसरे को अपने से अधिक जानकार नहीं समझोगे, उससे कुछ नहीं सीख पाओगे । अक्सर शास्त्रों में पारंगत विद्वान इसी कारण संत-महात्माओं की संगत से विशेष लाभ नहीं उठा पाते । अपने को औरों से कमतर आँकना बेहतर है, तभी उनसे कुछ पाया जा सकता है।

'तंगे दस्तों का दर्जा, एहले दौलत से जियादा है,
सुराही सर झुका लेती है, जब खाली जाम आता है'

जिसमें सम्मान पाने की इच्छा नहीं है उसकी पहुँच परमात्मा तक आसानी से हो सकती है । अपने आप को सज्जन पुरुष समझना भी एक तरह का अहंकार है ।

ठाकुर रामसिंहजी कहते थे कि यदि गर्व ही करना है तो अपने गुरु-भगवान पर करना चाहिए । यह गुलाम का फर्ज है कि वह अपने मालिक पर गर्व करे । जब अपना कुछ भी नहीं है तो किस बात का अहंकार ?

भक्त भगवान की इच्छानुसार रहता है और शिकायत नहीं करता । ठाकुर रामसिंहजी कहा करते थे कि परमात्मा सो नहीं गया है कि उसे तुम्हारी जरूरतों का ख्याल ही नहीं ? अपना विश्वास दृढ होना चाहिए । परमात्मा जब उचित समझता है सबकी आवश्यकताएं पूरी करता है । पिता अपने नासमझ बेटे के हाथ में चाकू नहीं दे देता क्योंकि वह जानता है कि इससे बेटे को या किसी अन्य को चोट पहुँच सकती है । इसी तरह परमात्मा को जानना चाहिए और 'उस' से किसी चीज के लिये जिद नहीं करनी चाहिए । यह पक्का विश्वास होना चाहिए कि परमात्मा हमेशा अपने साथ है । वे इस बारे में राजा के दरबार में उपस्थित याचक का उदाहरण दिया करते थे । याचक राजा की ओर देखता रहता है कि ना जाने कब राजा की निगाह उस पर पड़ जाए । यदि उस क्षण वह (याचक) बेखबर हुआ तो वह अवसर हाथ से निकल जाएगा । इसी तरह परमात्मा को सर्वव्यापी जान हर वक्त परमात्मा की तरफ ध्यान रहना चाहिए । यदि कुछ अपनी इच्छा के विरुद्ध भी हो जाए तो भी दृढ़ विश्वास, धैर्य और लगन के साथ अपना काम करते रहना चाहिए । भक्त को सहायता के लिये किसी और की तरफ नहीं देखना चाहिए और अपने परिवार का पालन-पोषण जो कुछ परमात्मा ने दिया है उससे करना चाहिए । जब परमात्मा की शरण स्वीकार कर ली है तो सभी कुछ 'उसी' की इच्छा पर छोड़ देना चाहिए, जो होगा आपके हक में ही होगा । हाँ यदि अनायास ही कहीं से कोई सहायता बिना माँगे मिले तो परमात्मा की कृपा समझ स्वीकार कर लेना चाहिए । जो भी स्थिति हो, भली या बुरी, परमात्मा में दृढ़ विश्वास सबसे बड़ा सम्बल है। हर हाल में खुश रहना, परमात्मा की इच्छानुसार जीना है, यही सच्ची पूजा है, यही सच्ची शांति और सच्ची भक्ति है ।

सहानुभूति, सहृदयता और दान

दूसरों के प्रति करुणा एवम् सहानुभूति पर ठाकुर रामसिंहजी बहुत जोर दिया करते थे । वे कहा करते थे कि यह समझ के बाहर की बात है कि आप अपने लिये तो दया और कृपा चाहते हैं लेकिन ओरों के प्रति वैसा व्यवहार नहीं करते । परमात्मा ऐसे लोगों की प्रार्थना कैसे सुन सकता है ? औरों के लिये भी वही प्रार्थना करनी चाहिए जो स्वयं अपने लिये की जाए । जो औरों को राहत पहुँचाता है, असली मायने में उसे ही सहृदय कहा जा सकता है । अपनी खुशी के लिये औरों को दुःख पहुचाना ठीक नहीं । झूठी प्रार्थना में कोई दम नहीं होता क्योंकि आप अपने आप को तो धोखा दे सकते हो लेकिन परमात्मा को नहीं । परमात्मा परम् दयालु है एवम् अपनी कृपा सभी पर बरसाता रहता है बिना किसी भेदभाव के । यह 'उसी' की दया का नतीजा है कि संसार भलीभांति चल रहा है । यदि आप औरों के प्रति दया का भाव रखेंगे तो परमात्मा भी आप पर कृपा करेंगें । उसकी कृपा को भूल जाना अहंकार है । 'उसे' भूलने वाला ही काफिर है । जो 'उसे' याद रखता है 'उसकी' कृपा प्राप्त करता है ।

दान का महत्व दया के साथ जुड़ा है । जो दूसरों की खुशी के लिये कुछ देता है वही सच्चा दानी है । जो भी किया जाए परमात्मा पर पूरी श्रद्धा रखकर 'उसी' का कार्य समझ कर किया जाना चाहिए । तब ही कोई राजा बाली के समान बन सकता है । साधारणतया लोग दान के बदले कुछ लाभ पाने की कामना रखते हैं लेकिन वह दान जो सहानुभूति की भावना जगाए और सद्गुणों की ओर अग्रसर करे, महादान है । अतः ठाकुर रामसिंहजी उस दान के पक्षधर थे जो सभी के लिये कल्याणकारी हो । स्वयं अपने को वंचित रखकर भी कुछ ना कुछ औरों को देना मनुष्य का कर्त्तव्य है, चाहे वह पक्षियों को कुछ दाना चुगाने मात्र भर ही हो । अपनी आय का सोलहवाँ हिस्सा इसके लिए अलग से रखा जाना चाहिए । पहले उनकी जिन्हें इसकी सर्वाधिक आवश्यकता हो, सहायता करनी चाहिए और इसमें कोई भेदभाव नहीं बरतना चाहिए । भी जो कुछ

प्राप्त होता है वह सब परमात्मा की कृपा से ही मिलता है अतः उसे परमात्मा के परिवार यानि सभी के भले के लिये प्रयोग में लाना चाहिए। कुछ देते वक्त स्वयं को केवल माध्यम समझना चाहिए ना कि दानकर्ता। परमातम ऐसे लोगों का ऋणी होता है। दान उचित पात्र को ही देना चाहिए जैसे पिता अपनी पुत्री का कन्यादान उचित वर को करता है लेकिन फिर भी कुछ ना देने से कुछ देना अच्छा है, इससे कम-से-कम स्वयं का लोभ तो कम होता ही है।

संतोष

संतोष सबसे बड़ा धन है, इसे ठाकुर रामसिंहजी अनेक तरीकों से समझाया करते थे। बच्चों को खिलौनों से खेलने में आनंद मिलता है, लेकिन कुछ बड़ा होने पर उसे खेलकूद आदि में और युवा होने पर उसे और नयी-नयी चीजों में आनंद आने लगता है और वह आनंद प्राप्त करने के नये-नये साधन खोजने लगता है। आनंद प्राप्त करने की यह इच्छा समाप्त नहीं होती। जो कुछ बुद्धिमान होते हैं वे पढ़ने-लिखने में, ज्ञान प्राप्त करने, अच्छा पद अधिकार प्राप्त करने में खुशी ढूंढते हैं और जैसे-जैसे बुद्धि का विकास होता है, भौतिक पदार्थों से प्राप्त होने वाली प्रसन्नता में कमी आने लगती है। लगता है कि असली प्रसन्नता का स्रोत तो कुछ और ही है और भौतिक पदार्थ सदा नहीं बने रहेंगें। उनके प्रति मोह की भावना समाप्त होने लगती है और उसकी जगह संतोष आने लगता है। यह प्रक्रिया उन्हें अन्तर्मुख बना देती है और भीतर से प्रसन्न भी। फिर वे संसार में एक मेहमान की तरह रहने लगते हैं। संतोषी होना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि जब तक संसारी पदार्थों से मोह खत्म नहीं होता, मनुष्य परमात्मा की ओर मुँह नहीं करता।

इसे समझाने के लिए वे एक कहानी सुनाया करते थे: एक गरीब व्यक्ति किसी महात्मा के पास जाया करता था। उसका उद्देश्य अपनी आत्मिक उन्नति था। एक बार उसने महात्माजी से अपनी तंग हालत का जिक्र किया। महात्माजी ने उस पर दया कर एक मिट्टी का ठीकरा

उठाकर उस पर दस का अंक लिख उसे दे दिया । उसी दिन से उसकी आय रोजाना दस रुपये होने लगी । कुछ दिन तो सब ठीक चलता रहा लेकिन उसके बाद उस व्यक्ति ने महात्माजी से कहा कि दस रुपये की आय पर्याप्त नहीं है तो महात्माजी ने ठीकरे पर दस के अंक के आगे एक और शून्य लगा दिया। अब उसकी आय एक सौ रुपये प्रतिदिन होने लगी । धीरे-धीरे उस व्यक्ति का संतोष खत्म होता गया और महात्माजी उस ठीकरे पर शून्य की संख्या बढ़ाते गए । बढ़ते-बढ़ते यह रकम लाखों तक जा पहुँची लेकिन उस व्यक्ति की और रुपये प्राप्त करने की इच्छा समाप्त ना हुई । अब तो उसने महात्माजी के पास आना भी प्रायः बन्द ही कर दिया था । बहुत समय बाद जब वह महात्माजी के दर्शन हेतु पहुँचा तो महात्माजी ने उससे पूछा कि क्या कारण है कि अब वह कई-कई दिन महात्माजी के पास नहीं आता ? उसने उत्तर दिया कि वह महात्माजी के पास आना तो चाहता है लेकिन अत्यधिक व्यस्तता के कारण और कुछ व्यापार में घाटा हो जाने के कारण वह आ नहीं पाता और उसे और रुपयों की आवश्यकता है । महात्माजी ने सब कुछ सुनकर उससे कहा कि वह उस ठीकरे को उठा लाये ताकि एक बार में ही उसकी सारी मुसीबतों से पार पाया जा सके । वह व्यक्ति तमाम आशाओं के साथ दौड़ता हुआ अपने घर गया और उस ठीकरे को उठा लाया । महात्माजी ने ठीकरे को हाथ में उठा कर कहा-'तुम्हारी इच्छाओं का अन्त होने वाला नहीं, तुम ही क्या, अच्छे-अच्छे लोग अपने मार्ग से भटक जाते हैं । बेहतर यही है कि तुम्हारी सारी समस्या का हल एक बार में ही कर दिया जाए । इस ठीकरे ने तुम्हें मुझसे भी दूर कर दिया है अतः में इस बीमारी की जड़ को ही खत्म किये देता हूँ ।" यह कहकर महात्माजी ने उस ठीकरे को जमीन पर पटक कर तोड़ दिया ।

ठाकुर रामसिंहजी कहते थे कि जो कुछ भी बिना विशेष प्रयास के मिल जाए, उसे परमात्मा की कृपा मानकर स्वीकार कर लेना चाहिए । यही असली सन्तोष है । संतों का खजाना तो उनका संतोष ही है ।

श्रद्धा और विश्वास

ठाकुर रामसिंहजी का कहना था कि परमात्मा सभी की जरूरतो का ख्याल रखत है । 'वह' जब नवजात शिशु के लिये दूध का प्रयोजन करता है तो क्या दाँत आने पर उसके खाने का प्रबंध नहीं करेगा ? परमात्मा पर विश्वास ना करना ही मनुष्य की सबसे बड़ी भूल है । परमात्मा सब जानता है और उससे कुछ छिपा नहीं है, ना ही उससे छिपाया जा सकता है, चाहे कोई कितना भी चुप रहे या छिपाने की कोशिश करे । जितना मनुष्य को अपने किसी मित्र के पत्र पर विश्वास होता है, उसका अंशमात्र भी यदि वह शास्त्रों पर या संतों की वाणी पर विश्वास करे तो उसका जीवन बदल सकता है । उदाहरणार्थ माँ बच्चे को जन्म देती है और बच्चे को अपने पिता का परिचय माँ द्वारा ही प्राप्त होता है, उसके वचन पर विश्वास द्वारा । परमात्मा ने मनुष्यों को बुद्धि और विवेक बख्शा है लेकिन परमात्मा को बुद्धि द्वारा या तर्क से जानना असंभव है । यदि परमात्मा को जानना है तो संतो के वचनों पर विश्वास करना ही होगा ।

इस संबंध में वे एक कहानी सुनाते थे: एक व्यक्ति ने जिद करके अपने गुरुदेव से उसे कोई मंत्र देने के लिये कहा । गुरुदेव ने उसके कान में 'राम-राम' मंत्र कहा और हिदायत दी कि वह यह मंत्र किसी को भी ना बतलाए वरना उसका प्रभाव जाता रहेगा । कुछ दिनों बाद वह शिष्य तीर्थाटन के लिये गया और वहाँ उसने लोगों को जोर-शोर से 'राम-राम' कहते सुना । उसने सोचा कि यह मंत्र तो सभी लोगों को मालूम है और उसके गुरुदेव ने उसे कोई विशेष मंत्र नहीं दिया है । उसका उस मंत्र पर से विश्वास जाता रहा । वह तीर्थ यात्रा बीच में ही समाप्त कर लौट आया और गुरुदेव को अपनी शंका बतायी । गुरुदेव समझ गये कि निश्चयात्मक शक्ति के अभाव में शिष्य का विश्वास मंत्र से उठ गया है । गुरुदेव ने एक उपाय सोचकर शिष्य को एक चमकीला गोल पत्थर दिया और उससे कहा कि वह उस पत्थर की कीमत बाजार में हरेक दुकानदार से करवाये लेकिन बेचे किसी को भी नहीं । वापस लौटने पर वह उसे

विशेष मंत्र देंगे । वह पत्थर लेकर बाजार गया । सबसे पहले उसे एक सब्जी बेचने वाली मालिन दिखाई दी । उसने वह पत्थर मालिन को दिखाया और उसकी कीमत पूछी । मालिन को पत्थर आकर्षक लगा, उसने उसे बच्चों के खेलने योग्य समझकर कुछ सब्जी के बदले खरीदना चाहा । शिष्य को पत्थर बेचना नहीं था, वह पत्थर वापस लेकर एक बनिये की दुकान पर गया । बनिये को भी पत्थर आकर्षक लगा और उसने उसकी कीमत दो रुपये लगायी । एक और दुकानदार ने उसकी कीमत पचास रुपये लगायी । इस प्रकार ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता गया, पत्थर की कीमत भी बढ़तो गयी । कुछ ने उस पत्थर की कीमत लाखों रुपये लगायी । अन्त में वह शिष्य शहर के सबसे बड़े जौहरी के पास पहुँचा । उसने पत्थर को भली-भाँति जाँचा परखा और फिर कहा-"यह पत्थर एक अनमोल हीरा है, जिसकी सही कीमत नहीं आँकी जा सकती । यह जिसके हाथ में भी जाता है उसे खुश कर देता है अतः जो इसको पहचानते नहीं वे भी इसे अपने पास रखना चाहते हैं । यह तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम्हारे पास यह बेशकीमती एवम् दुर्लभ रत्न है । फिर भी यदि तुम इसे बेचना चाहो तो मैं इसकी तुम्हें मुँहमाँगी कीमत दे सकता हूँ ।" शिष्य को वह पत्थर बेचना तो था नहीं अतः वह वापस लौट आया और अपने गुरुजी को सारा वृतांत सुनाया और उनसे विशेष मंत्र देने के लिये प्रार्थना की । गुरुजी ने समझाया कि मालिन को हीरे की पहचान नहीं थी अतः वह इसे कुछ सब्जी के बदले खरीदना चाहती थी । दुकानदार इसकी कीमत दो रुपये, पचास रुपये इत्यादि लगा रहे थे । जिसने इसको जैसा परखा वैसी ही इसकी कीमत आँकी । उस जौहरी ने जिसको इसकी सच्ची परख थी इसे अनमोल बताया और किसी भी कीमत पर खरीदने की इच्छा प्रकट की । इसी तरह सभी परमात्मा का नाम लेते हैं, लेकिन जिसे 'उस' पर पूर्ण विश्वास नहीं होता, वह उस रत्न को सब्जी के बदले खरीदना चाहता है लेकिन वह जो 'उसके' नाम की सच्ची महत्ता को जानता है उसके लिये वह नाम अनमोल होता है । अपने

दृढ़ विश्वास द्वारा ही प्रहलाद ने खंभे में और एकलव्य ने अपनी गुरु की प्रतिमा में परमात्मा का साक्षात्कार किया। लेकिन परमात्मा किसी की प्रार्थना को तभी सुनता है जब उसे परमात्मा पर पूर्ण विश्वास हो।

धैर्य

ठाकुर रामसिंहजी का कहना था कि दृढ़ विश्वास के साथ धैर्य का होना भी आवश्यक है । यदि मनुष्य में धैर्य ही नहीं होगा तो उसे मंजिल नहीं मिलेगी । वह मार्ग में आने वाली बाधाओं को नहीं सहन कर पाएगा । धैर्यहीन व्यक्ति अपने काम को अधूरा ही छोड़ देता है जैसे कि बीमार व्यक्ति धैर्य खोकर उसे स्वस्थ करने वाली दवा को ही बन्द कर देता है । धैर्यवान व्यक्ति मुश्किलों से घबराता नहीं है बल्कि हिम्मत के साथ उनका सामना करता है । इस सम्बन्ध में वे एक किस्सा सुनाते थे: एक बार एक महात्मा घूमते-फिरते एक फकीर की कुटिया पर पहुँच गए । फकीर ने उनसे कुटिया में रुकने के लिए निवेदन किया और स्वयं उनके खाने के लिये कुछ प्रबंध करने हेतु नजदीकी गाँव की ओर चल दिये । कुटिया में महात्माजी ने एक पत्थर की शिला पड़ी देखी जिस पर कुछ निशान पड़े हुए थे । पूछने पर किसी ने बताया कि वह फकीर इस शिला का प्रयोग नमाज अदा करने के लिये करते थे और उस शिला पर पड़े हुए निशान उनके हाथ, पाँव व घुटनों के थे । यह सुनकर महात्माजी सोच में पड़ गये कि उन्होंने इतना समय यूँ ही इधर-उधर भटकने में बिता दिया जबकि उस फकीर ने नमाज में इतना वक्त गुजारा था कि पत्थर की शिला पर भी उसके निशान पड़ गये थे । महात्माजी के मन में यह भी आया कि अवश्य ही यह फकीर पहुँचा हुआ होगा जबकि वो स्वयं तो अभी तक वैसे ही कोरे के कोरे थे । अभी वह यह सब सोच ही रहे थे कि उन्हें कोई दिव्य-वाणी सुनाई दी कि "ऐ महात्मा उदास मत हो । अभी तक इस फकीर की एक भी नमाज मंजूर नहीं हुई है ।" यह सुनकर महात्माजी आश्चर्यचकित रह गए । तभी वह फकीर वापस लौट आए और महात्माजी को विचार मग्न देखकर इसका कारण पूछा ।

महात्माजी उन्हें सारी बात बताने लगे लेकिन वे अपनी बात पूरी कर पाते उसके पहले ही वह फकीर एक जज्बी हालत में खो गए और उसका असर महात्माजी पर भी ऐसा पड़ा कि उनकी स्वयं की भी सुधबुध जाती रही व वे भी फकीर के साथ-साथ उसी सूरत में रंग गए । दोनों को सुबह होने पर होश आया । जब महात्माजी ने फकीर से पूछा कि ऐसी क्या बात हो गयी थी कि हम दोनों की ऐसी जज्बी हालत हो गयी तो फकीर ने उत्तर दिया- "आपने बताया कि अभी तक मेरी एक भी नमाज मंजूर नहीं हुई, लेकिन मुझे मेरी सारी नमाजों का उत्तर मिल गया । आपने जो दिव्य-वाणी सुनी उससे मुझे दृढ़ विश्वास हो गया कि खुदा को मालूम है कि मेरे जैसा कोई फकीर 'उस' की इबादत करता है । इससे बढ़कर और क्या बात हो सकती है कि मैं उसकी नजर में हूँ ? मुझे इस बात की कोई चिन्ता नहीं है कि मेरी नमाज कबूल होती है या नहीं । मुझे तो अपना काम करना है, बाकी वह जाने ।"

ठाकुर रामसिंहजी कहा करते थे कि जो थोड़े से बहुत अधिक पाना चाहता है अपना धैर्य खो बैठता है । असली साधना तो उस पर दृढ़ विश्वास रख उसे हमेशा याद रखना है । और याद रखने का आसान तरीका मन ही मन उसका स्मरण करना है । 'वह' तो सर्वव्यापी है लेकिन सांसारिक लिप्साओं की वजह से 'उसको' हम महसूस नहीं कर पाते । बिना स्मरण के 'उससे' जुड़ा नहीं जा सकता और उसका सतत स्मरण तब ही हो सकता है जब उससे अपने सगे सम्बन्धियों की तरह रिश्ता बना लिया जाए । निरंतर स्मरण से प्रेम का बीज अंकुरित होता है और हृदय प्रेम के वश हो गुलाम की तरह उस प्रेम के पीछे दौड़ने लगता है ।

प्रेम और प्रबोधन

भिन्न-भिन्न लोग 'उसे' भिन्न-भिन्न नामों से याद करते हैं, लेकिन उसका सर्वव्यापी नाम तो बस एक ही है जो सतगुरु द्वारा साधक के हृदय में हृदय द्वारा जागृत किया जाता है । यह सर्वव्यापी नाम प्रत्येक जीवित प्राणी के प्रत्येक कोषिका में अनवरत गूँजता रहता है और इसका

सम्बन्ध उसकी आत्मा से होता है । मुख्यतः रूप से यह नाम हृदय की धड़कन के रूप में उभरता है । अभ्यास द्वारा जब साधक इस कम्पन को महसूस करने लगता है व इस पर ध्यान जमने लगता है तो मन स्वत: ही इस ओर खिंचने लगता है और इस अभ्यास को दोहराने लगता है। मन में यह दृढ़ विश्वास हो जाना चाहिए कि परमात्मा हमें याद करता है । जब यह अभ्यास भीतर से पुख्ता हो जाता है तो कोई भी औचित्य पूर्ण कार्य करते हुए भी साधक के हृदय में परमात्मा की याद लगातार बनी रहती है ।

ठाकुर रामसिंहजी फरमाते थे कि प्रेम व ज्ञान में कोई अन्तर नहीं है । प्रेम ही परमात्मा का स्वरूप है और ज्ञान प्राप्ति का उद्देश्य है परमात्मा को जानना । ज्ञान की अन्तिम सीढ़ी प्रेम है । जैसे ही सतगुरु और स्वयं के बीच दुई (द्वैत) का परदा हट जाता है, साधक सब ओर उसी परमात्मा का दर्शन करने लगता है । लेकिन साधक को अपने स्वयं के प्रति ईमानदार होना चाहिए अर्थात् उसकी कथनी और करनी में साम्यता, भीतर और बाहर एकरूपता होनी चाहिए । बिना अभ्यास ज्ञान मनुष्य को अहंकारी और दंभी बना देता है । लोग वेदान्त और दर्शन पर बुद्धिमत्तापूर्ण व्याख्यान देते रहते हैं लेकिन मुश्किल से ही उनमें से कोई उन पर अमल करता दिखाई देता है । केवल कहने सुनने से कोई वास्तविक लाभ नहीं होता । कर्त्तापन के भाव को भुलाकर ज्ञान को आचरण में उतार लेना ही सच्ची साधना है। सभी कुछ करने वाला वह परमात्मा ही हैं, 'उसे' भूलकर स्वयं अपने को वास्तव में कर्त्ता मानना ही अपने आप को कर्मों के बन्धन में बाँधने का कारण बनाता है । अपने समस्त कर्मफल को परमात्मा को ही समर्पित कर देना चाहिए । जिस प्रकार कोई नौकर अपने मालिक की आज्ञा का पालन करता है और उस कार्य के परिणाम की जिम्मेदारी मालिक की होती है उसी प्रकार मनुष्य को सभी कार्य परमात्मा के कार्य समझकर करने चाहिएं । कर्म के बन्धन से बचने का यह सबसे सरल उपाय है । लेकिन कर्मफल की इच्छा ना

रखने का तात्पर्य यह भी नहीं मानना चाहिए कि जैसे-तैसे काम को निबटा दिया जाए, मानों किसी बोझ से छुटकारा पा लिया हो । यह मालिक की आज्ञा का ठीक से पालन करना नहीं कहा जा सकता । यह भी उचित नहीं कि कोई भी गलत कार्य करते रहो और उसकी जिम्मेदारी परमात्मा पर छोड़ दो कि जो कुछ भी हो रहा है उसकी इच्छानुसार हो रहा है । यह केवल अपने आप को धोखा देना है ।

आत्म-साक्षात्कार के सबसे सरल उपाय के संदर्भ में ठाकुर रामसिंहजी का कहना था कि भक्ति (प्रेम) ही एक ऐसा मार्ग है जो साधक को अपने प्रियतम के रंग में रंग देती है । निस्वार्थ प्रेम ही धीरे-धीरे प्रगाढ़ भक्ति के रूप में परिणित हो जाता है । वे एकलव्य का उदाहरण देते हुए कहते थे कि उसकी भक्ति ने ऐसा दृढ़ विश्वास पैदा किया कि मिट्टी की मूर्ति में गुरु द्रोणाचार्य प्रकट हो गए । मूर्तिपूजा तब मूर्तिपूजा नहीं रहती जब भक्त प्रतिमा में भगवान के ही दर्शन करने लगता है । किसी मेहमान के शरीर को अलग छोड़ आदर-सत्कार किस प्रकार किया जा सकता है ? शरीर भी मूर्ति की ही तरह है जिसके बिना भीतर बसी आत्मा को अनुभूत करना या उसके प्रति व्यवहार करना असंभव है। हाँ, जब चेतना के स्तर पर सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तब प्रतिमा मूर्तिरूप नहीं रहती । लेकिन सच्ची भक्ति केवल सतगुरु की कृपा द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है ।

प्रेम एक ऐसी चीज है जिसकी तरंगें वापस लौटकर आपसे टकराती हैं । हमेशा परमात्मा को याद करते रहना चाहिए । प्रेम की तरंगें दुगने वेग से परिवर्तित होकर आपको अपने रंग में रंग लेंगी, जैसे कि दीवार से टकराने पर गेंद आपके पास पुनः लौट आती है । परमात्मा को याद करने से 'उसका' कुछ लाभ नहीं होता, लेकिन याद करने वाला अपने प्रियतम के गुणों से प्रभावित होने लगता है । सारी पूजा और स्मरण स्वयं अपने लाभ के लिये ही है । 'उसे' तो कहीं भी याद किया जा सकता है क्योंकि 'वह' तो सर्वव्यापी है । ना ही तो 'वह' कहीं खो गया है कि उसे खोजने की

आवश्कता हो, ना ही 'वह' नाराज होता है कि उसे मनाना पड़े । यह तो सब अपने मन को समझाने की बात है । सारी पूजा-उपासना अपने मन को सही मार्ग पर लाने के लिये है । परमात्मा तो सभी पर अपनी कृपा अनवरत बरसाता रहता है, लेकिन 'उससे' जुड़े रहने के लिये 'उसके' प्रति गहरे प्रेम में डूबने की आवश्यकता होती है । परमात्मा से अपनी इच्छाओं की पूर्ति की जिद नहीं करनी चाहिए, बल्कि 'उस' से तो प्रेम पूर्वक प्रार्थना करनी चाहिए । उस सर्वशक्तिशाली को कोई अपनी चतुराई से नहीं रिझा सकता । वह सबका नियन्ता और सर्व समर्थ है । 'उसके' पास अगर कुछ नहीं है तो वह है दीनता । दीनता केवल उसके भक्तों का आभूषण है । परमात्मा को दीनता ही सबसे अधिक प्रिय है जिसके बदले में वह अपना असीमित प्रेम बख्शता है । दीनता में भी लेकिन अहं का कुछ अंश रहता है जिसे पहचानना थोड़ा मुश्किल है । इसे माया का सूक्ष्मतम पर्दा कहा जाता है । इससे पार पाने के लिए सम्पूर्ण समर्पण और शुद्ध हृदय से उसकी याद ही एक मात्र उपाय है । एक-ना-एक दिन 'उसकी' कृपा अवश्य मिलेगी ।

मन की स्थिरता के सम्बन्ध में ठाकुर रामसिंहजी उस अभिनेता का उदाहरण दिया करते थे जो नाटक में कभी राजा तो कभी भिखारी का पात्र अदा करता है लेकिन अपने हृदय में जानता है कि ना तो वह राजा है ना ही भिखारी । उसे राजा का पात्र निभाने में खुशी या भिखारी का पात्र निभाने में दुःख नहीं होता क्योंकि वह जानता है कि उसका काम तो दिये गए पात्र का चरित्र अपनी शक्ति भर निभाना है । उसमें राजा का पात्र निभाते हुए एक राजा होने का अभिमान नहीं होता, ना ही भिखारी का चरित्र निभाते हुए दीनता, वह तो जो है वही रहता है और यही मन की स्थिरता है । वास्तविक जीवन में भी अपनी जिम्मेदारियाँ निभाते हुए यही भाव रहना चाहिए । अपने आप को साक्षी भाव से देखने की आदत बना लेनी चाहिए और जिस हाल में 'वह' रखे, उसमें खुश रहना सीख लेना चाहिए । हर हाल में 'उसका' शुक्रिया अदा करना चाहिए । वे कहा

करते थे—'हँसते रहो, हँसाते रहो । बसते रहो, बसाते रहो ।' संतोष और प्रसन्नता के साथ रहना परमात्मा की इबादत के समान है ।

ठाकुर रामसिंहजी अध्यात्मिकता को सच्चे प्रेम की राह समझते थे । प्रेम अपने आप में सम्पूर्ण है व सभी कुछ इसमें समाहित है । सृष्टि के समस्त जीवों में प्रेम जाहिर या छुपे हुए रूप में विद्यमान है । इसी जन्म में मनुष्य को अपने असली उद्देश्य को प्राप्त कर लेना चाहिए । लेकिन प्रेम का मार्ग इतना बारीक है कि उसमें किसी और के शामिल होने की गुंजाईश नहीं होती, अर्थात् प्रेम में प्रेमी व प्रियतम, दो की जगह नहीं रहती, उनका अस्तित्व ही सिमटकर एक हो जाता है । जब तक कोई इस अवस्था तक नहीं पहुँचता, परमात्मा जानता है कि तब तक उस पर अपनी हकीकत जाहिर करने का वक्त नहीं आया ।

ठाकुर रामसिंहजी यह भी कहते थे कि प्रेम दुनिया को चिल्लाकर बतलाने की चीज नहीं है । यदि कोई पुरुष किसी स्त्री से प्रेम करता है तो वह उसके बारे में दुनिया को नहीं बताता, वरना लोग ही उसकी खबर ले लेंगे । पतिव्रता स्त्री अपने पति के रहस्यों को कभी किसी दूसरे पर उजागर नहीं करती । इसी प्रकार भक्त भी कभी अपने प्रेम का इजहार नहीं करता । यदि वह अपने प्रेम के विषय में कहता है तो फिर उसकी कीमत नहीं रह जाती । यदि प्रेम में सम्पूर्णता है तो तमाम दूरी स्वतः ही तय हो जाती है ।

प्रेम की सर्वोपरिता समझाने के लिये ठाकुर रामसिंहजी उस नव-परिणिता का उदाहरण दिया करते थे जो पति के घर-ससुराल जाने पर उनकी खुशियों और गमों को, उनकी मान-प्रतिष्ठा को, सबको अपना लेती है और उस परिवार के साथ एकाकार हो जाती है । उसमें पति के परिवार वालों के प्रति स्नेह पैदा हो जाता है और उनके लिये अपना सब सुख न्यौछावर करने को तैयार हो जाती है । इसी तरह सारी सृष्टि को 'उसका' परिवार मानना और सब में उसी परमात्मा का दर्शन करना प्रेम

की पराकाष्ठा है । जितना स्वयं के प्रति प्रेम होता है, उससे ज्यादा औरों को स्नेह देना ही असली जिंदादिली है ।

प्रार्थना

अपने आपको निरीह समझकर जो 'उससे' प्रार्थना करता है तुरन्त 'उसकी' कृपा प्राप्त करता है । प्रार्थना में बहुत शक्ति है । भक्त की आह उसके कृपासागर में तूफान खड़ा कर देती है। वह पश्चाताप के आँसुओं से पिघल जाता है और ऐसी कृपा करता है कि शरीर से और मन से दुष्कर्म करने की ताकत ही छीन लेता है । सबके भले की प्रार्थना, परमात्मा के निकट ले जाती है ।

ठाकुर रामसिंहजी की प्रिय प्रार्थना थी-"हे दीनानाथ अपने श्रीचरणों की इबादत करने की ताकत अता फरमाइये, अपने श्रीचरणों में सच्चा प्रेम बख्शिये और अपनी इच्छानुसार मुझे चला लीजिए ।" यदि किसी को पूजा में भटकाव का अनुभव होता है तो परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए कि 'हे परमात्मा आपकी इच्छा पूर्ण हो ।' और यह प्रार्थना दोहराते रहना चाहिए जब तक कि मन स्थिर ना हो जाए । जब बच्चे को क्रन्दन करते देख माँ का हृदय विदीर्ण हो जाता है, तो उस परमात्मा का हृदय क्यों नहीं पिघलेगा और भक्त की सहायता को क्यों नहीं दौड़ेगा, जो सब माँओं की माँ हो ? मनुष्य का जीवन ही प्रार्थना बन जाना चाहिए और प्रार्थना करना उसका कर्त्तव्य । अपना कर्त्तव्य पूरा कर बाकी सब परमात्मा पर छोड़ देना चाहिए ।

जीव, प्रकृति और परमात्मा

जीव, प्रकृति और परमात्मा का सम्बन्ध समझने के लिये ठाकुर रामसिंहजी एक कहानी सुनाया करते थे: एक जौहरी जो कुछ वक्त से रुग्ण चल रहा था, उसने अपना अन्त निकट जानकर अपनी पत्नी व नाबालिग बेटे को अपने पास बुलाया । उन्हें एक मोती देकर कहा कि जरूरत पड़ने पर वे वह मोती बेच सकते हैं, लेकिन उस मोती को केवल उसके एक जौहरी-मित्र के माध्यम से ही बेचें । बदले में उन्हें उनकी

जरूरत भर की रकम मिल जाएगी । जौहरी की मृत्यु के कुछ समय बाद उसकी पत्नी ने अपने बेटे को अपने पति के उस जौहरी-मित्र के पास वह मोती लेकर भेजा । लड़के ने सब बात बताकर जो उसके पिता ने मृत्यु से पहले कहीं थी, अपने पिता के मित्र से वह मोती बेचने की विनती की । पिता के उस मित्र ने जो स्वयं एक बड़ा जौहरी था, उस मोती को अच्छी प्रकार जाँचा परखा और वह समझ गया कि वह लड़का अभी बिल्कुल भोला था व उसे मोती के बारे में कोई ज्ञान ना था । उसने लड़के से कहा कि वह मोती बेशकीमती है और उसे लड़का अपने पास संभाल कर रख ले, उचित खरीददार मिलने पर उसे बेच दिया जाएगा । इसके साथ ही उसने लड़के को अपने साथ बैठकर काम सीखने के लिये भी कहा । कुछ वर्ष बीत गए । कोई उचित ग्राहक मोती खरीदने नहीं आया और इस दौरान लड़का भी काम सीखकर स्वयं एक अच्छा जौहरी बन गया । एक दिन उसकी माँ ने कहा कि उसके पिता के उस जौहरी-मित्र का कर्जा उतारना है और लड़के के विवाह वगैरह का भी प्रबंध करना है अतः अब और प्रतीक्षा ना कर मोती को बेच दिया जाए। लड़के को ध्यान आया कि एक ग्राहक मोती की माँग कर रहा था अतः वह उसे बेचने के लिये मान गया और उसने अपनी माँ से मोती को तिजोरी में से ले आने को कहा । माँ मोती निकालकर ले आयी और बेटे के हाथ पर उसे रख दिया । लड़के ने मोती पर एक नजर डाली और उस मोती को फेंक कर उसे अपने पाँव से कुचल दिया । माँ बेटे के इस व्यवहार पर चकित रह गयी और उसने इसका कारण उससे पूछा । बेटे ने बताया कि वह मोती तो नकली था और उसकी कोई कीमत नहीं थी । उसके पिता ने यह बात इसलिये नहीं बतायी ताकि वे लोग अपनी आर्थिक परिस्थिति जानकर निराश ना हो जाएँ ? उसके पिता की असली मंशा अपने जौहरी-मित्र के पास भेजने में यह थी कि वह मित्र उनके परिवार की असली हालत जान उनकी यथोचित मदद करेगा । उस मित्र ने यह बात समझ ली और सहृदयता के साथ अपने मित्र के पुत्र को एक काबिल जौहरी बना दिया ।

ठाकुर रामसिंहजी कहा करते थे कि जैसे लड़के को मोती के सच्चे या झूठे होने का ज्ञान नहीं था, नासमझ मनुष्य जीव प्रकृति या परमात्मा के विषय में नहीं जानता । लड़के को परिवार के भरण-पोषण की चिन्ता थी इसलिए उसने जौहरी के पास काम सीखा । ऐसे ही जब कोई सच्चा साधक सदगुरु की शरण में आता है तो उसे भी यथा-समय जीव, प्रकृति और परमात्मा का ज्ञान प्राप्त हो जाता है । यह ज्ञान सतगुरु की कृपा से ही मिलता है । जब तक ज्ञान प्राप्त नहीं होता मनुष्य जीव, प्रकृति और परमात्मा को देखता है, लेकिन जैसे ही वृत्तियों को भीतर की ओर मोड़ा जाता है एवम् अभ्यास में मन लगता है, सत्य का साक्षात्कार होने लगता है ।

भिन्न-भिन्न धर्म

ठाकुर रामसिंहजी सभी को समरूप देखने व सभी धर्मों का समान आदर करने के पक्षधर थे । इस संदर्भ में वे अक्सर संत रज्जब का यह दोहा कहा करते थे:

'अपने अपने भेष की सब ही राखें टेक,

रज्जब निशाना एक है, तीरंदाज अनेक'

वे कहा करते थे कि विभिन्न धर्मों का बाहरी रूप अलग-अलग है और वे परमात्मा की पूजा-उपासना अपने-अपने तरीके से करते हैं लेकिन परमात्मा तो एक ही है । यदि परमात्मा को पाना है तो सबसे छोटा रास्ता अपनाना पड़ेगा । लेकिन हकीकत में लोग नहीं जानते कि वे क्या चाहते हैं ? वे चाहते कुछ और हैं और करते कुछ और हैं, और इसी तरह जीवन व्यतीत हो जाता है । जो किसी बिन्दु पर किसी से आगे था, पीछे रह जाता है और कोई पीछे वाला उससे आगे निकल जाता है । यदि कोई सौभाग्य से सतगुरु की शरण पा जाता है तो उसे समझना चाहिए कि उसे सही मार्ग पर चलने की कुंजी मिल गई है । दुनिया के सभी धर्म एक ही बात का उपदेश देते हैं और एक ही दिशा की ओर इंगित करते हैं, चाहे उसे कुछ भी नाम वे दे देवें । रहने-सहने का ढंग सबका अलग-अलग हो

सकता है लेकिन वे सभी परमात्मा के प्रिय पात्र बनना चाहते हैं । फिर एक दूसरे की आलोचना करने का एक दूसरे पर कीचड़ उछालने में क्या रखा है ? यह तो भक्तों का आचरण नहीं ।

चाहे कोई किसी भी धर्म, जाति या समुदाय का हो, लेकिन जब तक आत्म-साक्षात्कार ना हो जाए प्रयास जारी रखना चाहिए । अतः किसी-ना-किसी अभ्यास पर दृढ़ता से लगे रहना चाहिए एवम् उसमें निपुणता प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए ताकि अन्तिम पड़ाव तक पहुँचा जा सके लेकिन भटकाव के प्रति हमेशा सावधान रहना चाहिए । अपने मन और बुद्धि को हमेशा परमात्मा की तरफ मोड़ते रहना चाहिए और एक दिन जिस तरह बहती नदी सागर से मिलकर उसी का रूप हो जाती है, भक्त भी अपनी मंजिल, परमात्मा से एकाकार को अवश्य प्राप्त करेगा । मानव जीवन प्राप्ति का उद्देश्य बाहरी दुनिया से मुड़कर भीतर, परमात्मा की ओर जाना है ।

ठाकुर रामसिंहजी ने सन्यास लेने को या धर्म परिवर्तन को उचित नहीं माना । उनका कहना था जिस देश, समाज या धर्म-सम्प्रदाय में व्यक्ति का जन्म हो, उसे उसके प्रति दृढ़ता से खड़े रहना चाहिए । यह उसका कर्त्तव्य है कि धर्म के नियमों का पालन करते हुए आत्म-साक्षात्कार का प्रयास करे । ना ही तो अपना धर्म परिवर्तन करना चाहिए, ना ही अपनी जाति छिपानी चाहिए । ऐसा करना 'उसकी' इच्छा के अनुरूप आचरण करना नहीं है । सभी धर्म 'उसी' की ओर ले जाते हैं, केवल शुद्ध मन से अपने आप को परमात्मा की तरफ मोड़ने की आवश्यकता है । परमात्मा को धर्म परिवर्तन करने से नहीं पाया जा सकता बल्कि धर्म पालन से ही पाया जा सकता है और 'उसका' कोई धर्म है तो वह केवल प्रेम है । परमात्मा अपनी कृपा सभी पर अनायास बरसाता रहता है । 'वह' तो दया और करुणा का सागर है । कौन उसकी दयालुता और गुणों का वर्णन कर सकता है ?

जो शास्त्रों के अनुसार आचरण करता है धर्मात्मा कहलाता है और उसमें दैवी गुण निवास करते हैं । उनके दर्शन करना सौभाग्य समझा जाता है । वे स्वार्गिक जीवन व्यतीत करते हैं क्योंकि उनके मन में कोई कुंठा नहीं होती । वे चाहे शारीरिक कष्ट उठा लें लेकिन दूसरों की भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचाते । उनकी भावनाओं और आचरण में साम्यता होने के कारण उनमें कोई दुविधा नहीं रहती । जो सभी से प्रेम करते हैं, वे औरों की निस्वार्थ सेवा करते हैं, त्याग में संतोष प्राप्त करते हैं और अपनी या दूसरों की भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचाते । वे सदा प्रसन्न रहते हैं । जो शास्त्र सम्मत आचरण को अपने व्यवहार में उतार लेते हैं, वास्तव में वे साधु हैं । ऐसे लोगों का आचरण औरों के लिये आदर्श बन जाता है ।

ठाकुर रामसिंहजी का कहना था, 'प्रेम, सेवा, त्याग या ज्ञान, कोई भी मार्ग पकड़ो, लेकिन उसमें कमाल हासिल कर लेना आवश्यक है ताकि वही मार्ग आत्म-साक्षात्कार का जरिया बन जाए । बिना उसमें पूर्णता हासिल किये, मंजिल नहीं मिल सकती, उसके लिये पूर्णता की सभी हद पार कर जाना आवश्यक है । प्रेम की अग्नि लेकिन इनमें सबसे प्रखर है, जो महापापियों के भी सभी पाप तुरंत नष्ट कर उन्हें भस्मीभूत कर देती है, और यह सब परमात्मा की कृपा पर ही निर्भर है ।

ठाकुर रामसिंहजी के कुछ मुख्य उपदेशों का सार:

दुनिया में रहें पर निर्लिप्त भाव से, जैसे पानी में रहकर भी मुर्गाबी उड़ते समय बिलकुल खुश्क होती है ।

परमात्मा परम-पिता है और कोई पिता अपनी संतान को दुखी नहीं देखना चाहता । हमे सुखी देखने के लिये वह सब कुछ करता है ।

परमात्मा भाव के भूखे हैं, वे प्रेम से रीझते हैं । वे नुक्ता-नवाज हैं, ना जाने कब किस बात पर रीझ जायें ?

जिस तरह स्त्री अपने ससुराल जाकर पति के नाते सबसे नाते-रिश्ते निभाती है, उनकी सेवा करती है, बस इसी तरह हम सारे संसार का सम्बन्ध उससे जोड़ दें, सबमें उसी की अनुभूति करें।

खुश-मिजाजी और जिन्दा-दिली बड़ी दौलत है। ज़िन्दगी जिन्दा-दिली का नाम है, मुर्दा-दिल क्या खाक जिया करते हैं ? हम ईश्वर के अंश हैं, हमारी उदासी से विश्वात्मा को तकलीफ़ होती है। राज़ी-ब-रजा रहना चाहिये। वह हमारा हित बेहतर जानता है। उसकी मर्जी पर निर्भर हो जाना चाहिये। वह सब तरह हमारी देख-भाल करता है।

सब तरह से सतगुरु के आश्रित हो जाना चाहिये। प्रयत्न और पुरुषार्थ मनुष्य का कर्तव्य है और ईश्वर पर भरोसा रख निश्चिन्त होना समर्पण है।

सारा साधन-भजन केवल इस मन को सुलझाने के लिये है। खुद को उनके हवाले करने की जरुरत है। मन को भी उन्हीं के सुपुर्द कर दो। जीते-जी यह काम हो जाना चाहिये।

अपने ऐब नजर आते रहें, उसकी याद बनी रहे, और दया की प्रार्थना होती रहे, यही पर्याप्त है।

संतोष बहुत बड़ी बात है। हर हाल में उसका शुक्रिया अदा होता रहे। हर बात में उसकी कृपा का एहसास होता रहे।

हँसते रहो, हँसाते रहो; बसते रहो, बसाते रहो।

यह प्रेम और समर्पण का रास्ता है। मन-मुख से गुरु-मुख हो जाना चाहिये। मन में प्रेम का जज्बा पैदा होने से आत्मिक चढ़ाई आसान हो जाती है। प्रेम का असर अनोखा है, यह सात आसमान चीरकर पहुँच जाता है। सच्चा प्रेम ईश्वरीय गुण है। सतगुरु से प्रेम होने पर हर समय उनकी याद बनी रहती है, उनका ख्याल बना रहता है, बिजली के तार की तरह मन उनसे जुड़ा रहता है और काम आसानी से बन जाता है।

यदि हम उसकी ओर एक कदम बढ़ाते हैं तो वह सौ कदम आगे आता है। वह परमपिता है, केवल भाव का इच्छुक।

सुबह-शाम 15-20 मिनट ध्यान में बैठना चाहिये। ध्यान का अर्थ है गुरु-कृपा की ख्वाहिश, उसका इंतज़ार। ख्याल करना चाहिये कि उनके हृदय से कृपा-धार प्रवाहित होकर हमारे रोम-रोम को प्रकाशित कर रही है, उनकी दया-कृपा ने हमे अपने आगोश में ले रखा है। आपा भूल गुरु-रूप, तद्रूप हो जाना चाहिये।

ध्यान के लिये कोई समय निश्चित कर लें। निश्चित समय ध्यान करने से, उस समय के पहले ही एक किस्म का ध्यान लगने लग जाता है। जब फालतू विचार कम होने लगें तो समझ लेना चाहिये कि तरक्की हो रही है।

बीती बातों का पछतावा नहीं करना चाहिये। जब दिल में बुरे ख्याल आवें तो ईश्वर या सतगुरु का ख्याल कर लेना चाहिये, वे हट जायेंगे।

डर का डर नामर्दों को होता है, प्रेम का डर असली डर है।

यदि ध्यान करते समय कोई विचार आने लगे और हटाये ना हटे तो तुरंत आँखे खोल देनी चाहिये और मन ही मन जाप करना चाहिये।

कभी किसी संत-महात्मा के पास जाएँ तो अपने सतगुरु भगवान को याद रखें, इससे सुरक्षा होती है।

विश्वास सबसे बड़ी चीज है। यदि दृढ़ विश्वास रखें और सही नियत से अपने कर्तव्य का पालन करते रहें तो परमात्मा स्वयं हमारे योग-क्षेम का ख्याल रखता है।

भोजन नेक कमाई का ही होना चाहिये। शुद्ध भोजन का असर आत्मा पर भी पड़ता है। भोजन उसकी याद में करना चाहिये। उसकी याद में किया भोजन भजन बन जाता है और उसकी याद में सोना भी भजन बन जाता है।

गृहस्थ ही पञ्च तप या पाँच धूनी तपना है। दुनियादारी को यथायोग्य निभाना बहुत बड़ी तपस्या है। सबके साथ यथायोग्य व्यवहार ईश्वर की पूजा के समान है।

जब वह दुश्मनों तक का ख्याल रखता है तो दोस्तों को कैसे महरूम रखेगा।

कभी गरूर नहीं करना चाहिये, ना अच्छे कामों का ना अच्छे विचारों का। गरूर से गिरने का अंदेशा रहता है। जो विनम्र है वह सदा कृपा का पात्र बनता है।

जैसे का विचार करोगे, वैसे ही भाव मन में आ जायेंगे। अत: हमेशा गुरु-भगवान या ईश्वर की याद बनाये रखनी चाहिये। ईश्वर की तरफ़ तवज्जोह होते ही कृपाधार स्वयंमेव बरसने लगती है।

सूफी वह है जो मुहब्बते-इलाही (ईश्वर प्रेम) में डूबा रहे। लेकिन सच्चा प्रेमी प्रेम को छिपाये रखता है, प्रकट नहीं करता। प्रेम में सारी मंजिले अपने-आप तय हो जाती हैं। लेकिन यह भी सही है कि प्रेम कभी छिपाये नहीं छिपता।

यह संसार ईश्वर का बागीचा है और संत इसकी सफाई करने वाले माली। वे गंदगी को हटा, बागीचे में फूलों की महक को स्थापित करने वाले होते हैं।

शरीर से त्याग, त्याग नहीं है, असली त्याग मन से माना जाता है। किसी बात की अति अच्छी नहीं है। गृहस्थ के सब धर्मों का पालन करते हुये भी मनुष्य परमार्थ कमा सकता है।

सेवा बहुत बड़ी चीज है। जिस पर उसकी कृपा होती है, उसी में सेवा भाव पैदा होता है। संसार की सेवा, प्राणी मात्र की सेवा ही ईश्वर सेवा है।

जिस जगह पर भजन होता है, वहाँ के सब दोष दूर हो जाते हैं।

पहले खुद को बनाओ, फिर परिवार को और बाद में पड़ोसियों को और धीरे-धीरे सबको।

वह जर्रे-जर्रे में मौजूद है, बस विशवास पक्का होने की देर है। मिलने की तलब हो तो वह अपने पास ही है।

साधना का मतलब है बाहर से भीतर जाना, उसी में लय होना। यही जिन्दगी का असली मकसद है।

प्रार्थना करनी चाहिये कि हे प्रभु ! आपकी इच्छा पूर्ण हो, अपनी इच्छानुसार मुझे चला लीजिये और मुझे अपना प्रेम प्रदान कीजिये।

परमतत्व किसी साधन से नहीं मिलता। गुरु कृपा ही एक मात्र साधन है, तभी इसकी अनुभूति होती है। जिसका गुरु से प्रेम हो गया, उस पर परमात्मा प्रसन्न होता है। फिर सभी पर्दे धीरे-धीरे हटने लगते हैं।

परमात्मा कहीं खोया हुआ नहीं है कि उसे ढूंढना हो। उसे अपने से दूर समझना ही सबसे बड़ा भ्रम है। इसी भ्रम को तोडना है। हर वक्त उसे मौजूद जानना और उसकी याद बनी रहना ही साधना है।

'गुरु भगवान फरमाते थे कि जो कुछ भी शास्त्रों में है, संतों के हृदय में मौजूद है, लेकिन जो संतों के हृदय में है, वह शास्त्रों में ढूँढने से भी नहीं मिलता।

सतगुर का स्मरण करने से उनके गुण शिष्य में उतरने लगते हैं, सब तरह सुरक्षा होती है और मन भीतर की ओर मुड़ने लगता है, अंतर्मुखी होने लगता है।

समस्त साधना का सार है जैसे भी हो गुरु भगवान से प्रेम अर्थात उनकी याद हर समय बने रहना। और यह याद ऐसे ही है जैसे कोई खजान्ची तिजोरी में चाभी लगी भूल जाये तो फिर वह कहीं भी जाए उसका ध्यान उस चाभी पर ही रहता है, या जैसे माँ बच्चे से कितनी ही दूर चली जाय, कुछ भी करती रहे, उसके मन में बच्चे का ध्यान बना ही रहता है

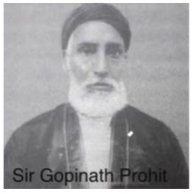

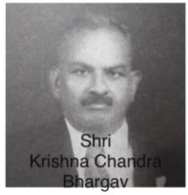

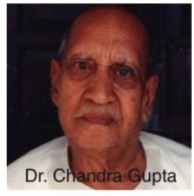

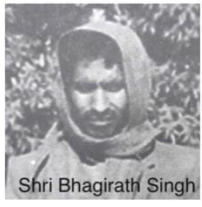

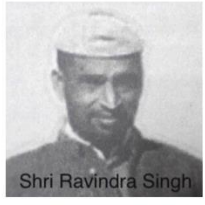

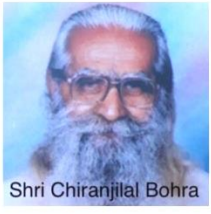

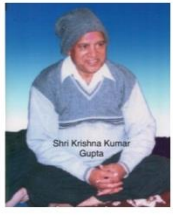

(बाएँ से दाएँ)

सर गोपीनाथ पुरोहित; श्री कृष्ण चन्द्र भार्गव; डॉ. चन्द्र गुप्ता

श्री श्यामसिंह राठोड़; श्री भागीरथसिंह; श्री रवीन्द्रसिंह

श्री चिरंजीलाल बोहरा; श्री गोवर्धनलाल गुप्ता; श्री कृष्ण कुमार गुप्ता